सम्राट् अकबर।

(जीवनी)

भारत का अतीत और वर्त्तमान चित्र।

अनुवादक

पं० गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी।

प्रकाशक

हरिदास ऐण्ड कम्पनी

द्वितीय संस्करण।

कलकत्ता

२०१, हरीसन रोड के नरसिंह प्रेस में

बाबू रामप्रताप भार्गव द्वारा

मुद्रित।

सन् १९१९

मूल्य ३)

भूमिका।

आज मैं अपने प्रिय पाठकों को, श्री बङ्किमचन्द्र लाहिड़ी बी॰ एल॰ प्रणीत, "सम्राट् अकबर" नामक पुस्तक का भाषानुवाद भेंट करता हूँ। उक्त बाबू साहब के विषयमें, मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूँ, कि वे कैसे लेखक हैं। समस्त भारतवर्ष नहीं, तो कमसे कम बङ्गाली-समाज अवश्यही उनसे भली भाँति परिचित है। यह बात प्रायः सबही पढ़े-लिखे मनुष्य जानते होंगे, कि ऐतिहासिक विषय को रोचक बनाना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य ही है। फिर भी, इस विषय को उक्त महाशय ने जैसा रोचक बनाया है, वह पाठकों को इस पुस्तक के देखने से ही ज्ञात हो जावेगा।

यद्यपि हिन्दी-भाषामें इस विषय की अबतक बहुतसी पुस्तकें निकल चुकी हैं और निकल रही हैं, परन्तु जहाँ तक मैंने सुना और देखा है उन पुस्तकोंमें राजाओं के उत्पन्न होने,

सिंहासनारूढ़ होने और मरने की तारीखों इत्यादिका ही बाहुल्य पाया जाता है। इसके अतिरिक्त एक मनुष्य को अपनाकर अन्त तक उसी की भलाई करते जाना ही ऐतिहासिक सज्जनोंने अपना धर्म समझा है, परन्तु बाबू बङ्किमचन्द्र लाहिड़ीने ऐसा नहीं किया है। जिन-जिन पुस्तकों के आधार पर, उक्त बाबू साहबने यह पुस्तक रची है, उनके नाम आपने इस पुस्तकमें देदिये हैं, उनके देखने से प्रतीत होता है, कि यह पुस्तक खूब ही खोज और परिश्रम से लिखी गई है।

हम हिन्दी-लेखकों को इतना अवकाश ही कहाँ है, कि सौ-पचास किताबों को पढ़कर किसी पुस्तक के लिखने का भार अपने ऊपर लें, परन्तु यदि ऐसे-ऐसे सुलेखकों के अनुवादमात्र ही करने पर कमर कसलें, तब भी हिन्दी-संसार का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं, परन्तु हमलोग इतना भी नहीं करना चाहते हैं। कारण यह है, कि हमलोग उपन्यासों को लिखकर ही रुपया कमा लेने में सब कुछ समझते हैं। वे उपन्यास चाहे कैसे ही भ्रष्ट क्यों न हों, यदि सर्वसाधारण उनको प्रेम से पढ़ते हैं, तो हमलोग अपने परिश्रम को सफल हुआ समझते हैं। यह ध्यान स्वप्न में भी नहीं आता है, कि ऐसी-ऐसी भ्रष्ट पुस्तकों को पढ़कर हिन्दी-समाज किस तरह धीरे-धीरे गड्ढे में गिरता चला जाता है। यही कारण है, कि हमारे भण्डार में कोई भी इतिहास की अच्छी पुस्तक अभीतक नहीं तय्यार हुई है।

इन चार शब्दोंके अतिरिक्त मुझको और कुछ नहीं कहना है। यद्यपि मैंने इस पुस्तक के अविकल अनुवाद करने की चेष्टा की है, परन्तु फिर भी कहीं-कहीं देशकाल की व्यवस्थानुसार काट-छाँट करनी पड़ी है; परन्तु वह ऐसी नहीं है जिस से पुस्तक की सत्यता अथवा रोचकता में कुछ भी कमी आई हो। इसके लिये मैं श्रीयुत बाबू बङ्किमचन्द्र लाहिड़ी बी० एल० और अपने प्रिय पाठकों से क्षमाप्रार्थी हूँ।

अनुवादके विषय में, मैं कुछ न कहूँगा। सम्भव है, इसमें अनेक भूलें होगई हों, परन्तु फिर भी अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार, भरसक सावधानी से काम लिया गया है। थोड़ी बहुत भूलें मनुष्यमात्र से होती ही रहती हैं। बात इतनी ही है, कि किसी से कम और किसी से ज़ियादा। जिस से बिल्कुल भूल न होती हो, ऐसा तो एकमात्र परमात्मा ही है। फिर भी अपनी भूलों के लिये क्षमाप्रार्थना करता हुआ, एक उर्दू-कवि के एक शेर को कह देना अनुचित नहीं समझता हूँ। वह शेर यह है,—

जिस जा कुछ ख़ता साबित हुई हो।
छुपालें दामने बख़्शिश से उसको।

काइमगञ्ज। } गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी।
१९-८-१९१७

द्वितीय संस्करण की

भूमिका ।

आज मैं अपने पाठकोंके सम्मुख 'सम्राट् अकबर' की दूसरी आवृत्ति उपस्थित करता हूँ। इसी पुस्तक की नहीं, मेरी और भी पुस्तकों यथा—विषवृक्ष, सिराजुद्दौला, कृष्ण-कान्त की विल इत्यादि की भी दूसरी आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। मैं अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना नहीं चाहता हूँ—पाठक-गणने मेरे इन ग्रन्थों को कितना पसन्द किया और अपनाया है वह उक्त ग्रन्थों के दूसरी बेर प्रकाशन से ही विदित है।

अन्तमें इतना कहना असामयिक न होगा कि सहृदय पाठकोंने मुझको बहुत उत्साहित किया है और मैं आशा करता हूँ कि आसन्नभविष्यमें उनके मनोरञ्जनार्थ अन्य पुस्तकें भेंट कर सकूँगा।

काइमगंज,
४-८-१९।

भवदीय—
गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी।

ग्रन्थकर्त्ता का विज्ञापन ।

हर एक मनुष्य को कोई सुन्दर वस्तु देखने पर, अपने प्रियजनों को उसके दिखलाने की अभिलाषा होती है। इसी भाँति अकबर की शोभा देखकर मुझको भी उसके दिखलाने की इच्छा हुई थी। परन्तु मुझे समय का अभाव है, मुझमें शक्ति नहीं है, जो देखा है उसको किस प्रकार दिखलाऊँ ?

भारत का प्राचीन गौरव अति उज्ज्वल और अति मनोहर है। जगत् के इतिहासमें उसकी तुलना कहीं भी नहीं मिलती है। मैंने पहले उसका चित्र-प्रदर्शन, उसके पीछे हिन्दुओं की स्वार्थपरता और आत्मद्रोह से उनका अधःपतन; पीछे स्वार्थपरताविहीन और प्रकृत स्वदेशहितैषी सम्राट्कुलतिलक अकबर द्वारा भारत का महोन्नति-साधन; फिर उनके वंशधरों की स्वार्थपरता से भारतका पतन और शेष में हिन्दुओं की स्वार्थपरता से हिन्दुओं के आशाभरोसे का अतल जल में विसर्जन वर्णन किया है। मैंने दिखला दिया है, कि हिन्दुओं को किसी वस्तु का अभाव नहीं था, एकमात्र स्वार्थपरता से

ही उनका सब कुछ जाता रहा है, एक स्वार्थपरता ही के कारण से वे परपदानत हुए हैं, अपनेही दोष से वे निपतित हुए हैं।

मैंने बहुतसी पुस्तकों और पत्रिकाओं से इसका उपकरण संग्रह किया है। उन सब लेखकों, अनुवादकों और सम्पादक महाशयों के प्रति मैं अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

जिसको अपने पेट के लिये प्रभात से रात्रि पर्यन्त परिश्रम करना पड़ता हो, उसको साहित्य-सेवा विड़म्बना मात्र है। इससे यदि इसमें भ्रम और त्रुटियाँ रह जायँ, तो क्या आश्चर्य है? मैं अत्यधिक परिश्रम करनेमें कुण्ठित नहीं हुआ हूँ, इतिहास के नीरस विषयको, इस उपन्यास-युग में, सरस करने की चेष्टा में मैंने त्रुटि नहीं की है। यदि इस पुस्तक के पाठ से किसीके हृदय में किञ्चित् परिमाण में भी निःस्वार्थ स्वदेश-प्रीति उत्पन्न होगी, तो मैं निन्दा और उपहास से विचलित न हूँगा, अत्यधिक परिश्रम के कारण स्वास्थ्य नष्ट होने का भी मुझको दुःख न होगा।

आरारिया (पुर्निया)
श्रावण, १३०८ बङ्गाब्द। } श्रीबंकिमचन्द्र लाहिड़ी।

विषय-सूची ।

सम्राट् अकबर

पहला अध्याय।

भारत का गौरव।

आज पठान बादशाहों का वह प्रतिद्वन्द्वी-विहीन प्रबल प्रताप कहाँ गया! वह दिक्पालों का सा सुरक्षित, सुदृढ़ और विशाल भारत-साम्राज्य, जो मुग़ल-सम्राटों का था, कहाँ गया! काल-सागर में वह सदैव के लिये लुप्त हो गया। जिन्होंने बलदर्प के वश समझ रक्खा था, कि उनका अन्त न होगा और न हो सकता है; जिनका अति मनोहर सर्वोच्च विजय-स्तम्भ, जिनकी विजय-वैजयन्ती, काबुल से अकार [illegible]

उड़ चुकी है;जिनका धन-ऐश्वर्य रोमराज्यको भी पारकर चुका है; जो क्षमता से अधीर होकर विदेशी डाकुओंका उपहास करते थे; जिन्होंने अतुल रत्नराशिको महलों और सिंहासनोंमें लगा रक्खा था; जिन्होंने बड़े-बड़े प्रासाद बनाकर, अहङ्कारसे उन प्रासादोंको स्वर्गसे तुलना की थी; जिनके संगमरमरके महलोंकी शोभा आज भी संसारको चकित किये हुए है, वही मुग़ल-सम्राट् अपनी अतुल सम्पदा और असीम क्षमता सहित आज उपन्यासमें परिणत हो गये हैं! वह श्वेत महलोंसे सजी हुई दिल्ली और आगरा नगरी, मानों श्वेत वस्त्र पहने हुए विषादिनी विधवाकी तरह, यमुनाके सैकतश्मशानमें, मानों कातर कण्ठसे रो रही हैं, और मानों उन्हींकी अश्रुधाराओंसे यमुनाका स्रोत बह रहा है! हाय कैसा परिवर्त्तन हो गया!

वह मुग़ल और पठान अब भी भारतमें विद्यमान हैं, वह पुण्य पवित्र जाह्नवी और यमुना आज भी उनके बलवीर्यकी प्रशंसा कर रही हैं। फिर, उनके सुखका अन्त क्यों हो गया, उनके साम्राज्यका पतन क्यों हो गया, वह दीन-हीन हिन्दुओं द्वारा भारतके रङ्गालयसे क्यों अदृश्य हो गये? जिन्होंने,—"तलवारके बलसे जय किया है, तलवारहीके बलसे पैरोंके नीचे रक्खेंगे—" इस मिथ्या अभिमानसे तलवार हाथमें लेकर, शासन-नौका पर खड़े होकर गर्व दिखलाया था और स्वार्थकी आँधीमें लङ्गर उठाकर जन-साधारणकी उत्ताल तरङ्गोंको विदलित करते हुए, उनके मङ्गल-स्रोतके विरुद्ध अपनी

शासन-नौकाको खूब चलाया था और जो विदलित, प्रपीड़ित प्रजाके करुणा भरे कातर कण्ठसे विचलित नहीं हुए थे; उन्हीं पठान और मुग़लोंकी नृशंस कहानी सुनानेके लिये, हतभागिनी दिल्ली और आगरा नगरी शोकातुर और विषादपूर्ण खड़ी हुई हैं।

अब जो मनुष्य स्वार्थ द्वारा परिचालित न करके, अपनी जन्मभूमिको सौहार्द-सम्मिलन द्वारा महाशक्तिशालिनी करने का दृढ़ सङ्कल्प करे, साधना और कामना जो कुछ करे सब ही मातृभूमिके कल्याणके लिये करे, वह स्वदेशको कैसा गौरवान्वित कर सकता है,—इसीका मनोहर चित्र अकबर-चरित बतलाता है। वनफूल वन में सौन्दर्य्य और सुगन्ध फैला कर, काँटोंके आघातसे क्षतविक्षत होकर, कई शताब्दी हुईं, समय-स्रोतसे अदृश्य हो गया है; तथापि उसका सौरभ, उसका गौरव आज भी सारी पृथ्वी को पुलकित कर रहा है। आज माता वसुन्धरा कितने मुखों से उसका कीर्त्ति-गान कर रही है; उसकी मातृसेवा, उसकी निःस्वार्थ स्वदेश-हितैषिता प्रकाश कर रही है।

आजकल के समयमें, अकबर के समान स्वदेश-प्रेमी भारत में दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ। जिस समय अनुदार और अदूर-दर्शी हिन्दू और मुसल्मान, स्वार्थपरता द्वारा परिचालित होकर, केवल आत्म-कलह कर रहे थे और जन्मभूमि को रसा-तल पहुँचाने का उद्योग कर रहे थे; उसी समय अकबर का

आविर्भाव हुआ था। उसने जन्मभूमिके दुःख और दुर्दिनका निवारण किया; उसको जगत् में अतुलनीय बनाने की प्राण-पन से चेष्टा की। विवाद-परायण विशाल भारतवर्ष को एकच्छत्र की सुशीतल शान्तिदायिनी छाया में करके, उसको एक जाति, एक धर्म, और एक भाषा से सजीवित करने का यत्न किया। हिन्दू-मुसल्मानों को सदैव के लिये एक करके, एक प्रबल शक्तिशालिनी राजनीतिक जाति के सङ्गठित करने का प्रयास किया। मुसल्मान होकर हिन्दू-धर्म ग्रहण किया। भारत के सिंहासन के लिये हिन्दू-मुसल्मानों की मिली हुई सम्राट्-श्रेणी तय्यार की। अदूरदर्शी मुसल्मानी साम्राज्य को समानता, मैत्री और स्वाधीनतामय मनोहर हिन्दू-मुसल्मानोंके सम्मिलित साम्राज्य में रूपान्तरित कर दिया। हतभागिनी भारत-भूमि को, रसातल से उद्धार करके, महागौरव-युक्त पद पर स्थापन किया। वह स्वार्थ रहित, अति उदार, स्नेहपरायण, स्वदेशप्रेमी, समाज-संस्कारक, धर्मसंस्कारक, राजनीतिविद्, न्यायवान् और सहृदय सम्राट् था। उसने बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य ज्ञान को नहीं पढ़ा था। सोलहवीं शताब्दी के अशिक्षित और अनक्षर सम्राट् ने, जन्मभूमि के कल्याण के लिये, अति विचक्षणता से जो उपाय अवलम्बन किये थे, उनको पढ़ने से विस्मय की सीमा नहीं रहती है। हिन्दू-मुसल्मानों के चिरवासस्थल में, स्वार्थ पर, आत्मकलह-रत और पतित हिन्दू-मुसल्मानों

के बीच, उस घोर दुःख-दुर्दिन में, स्वदेशवत्सल सम्राट्-कुल-तिलक अकबर की निःस्वार्थ स्वदेश-सेवा, बातूनी कर्म-विरत शिक्षाभिमानियों के लिये भी शिक्षणीय है। उसके काम भारतवासियोंकी दृष्टि से बहुत दूर थे, इसी कारण हिन्दू-मुसल्मानों को उसकी निःस्वार्थ प्रकृति और स्वदेश-हितैषिता का मर्म कुछ भी समझ में न आया। इतनाही नहीं, उसके वंशधरों ने भी उसकी मङ्गलमयी नीति को, उसके शरीर के साथही, समाधि में सदैव के लिये बन्द कर दिया। वृद्ध और बहुदर्शी इतिहास विषादपूर्ण शब्दों में कह रहा है—"यदि भारतवर्ष अकबर के प्रदर्शित पथ पर चलता, तो यह दुःख-दुर्दिन उसको देखने को न मिलता। पृथ्वी की समस्त शक्तियाँ भी यदि एक साथ उसके ऊपर आक्रमण करतीं, तोभी वह अपने गौरव को न खोता।"

तो क्या पहले भारत के गौरव के दिन थे? क्या घोर अँधेरी रात के पहले, पूर्ण आलोकमय दिन का आविर्भाव हुआ था? हाय! हाय! वह पुरानी कथा है! सुख जाता रहता है, परन्तु स्मृति नहीं जाती है, यह क्यों? भारत का गौरव-रवि इसी प्रकार अस्त नहीं था; भारत के आकाश में सदैवही इसी प्रकार की अन्धेरी घनघटा नहीं छायी हुई थी। ज्ञान और धर्म, सभ्यता और स्वाधीनता, भारतमेंही सब से पहले उदय हुए थे। पूर्व्वी आकाश में सब से पहले जो लोहित छटा प्रकाशित हुई थी, वही अब पश्चिम में जाकर,

प्रखर पाश्चात्य ज्ञान के रूपमें, यूरोप और अमेरिका को आलो-कित कर रही है। भारत में अब रात हो गई है।

कौन कह सकता है कि, भारतमें पहले-पहल वह आलोक कब उदय हुआ था? भारतवर्ष पृथ्वीके सभी देशोंकी अपेक्षा प्राचीन समय का गौरव प्रदर्शन करने में समर्थ है। पण्डितों का अनुमान है कि, ईसामसीह के २००० से ६००० वर्ष पहले, हिन्दुओं की अति प्राचीन कीर्त्ति अर्थात् ऋग्वेद की रचना हुई है। इस वेद में आर्य-जाति के ज्ञान और सभ्यता का जो प्रमाण मिलता है, उस से अनुमान होता है कि वेदकी रचना से हज़ारों वर्ष पहले, आर्यों ने ज्ञान और सभ्यता को अति उन्नत अवस्था को प्राप्त कर लिया था। पृथ्वी के इतिहासमें, ऋग्वेद में सब से पहले एकेश्वरवाद का कीर्त्तन हुआ है। सुप्रसिद्ध जर्मन-पण्डित शोपनोहरने लिखा है,—"मनुष्यके ज्ञान के चरमोत्कर्ष से वेद-रूपी फल उत्पन्न हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी ने जो उपहार हम को दिये हैं, उनमें से वेदों का सारांश 'उपनिषद्' ही उसका सर्वश्रेष्ठ उपहार है। पृथ्वी पर का कोई ग्रन्थ क्यों न पढ़ो, इसके बराबर अतुल उपकारी और पवित्रकारी ग्रन्थ दूसरा नहीं है। इसके पाठ करने से, इस जीवन में भी शान्ति-लाभ होता है और मृत्यु के समय भी शान्ति मिलती है।" पण्डित-प्रवर मेक्समूलर ने लिखा है,—"भारत का वेदान्त सर्वोत्कृष्ट धर्म और सर्वोत्कृष्ट दर्शन है।"

यह दर्शन सबसे पहले भारतमेंही प्रणीत हुआ था। डेविस

मीमांसा की है, कि जिनको यूरोप सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी तक निर्णय न कर सका था। भारतवर्ष ने एक समय में गणित-शास्त्र की ऐसी उन्नति की थी, कि उसे देख कर पाश्चात्य गणितज्ञ लोगों के विस्मय की सीमा न रही थी।

पण्डित-वर गोल्डस्टुकरके मत से, ईसा से नौ-दश शताब्दी पहिले, पाणिनि ने जगत् में सबसे प्रथम व्याकरण बनाया था। उसकी तुलना का वैयाकरण पृथ्वी ने दूसरा उत्पन्न नहीं किया।

चिकित्सा-शास्त्र भी सर्व-प्रथम भारतमेंही प्रणीत हुआ। चरक और सुश्रुत भारत के अतीत गौरव की घोषणा कर रहे हैं। अरब-निवासियों ने उनका अनुवाद करके अपने देशमें प्रचार किया। वहाँ से वह यूरोप में गया। सत्रहवीं शताब्दी तक, अरब की चिकित्सा-प्रणाली यूरोपीय चिकित्सा की मूल थी। प्राचीन भारतवासी मुर्दों को चीर-फाड़ कर ज्ञान लाभ करते थे और अस्त्र-चिकित्सा भी करते थे, जिसके लिये वह १२७ प्रकारके अस्त्र व्यवहार करते थे। डाक्टर रायली ने लिखा है,—"वास्तव में यह बड़ी विस्मयकर बात है, कि उस समयके चिकित्सक मुर्दे की पथरीको काट कर बाहर निकालते थे; यन्त्रों द्वारा पेटसे बच्चे तकको निकालनेमें समर्थ थे।"

भारतवासियोंनेही सबसे पहले रसायन-विद्याकी आलोचना आरम्भ की थी। डाक्टर रायली कहते हैं कि,

"धातु की बनी हुई औषधियों के सेवन की व्यवस्था भी चरक-सुश्रुत में पाई जाती है ।"

उद्भिद्-विद्या का प्रथम प्रचार भी सुश्रुतमेंही पाया जाता है ।

महाकाव्य महाभारत और रामायण भारत के अतीत गौरव की साक्षी दे रहे हैं । जनसाधारण को धर्म और नीति-मार्ग पर चलाने के लिये, इनसे बढ़ कर उत्कृष्ट और मनोहर गाथा जगत् में दूसरी कहीं नहीं लिखी गई । प्रतिदिन भारत के घर-घर में यह महाकाव्य पढ़े जाते हैं ; क्योंकि यात्रा, नाटक, उपन्यास इत्यादि के रूप में, ऐसे चित्तरञ्जन के उपायों द्वारा अतुलनीय और उज्ज्वल चित्र इनमें लिखे गये हैं, कि जिनके कारण भारत के हिन्दू जनसाधारण ऐसे दुःख-दुर्दिन में भी धर्म के प्रदर्शन करने में समर्थ हैं ; और, ज्ञान-दर्पी और स्थूल दृष्टिवालों की तरह मिश्रदेश के पिरेमिड और चीन देश की दीवार को अत्याश्चर्य न कहकर विषादपूर्ण गम्भीर स्वरों में कह सकते हैं,—"अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम-मन्दिरं, शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परं ।" अर्थात् सदैवही मनुष्य मर-मर कर यमलोक को जाते हैं ; परन्तु बचे हुए मनुष्य अपने आपको स्थिर समझ कर बैठे हुए हैं, इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य हो सकता है ?

महाकवि कालिदास की तुलना जगत् में कहाँ मिल

सकती है ? उनके यश ने पाश्चात्य जगत् के महाकवि शेक्स-पियर के यश को भी अतिक्रम किया है। उनके शकुन्तला नाटक ने पृथ्वीमय ख्याति पाई है। पाश्चात्य जगत् के कवि-वर गेटी कहते हैं,—"यदि तुम वसन्त ऋतु के मुकुलदल का उपभोग करना चाहते हो, यदि उसी के साथ ग्रीष्म ऋतु के मधुर फलों को खाना चाहते हो, अथवा हृदय की परिपूर्ण तृप्ति चाहते हो, पुलकित होना चाहते हो, यदि एकही ठौर पर स्वर्ग और मर्त्यधाम देखना चाहते हो, तो मैं यही कहूँगा कि तुम 'अभिज्ञान शाकुन्तल' को पढ़ो ! एकमात्र 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के पढ़ने से ये सब वस्तुएँ तुमको मिल जायँगी।"

उपन्यास और क़िस्सा-कहानी के विषय में क्या कहा जाय ? लोक-शिक्षा के लिये प्राचीन भारत में 'पञ्चतन्त्र' बना था। क्रमसे वह फ़ारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन, हिब्रू, स्पेनिश, जर्मन, अँगरेज़ी और यूरोप की अन्यान्य भाषाओं में अनु-वादित हो गया।

सङ्गीत ने भी सबके पहले भारतमेंही जन्मग्रहण किया था। भारत के ऋषिगण ने सामवेद के गाने के लिये संगीत-चर्चा आरम्भ की थी। हिन्दुओं ने, ईस्वी सन् से तीन-चार सौ वर्ष पहले, 'सा रे गा मा' इत्यादि सप्तस्वरों का विभाग और नामकरण किया था। भारत के सप्तस्वर फ़ारस देश से होकर अरब में पहुँचे और वहाँ से, ग्यारहवीं शता-ब्दीके आरम्भ में, यूरोप में पहुँचे।

ईसा के जन्म के बहुत पहले, भारतवासियों ने शिल्पविद्या में बहुत कुछ उन्नति करली थी। आधुनिक समय का 'ताज-महल' जिस प्रकार पृथ्वीभर को विस्मय में डाले हुए है; इसी प्रकार सांची के बौद्ध-स्तूप और केर्ली की गुफ़ायें भ्रमणकारी को विमुग्ध करती हैं। केर्ली के शिल्पनैपुण्य को आजतक किसी ने अतिक्रम नहीं कर पाया है। बम्बई के पास, पर्वतों को काट कर यह मनोहर गृह बनाया गया था। उड़ीसा प्रदेश में भी भरतवासियों ने पर्वत काट कर ऐसे मनोहर दो-तल्ले और तीन-तल्ले गृह-गह्वर इत्यादि निर्माण किये हैं, कि इस समय भी उनको देख कर विस्मय होता है।

प्राचीनकाल में भारतवासी पत्थर काट कर हाथी, हिरन, मनुष्य, वृक्ष इत्यादि की मूर्त्तियाँ ऐसी मनोहर बना सकते थे, कि फ़र्गूसन साहब ने लिखा है, कि वैसी सुन्दर मूर्त्तियाँ पृथ्वीके और किसी भाग में नहीं पाई जाती हैं।

पुरानी दिल्ली में एक लौहस्तम्भ खड़ा हुआ है। वह २३ फ़ीट ८ इञ्च लम्बा है। नीचे का व्यास १६ इञ्च और ऊपर का १२ इञ्च है। फ़र्गूसन साहब ने उसको देख कर विस्मय से लिखा है,—"इसके द्वारा प्रमाणित होता है, कि कुछ दिन पहले तक यूरोप ऐसे स्तम्भ नहीं बना सकता था; इस समय भी कदाचित्‌ही बना सकता हो; परन्तु हिन्दूलोग चौथी अथवा पाँचवीं शताब्दी में उनको बना सके थे। हिन्दू लोगोंके ऐसे स्तम्भ बना लेने का बड़ा आश्चर्य यह है, कि इतने दिनोंसे

वह हवा-पानी को सह रहा है ; परन्तु अभीतक उसमें मोरचा नहीं लगा है, और उसके ऊपर के लिखे हुए अक्षर आजके लिखेसे ज्ञात होते हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है! ऐसे स्तम्भ भारत में विरल नहीं हैं। इससे कई शताब्दी पीछे, कनारक में जो मन्दिर बना है उसकी छत पर भी ऐसेही स्तम्भ लगाये गये हैं।"

भारतवासी किसी समय में मृत देह को ध्वंस न होने देने के उपायों से अवगत थे। वे आश्चर्यकारक प्रलेप लगाकर, मृतदेह को कालके आक्रमण से रक्षा करना जानते थे।

भारत की मिट्टी में रत्न, स्वर्ण, चाँदी, ताम्बा इत्यादि उत्पन्न होते थे। जगद्विख्यात कोहनूर भारतमेंही उत्पन्न हुआ था। यहाँ के वृक्ष लोहे की तरह दृढ़ होते हैं। यहाँ के पहाड़ संगमरमर, समुद्र मुक्ताफल, वृक्ष चन्दन-वास और वनफूल सुगन्ध प्रदान करते हैं। स्वर्णप्रसू भारत को किस वस्तु का अभाव था ?

जो हिन्दूगण अधःपतन के इन दिनों में गृहलक्ष्मी की छाया परित्याग करतेही मूर्च्छित हो जाते हैं; बाहर जाने पर आत्मनिर्भरता का उपाय ढूँढ़ने में असमर्थ होते हैं ; वही हिन्दू अपने गौरव के दिनोंमें, अध्यवसाय का अवलम्बन करके, साहस और उत्साह से अधीर होकर, दिग्दिगन्त में अपना गौरव विस्तार करते थे। वह स्वदेश की बहुतसी सामग्री लेकर कास्पियन सागर और भूमध्य सागर के तीरवर्ती प्रदेशों में

उतरते थे और वाणिज्य करते थे। प्राचीन समय में भी, ढाका की मलमल, भारत के रेशमी वस्त्र, मणि-मुक्ताओं के अलङ्कार इत्यादि मध्य एशिया, एफ्रि.का और यूरोप में बिकने के लिये जाते थे और विदेशी नरपतिगण को विस्मय उत्पादन कराते थे। ईसामसीह से चार शताब्दी पहले, यूरोप के दिग्विजयी एलेक्ज़ेण्डर की सेना की चिकित्सा के लिये हिन्दू चिकित्सक नियुक्त हुए थे। सोलहवीं शताब्दी में भी, भारतवासी अरब-समुद्र को पार करके एफ्रि.का गये थे और एबीसीनिया का सुदृढ़ दुर्ग निर्माण किया था और आठवीं शताब्दी में बग़दाद के अधिपति ने अपनी चिकित्सा के लिये एक हिन्दू चिकित्सक नियुक्त किया था।

गौरव के दिनों में, हिन्दू लोग सभी महासमुद्रों की यात्रा करते थे; अरब-समुद्र पार करके, भारतवर्ष से एफ्रि.का पहुँचते थे और नील नदी के तीर पर अपना उपनिवेश स्थापन किया था।

प्राचीनकाल में, हिन्दूगण ने भारत के दक्षिण-प्रान्त में मथुरा नगरी (वर्त्तमान मदुरा); ब्रह्मदेश में हस्तिनापुर और दूरवर्ती श्यामदेश में अयोध्या नगरी (वर्त्तमान अयूथा) निर्माण की थी। ब्रह्मा, श्याम, अनाम, कम्बोडिया, जावा और बलिद्वीप में हिन्दू-उपनिवेश स्थापन हो गये थे ; वहाँ पर हिन्दू-राज्यकी स्थापना की गयी थी। चीन-परिव्राजक फ़ाहियान, सन् ४०० ईस्वी में, जलयान द्वारा भारतवर्ष से अपने देश को गया

था। उसने लिखा है कि उस समय भी जावा और बलि-द्वीप में बहुतसे ब्राह्मण वास करते थे।

भारत और इन सब स्थानों के हिन्दूगण प्रशान्त महा-सागर पार करके अमेरिका को गये थे, और वहाँ हिन्दू-उप-निवेश स्थापन किया था। कम्बोडिया और जावा द्वीप के प्राचीन हिन्दुओंकी सभ्यता और अमेरिकाके अन्तर्गत मेक्सिको प्रदेश की सभ्यता में बहुत समानता थी; मेक्सिको में हिन्दुओंके बहुतसे चिह्न पाये जाते हैं। पण्डित-प्रवर मेक्स-मूलर ने लिखा है,—"प्राचीन एशिया और प्राचीन अमे-रिका की भाषा और धर्ममें ऐसे चिह्न पाये जाते हैं, कि उनको देखने से चित्त में होता है कि पुराकाल में एशिया के बहुत से अधिवासी अमेरिका गये होंगे। वह लोग एशियाके उत्तरी भाग से अथवा दक्षिण की ओर से यात्रा करके, अनुकूल हवा की सहायता से, एक द्वीप से दूसरे द्वीप में होते हुए, क्रम से अमेरिका पहुँचे थे।

अँधेरी रातके आकाश में आतिशबाज़ी की नीली, पीली, रक्तवर्ण मनोहर छटा की तरह, भारत के इतिहास में, बौद्धयुग की भी कैसी सुन्दर उज्ज्वल छटा है! ईस्वी सदी के ६०० वर्ष पहले, बुद्धदेव भारत में अवतीर्ण हुए और शोक-तापमय पृथ्वी पर सब से पहले सर्वसाधारण के लिये धर्म-प्रचार किया; जिससे मनुष्य विशुद्ध चरित्र, परोपकार-व्रत और लोभ-विमुक्त प्रकृति द्वारा, इसी लोक में सुख-दुःखसे छूटकार मुक्ति

लाभ कर सकता है। भारतवासियों ने इस धर्म को ग्रहण करके कैसा विशुद्ध प्रेम पाया था! उस समय भारत में आदर्श नृपति और आदर्श धनाढ्य पुरुषों का अभाव नहीं था। उन लोगों ने असंख्य बौद्ध-विहार बनवाये थे। इन विहारों में सहस्रों भारतवासी छात्र और अध्यापक, आजीवन अविवाहित रह कर, स्वार्थपरता छोड़ कर, विहार के बनवाने वालों के व्यय से पेट भरते हुए, दिनरात ज्ञान और धर्म के अनुशीलन में मग्न रहते थे। अध्ययन और अध्यापन के अतिरिक्त, उनका और कोई काम नहीं था। यहाँ पर बौद्धशास्त्र, न्याय, दर्शन, वेद, व्याकरण, चिकित्साशास्त्र इत्यादि प्रयोजनीय विषय पढ़े जाते थे। इनमें से एक नालन्द-विहार के विषय में, मैं पीछे लिखूँगा। समस्त भारतवर्ष इसी प्रकार ज्ञानालोक से उद्भासित हो रहा था। भारत के महास्रोत से जो ज्ञान और धर्म उत्पन्न हुआ था, उससे समस्त पृथ्वी धुल रही थी; दूरवर्ती तिब्बत, चीन और कोरिया के नृपति पर्यन्त बारम्बार दूत भेज कर बड़ी आराधना और सम्मान प्रदर्शन करके, भारत के बौद्ध महापण्डितों को अपने-अपने देशों में ले जाते थे। वह लोग वहाँ जाकर धर्मप्रचार करते और ज्ञानविस्तार करते थे। तिब्बत, चीन, तातार, अनाम और श्याम इत्यादि दूर-देशों से दल के दल लोग भारत में आकर, बहुत दिन ठहर कर, संस्कृत भाषा का अध्ययन करते थे। लौटते समय, वह लोग बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ अपने साथ ले

जाते थे। आज भी दूरदेश जापान में संस्कृत के बौद्धग्रन्थ पाये जाते हैं। आज जिस प्रकार पृथ्वी यूरोप से ज्ञान सम्पादन कर रही है; बौद्धयुगमें, ठीक इसी तरह समस्त पृथ्वी भारत के ज्ञान-भण्डार से रत्न संग्रह करती थी; भारतवासी उस समय केवल परोपकार-जीवन वहन करते थे। सहस्रों भारतवासी अपनी इच्छा से स्वदेश परित्याग करके, दिग्-दिगन्त में भारत का गौरव विस्तार करने के लिये धावित होते थे। वे लोग वन्य-पशु और जङ्गली मनुष्यों में होते हुए, जङ्गल-पहाड़ों और दुस्तर नदियों को पार करके, उत्तर की ओर नैपाल, काश्मीर, तिब्बत, बल्हिक, बुखारा, मङ्गोलिया, चीन, कोरिया और जापान; पश्चिम में काबुल, सिरिया, पैलेस्टाइन, एफ्रिका-स्थित मिस्र और साइरिनी एवं यूरोप के अन्तर्गत मेसिडन और ऐपिरस प्रदेश; पूर्व में ब्रह्मा, कोचीन-चाइना, जावा, सुमात्रा और फ़ारमोसा द्वीपपुञ्ज, एवं दक्षिण ओर लङ्का-को जाते थे। वह लोग इन स्थानों में दीर्घकाल तक ठहर कर ज्ञान और धर्म-प्रचार करते थे। इसीलिये, ईसा की चौथी शताब्दी के अन्तिम भाग में, फ़ाहियान ने स्थल-पथ से भारत को आते समय साईबेरिया के दक्षिणवर्त्ती तातार प्रदेश में, कास्पियन समुद्र के पश्चिम यूरोप-खण्ड में एवं अफ़गानिस्तान में, बौद्ध-धर्म का बड़ा ज़ोर प्रत्यक्ष देखा था। इसीलिये यूरोप के उत्तर प्रान्त और लेपलैण्ड में आज तक, बौद्ध-धर्म प्रचलित है। एक ज़माने में भारत का बौद्ध-धर्म

समग्र मानव-जाति की एक तिहाई ने ग्रहण कर लिया था ।

समस्त पृथ्वी ने भारतवर्षसेही प्रधान धर्मों के मूल ग्रहण किये हैं । ईसामसीह के जन्म से पहले, भारत के सम्राट् अशोकवर्द्धन ने पैलेष्टाइन में बौद्ध-धर्म-प्रचारकों को भेजा था; एवं ईसामसीह के समय में भी बौद्धश्रमणगण वहाँ रह कर धर्म-प्रचार करते थे, इस का भी प्रमाण विद्यमान है । दूसरी बात यह है, कि बुद्ध और ईसा की जीवनी में धर्ममत और उपदेशोंके सम्बन्धमें विस्मयकर समानता है । प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थोंकी उपदेशजनक बातें सभी बाइबिल में पाई जाती हैं । रोमन केथोलिक लोगोंका याजक-सम्प्रदाय, धर्म्मानुष्ठान, रीति-नीति सभी बौद्ध-धर्मका अनुकरण-मात्र है । इसलिये नि:सन्देह कह सकते हैं, कि यूरोप जिस विशुद्ध धर्मका गौरव कर सकता है, वह भारतसेही गृहीत किया गया है । जर्मन-पण्डित सपनहर ने लिखा है,—"ईसामसीह के धर्मका मूल भारतवर्षही है । इसी से ज्ञात होता है कि, सम्भवत:, भारत से ही ईसाई धर्म गृहीत हुआ है ।" रूसदेश के एक याजक ईसाई को तिब्बत में जो ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, उस से प्रमाणित होता है कि ईसामसीह ने स्वयंही भारत और तिब्बत में बहुत दिन रह कर हिन्दू और बौद्ध-धर्म की शिक्षा पाई थी ।

बौद्ध-धर्म से उत्पन्न ईसाई-धर्म का मुहम्मदी-धर्म बहुत बड़ा ऋणी है । मुहम्मद स्वयंही ईसामसीह को ईश्वरप्रेरित

समझते थे। इसके अतिरिक्त, धर्ममन्दिर में उपासना करना, पाँच बेर उपासना करना और उपासना के पहिले उच्च स्वर से सर्वसाधारण का आवाहन इत्यादि बहुतसे विषय मुहम्मद ने बौद्ध-धर्म से ग्रहण किये थे।

प्रतापमें भी भारतवर्ष एक दिन अतुलनीय था। एक दिन भारतवासियों ने, समुद्र का सेतु बाँध कर, लङ्का विजय की थी। भारतवर्ष वीर-निकेतन था, इसी कारण कुरुक्षेत्र भारत के श्मशान-क्षेत्र में परिणत हो गया।

ईसा से पाँच शताब्दी पहले, ग्रीस के सुप्रसिद्ध भ्रमणकारी और इतिहासजनक हेरोडोटस ने लिखा है,—"वर्त्तमान समय में, समग्र पृथ्वी पर भारतवासीही सर्व्वापेक्षा प्रबल जाति है।"

ईसा से चार शताब्दी पहले, महाबली महाराज चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठे थे। उनके पास छै लाख पैदल, तीस हज़ार सवार और नौ हज़ार हाथी थे। उन्होंने समस्त भारतवर्ष को एकच्छत्री बना लिया था। दिग्विजयी एलेक्ज़ेण्डर की मृत्यु के पीछे, उसके सेनापति सेल्यूकस ने एशिया के पश्चिमांश का अधिपति होकर भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। चन्द्रगुप्त ने उसको पराजित किया। ग्रीक मेगेस्थनीज़ बहुत दिनों तक चन्द्रगुप्त के दरबार में दूत-रूप में रहा था। उसने राजधानी पाटलिपुत्र की इस प्रकार वर्णना की है;—"नगरी की परिधि प्राय: २५ मील है। उसके चारों ओर

एक वृहत् खाई चारसौ हाथ चौड़ी और तीस हाथ गहरी है। वहाँ से चहारदीवारी आरंभ होकर नगर को वेष्टन किये हुए है। उसमें प्रवेश करने के लिये चौंसठ तोरण-द्वार हैं। प्राचीर के ऊपर, प्रहरीगण के लिये, ५७० चूड़ागृह बने हैं।" मेगास्थनीज़ ने देख कर लिखा है,—"भारतवासियों का साहस उनका सर्वप्रधान गुण है, युद्धविद्या में वह एशिया की अन्य जातियों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, यह बात विविध प्रमाणों से प्रमाणित है।"

ईसा के तीन शताब्दी पहले; चन्द्रगुप्त के पौत्र, बौद्ध महाराज अशोकवर्द्धन ने मगध के सिंहासन को अलङ्कृत किया। उस समय भारतवर्ष उन्नति के सर्व्वोच्च शिखर पर पहुँचा हुआ था; भारत का गौरव दिग्दिगन्त में फैला हुआ था। उनका साम्राज्य भारत के अधिकांश में और काबुल, कन्दहार तथा वाल्हीक प्रदेश में फैला हुआ था। मिश्र, मेसिडन, सिरिया, साइरिनी और एपिरस इत्यादि अति दूरवर्त्ती देशों के नरपति उनके साथ सन्धि-सौहार्द्द रखते थे। फाहियान पाटलिपुत्र के राज-प्रासाद के भग्नावशेष को देखकर लिखता है,—"अशोक ने दैत्यगण द्वारा पत्थर के ऊपर पत्थर रखवाकर यह हर्म्यमाला निर्माण कराई थी। उसकी प्राचीर और तोरणद्वार का शिल्पनैपुण्य मनुष्य के हाथ का नहीं मालूम होता है। वह ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान है।" अशोक ने बौद्ध-प्रचारकगण को एशिया में चारों ओर, और एफ्रिका और

यूरोप में भेजा था। भारत में असंख्य बौद्ध-विहार बनवाये थे। चीन और तिब्बत के परिव्राजकगण ने पटना के निकटवर्त्ती नालन्दविहार का विवरण लिपिबद्ध किया है। वहाँ चारों ओर हर्म्यमालाएँ आकाश को छू रही थीं। एक प्रासाद १६०० फीट लम्बा और ४०० फीट चौड़ा बना था। उसमें छात्र और अध्यापकगण रहा करते थे। उसके ध्वंसावशेष के पास कितनेही बौद्ध-मन्दिर पड़े हुए हैं। वहाँ पर सुन्दर पानी के बड़े-बड़े जलाशय बने हुए थे, जिनमें से दो तो एक-एक मील लंबे थे। यहाँ पर दस हजार बौद्ध अध्यापक और छात्र, राज्य की ओर से भोजन पाकर, दिन-रात केवल अध्ययन और अध्यापन करते थे। चीन-परिव्राजक हुयेन-सांग ने प्रत्यक्ष करके लिखा है,—"नालन्द के बौद्धतपस्वी महापण्डित हैं; समग्र भारतवर्ष उनका सम्मान करता है और उनका आदेश शिर झुका कर प्रतिपालन करता है।" अशोक ने जिस प्रकार विद्यालय और धर्म्ममन्दिर प्रतिष्ठित किये थे, उसी तरह मनुष्य और पशुओं के लिये अगणित दातव्य-औषधालय स्थापन किये थे। इन स्थानों में पीड़ित व्यक्ति बिनामूल्य आहार और औषधि पाते थे। अशोक गुण के पुरस्कार-प्रदानार्थ, बीच-बीच में सभायें करके सर्व्व प्रकार के गुणों को उत्साह प्रदान करता था। उसने बहुतसे राजपथ निर्माण कराके, उनके दोनों किनारों पर वृक्ष लगवाकर, कुएँ खुदवाकर, सरायें बनवायी थीं। उसकी अनुशासन-स्तम्भावली अथवा शिलालेख आज

भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में दण्डायमान है; और अँधेरे समुद्रगर्भ में, समुन्नत आलोकस्तम्भ की तरह भारत के अतीत गौरव के दर्शनेच्छुकों को पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। एक-एक स्तम्भ एक-एक पत्थर से काट कर बनाया गया था। बड़े-बड़े पत्थर काट कर ये सुन्दर गोल स्तम्भ तय्यार किये गये थे। इन अनुशासन-स्तम्भों के ऊपर खुदा हुआ है,—"अविराम न्याय-पूर्व्वक विचार करने से बढ़ कर सर्व्वसाधारण के मङ्गल की मूल और कुछ नहीं है; उसी विचार को प्रजापुञ्ज में वितरण करने के लिए मैं उत्तरदाता हूँ, और उसी का वितरण करना मेरा लक्ष्य है।" किसी-किसी स्तम्भपर लिखा हुआ है,—"मेरी एकान्त वासना यही है, कि मनुष्य चाहे किसी मत का अनु-यायी क्यों न हो, चरित्र की उन्नति का साधन करना चाहिए, सबही को एक दूसरे की श्रद्धा करनी चाहिए। मत-पार्थक्य से हिंसा-विद्वेष न होना चाहिए।" अशोक का नाम यूरोप की वॉलगा नदी से जापान तक और साइबेरिया से लङ्का तक फैला हुआ है। पण्डितवर कोपेन के मत से, भारत का अशोक यूरोप के सीज़र और शार्लमेन से भी अधिक सुप्रसिद्ध है।

इसके पीछे अन्ध्रवंश और गुप्तवंश ने उत्तरभारत में सुशासन किया है। छठी शताब्दी में, महाराज विक्रमादित्य का आविर्भाव हुआ। उनका प्रताप और यश आज भी भारत में शतकण्ठ से कीर्त्तन होता है। उन्हीं के समय में

महाकवि कालिदास ने भारत के साहित्य-कानन में, प्रस्फुटित होकर, सुगन्ध का विस्तार किया।

ईसा की सातवीं शताब्दी में, बौद्ध-महाराज हर्षवर्द्धन अथवा शिलादित्य ने कान्यकुब्ज के सिंहासन से समस्त आर्य्यावर्त्त का सुशासन किया। उनके पास ५० हज़ार पैदल, २० हज़ार अश्वारोही और पाँच हज़ार हाथी थे। वह हर पाँचवें वर्ष बौद्ध-महोत्सव सम्पन्न करते थे और बहुतसा धन दीन-दरिद्रों में वितरण करते थे।

हिन्दुओं के गौरव के दिनों में, विदेश-गमन और समुद्र-यात्रा से धर्म्म नष्ट नहीं होता था। अथवा यों कहिये, कि धर्म्म नष्ट न होने के कारणही वह लोग गौरवान्वित हुए थे। बहुत पुराने काल में, वह लोग सौ-सौ डाँड़ों की नौकाओं पर समुद्र में विचरण करते थे। पहले तमलुक बन्दर समुद्र किनारे था। फ़ाहियान तमलुक बन्दर से, एक वृहत् बङ्गाली पोत द्वारा, लङ्का को गया था। जावाद्वीप से हिन्दुओं के जहाज़ द्वारा चीन को गया था। चीन-परिव्राजकगण भारत के जहाज़ों द्वाराही स्वदेश को जाते थे। हिन्दू लोग उनको चलाया करते थे। एक-एक पोत पर प्राय: २००।२०० मनुष्य तक जा सकते थे। उस समय ब्राह्मण लोग भी जहाज़ों द्वारा चीन को जाते थे। उड़ीसावासी भी छोटे-छोटे जहाज़ बनाकर उनमें जाया-आया करते थे। चीन-परिव्राजक हुएन-साँग, सातवीं शताब्दी में, भारतवर्ष में आया था। उसने लिखा

है,—"उड़ीसा के बन्दर से वणिकगण जहाज़ों पर चढ़-चढ़ कर अनेकानेक दूरदेशों को जाया करते थे।" जिस समय हिपलस अरब-समुद्र पार करने का साहसी नहीं हुआ था; जब ग्रीस और रोम देश के जहाज़ भारत महासागर में नहीं आ पाये थे; जिस समय मुसल्मान लङ्का, ब्रह्मा, मलाका और सुमात्रा में उपनिवेश स्थापन नहीं कर सके थे; उसी समय से हिन्दुओं के बड़े-बड़े जहाज़ बङ्गाल की खाड़ी में घूम-घूम कर इन द्वीपों में वाणिज्य कर रहे थे। बङ्गाली लोग तमलुक में जहाज़ बनाते थे, और थोड़े से खर्च में ऐसे सुन्दर जहाज़ निर्म्माण करते थे, कि दूरवर्त्ती यूरोप के तुर्कराज भी यहाँ अपने जहाज़ बनवाते थे। चट्टग्राम के बन्दर में अब भी बङ्गाली लोग जहाज़ बनाते हैं। अकबर ने यूरोप के जहाज़ों से प्रतिद्वन्द्विता करने की अभिलाषा से जो बड़े-बड़े जहाज़ बनवाये थे, उनका पीछे से वर्णन करूँगा।

इस हतभाग्य देश का अतीत बड़ा मनोहर था। ग्रीक मेगास्थनीज़ ने अपनी आखों देखकर लिखा है,—"हिन्दूगण शान्त, स्थिर और शान्तिप्रिय हैं; उत्कृष्ट सैनिक और उत्कृष्ट कृषक हैं। वह लोग विलासहीनता और सत्यवादिता के लिये प्रसिद्ध हैं। वह इतने न्यायप्रिय हैं, कि अदालत का आश्रय लेने की उनको आवश्यकताही नहीं है। वह इतने सच्चे और साधु-प्रकृति हैं, कि उनमें चोरही नहीं हैं। गृह-द्वार को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है।

अधिकार को लिपिबद्ध करने का प्रयोजन नहीं है। सब से बढ़ कर यह है, कि कोई भी नहीं कह सकता है, कि एक भी भारतवासी ने मिथ्याभाषण किया है। खेत के एक ओर युद्ध हो रहा है, दूसरी ओर कृषकगण निर्भय हल चला रहे हैं, सैन्यगण उनके ऊपर अथवा गाँव और खेतों पर कभी किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करते। इन लोगों में दास-प्रथा नहीं है। भारतभूमि बड़ी उर्व्वरा है। उसका अधिकांश नहरों द्वारा सींचा जाता है। भारत में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता है, बलकारक आहार भी कभी दुष्प्राप्य नहीं होता है। भारत की रमणियाँ अत्यन्त सती हैं।" ईसा की सातवीं सदी में, चीन-परिव्राजक हुयेन-साङ्ग ने भारत-भ्रमण करके लिखा है,—"भारतवासी लोग सरल और साधुप्रकृति के हैं। वह लोग प्रवञ्चक अथवा विश्वासघातक नहीं हैं, वाक्य और प्रतिज्ञा को अक्षर-अक्षर प्रतिपालन करते हैं। वह सम्मान-योग्य हैं।" पहले आर्य्यगण गौराङ्ग थे। वर्त्तमान समय की तरह उन में जातिभेद नहीं था। वह लोग नहरें बना कर खेतों में पानी देते थे। पहले यहाँ पर्दा भी नहीं था। नदी-स्रोत में पूजा करने वाले की फूलों की माला की तरह कुल-ललनागण राजपथों और खुली जगहों में निकलती-बैठती थीं। राजा और रानी खुले हुए घोड़ों के रथ पर बैठ कर, प्रजा की पूजा ग्रहण करते हुए और उनकी अवस्था अवलोकन करते हुए जाते थे। अब भी महाराष्ट्र

देश और नेपाल में, बङ्गाल की तरह पर्दा नहीं है। बहुत पूर्व्वकाल में भी भारत की रमणियाँ शिक्षा प्राप्त करती थीं; सङ्गीत-विद्या भी सीखतीं थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती इत्यादि विदुषी रमणी थीं। इस समय भी महाराष्ट्र देश, उड़ीसा और नैपाल में, प्राचीन समय से स्त्री-शिक्षा प्रचलित है। भारत के हिन्दू-समाज में एक दिन विधवा-विवाह भी प्रचलित था। अब भी पञ्जाब, उड़ीसा और नैपाल में ब्राह्मणों में विधवा-विवाह प्रचलित है। एक ब्रह्मदेश को छोड़कर भारत के अन्य सब स्थलों में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और कायस्थों के सिवा और सब जातियों में विधवा-विवाह प्रचलित है। एक समय में, इस देश में बाल-विवाह नहीं था। भारत की ललनागण रथ चलाना, घोड़े पर चढ़ना और अस्त्र चलाना जानती थीं। अब भी राजस्थान और महाराष्ट्र रमणियाँ घोड़े पर सवार होकर भ्रमण करती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में भी, हिन्दू ललनाओंने बन्दूक़ इत्यादि द्वारा अङ्गरेज़ों से संग्राम किया है। पहले आर्य्यगण कठपुतली की भाँति नहीं थे; वह प्रकृति के सौन्दर्य्य को देखकर, विस्मयाभिभूत और विमुग्ध होकर, उसकी आराधना में प्रवृत्त होते थे। इसीलिये ऋग्वेद में आकाश और ऊषा इत्यादि की आराधना के गीत विरचित हुए थे। क्रम से ज्ञान की उन्नति के साथ प्रकृति की उपासना और उसके साथ ईश्वरत्व का ज्ञान उत्पन्न हुआ था। उन्होंने जान लिया था, कि ईश्वर

एक ही है, और वही इस विस्मयकर विश्वका सृष्टि करने वाला है। वह लोग उसी परमेश्वर को उपासना करते थे। इसी समय हिन्दुओं के अति गौरव की वस्तु 'उपनिषद्' विरचित हुए थे।

जब कभी किसी ऐसे स्थिर और शान्त पल्लीग्राम के उद्यान में, जो निर्म्मल स्रोतस्विनी के जल से परिधौत है, जो सुललित सहस्रों पक्षियों के कल-कण्ठ से गूँज रहा है, जो स्निग्ध मलयानिल से सुवासित है, जो आम,कटहल, नारियल, सुपारी इत्यादि के मधुमय फलों के वृक्षों से शोभायमान है, अकेले जाने का अवसर होता है ; तब अपने-आप चित्त में यह भाव उदय होता है, कि पहले ऐसेही स्थलों में पवित्र तपोवन थे। कितनेही तपस्वी ऐसे फल-पुष्पपूर्ण उद्यानों में पर्णकुटियाँ बना कर, अपनीही इच्छा से विलास और ऐश्वर्य्य को छोड़ कर, केवल धर्म्म और ज्ञान के अनुशीलन में दिनरात अतिवाहित किया करते थे। उन लोगों के स्त्री, पुत्र, कन्या और सैकड़ों विद्यार्थी वृक्षों की सुशीतल छाया में बैठ कर अमृतभाषी तपस्वी से वेद इत्यादि अध्ययन करते थे। ऋषिगण प्रभात और प्रदोष को सामवेद गाकर तपोवन को पुलकित करते थे। राजा और रानी इन्हीं पवित्र आश्रमों में उपस्थित होकर ऋषिगणों के पास राजनीति इत्यादि की शिक्षा ग्रहण करते थे। निःस्वार्थपर और परोपकारमयजीवन ऋषिगण भारत के शीर्षदेश में थे ; इसी कारण भारत में आदर्श राजा, आदर्श समाज और आदर्श चरित्रवालों का अभाव नहीं था। शीर्ष-

स्थानीय पुरुषगण स्वार्थपर नहीं थे, इसीलिये भारतवर्ष ऐसा गौरवान्वित हो सका था। भारत के पण्डितवर इन्हीं तपोवनों में उत्पन्न हुए थे। पूर्व्वपुरुषगण न जाने क्यों—भारत के अतीत गौरव के चित्र को साहित्य के सुवर्ण-फलक में सयत्न रख गये हैं! साहित्य, क्यों अतीत के दृश्य को अपने वक्षस्थल में रख कर समुज्ज्वल हो रहा है?

दूसरा अध्याय।

अधःपतन।

Crowness, now, forlorn I'm weeping,
Dust and ashes all my meed,
Sluggard sons ignobly sleeping,
In a slough of selfish greed.

The star in the East.

आओ इतिहास, आओ और सुनो कि भारतगौरव-रवि किस प्रकार सदैव के लिए अस्त होगया, फिर उसका उदय नहीं हुआ, पठानसाम्राज्य का पतन हुआ, तथापि हिन्दू साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ, मुग़ल-साम्राज्य चूर्ण होगया, तथापि हिन्दू-गौरव-रवि भारताकाश में फिर नहीं उठा!

आठवीं शताब्दी का आरम्भ होगया है, नये-नये दृश्य नयनपथ में आ रहे हैं। जो निःस्वार्थपरता की मूर्त्तियों का अभिनय-पारिपाट्य एशिया, एफ्रिका और यूरोप में भारत-गौरव

को विस्तार कर रहा था, वह सदैव के लिये भारत के रङ्गमञ्च से चला गया है। हिंसा-विद्वेष-रहित जो बौद्धधर्म्म, बहुधर्म और बहु-जातिमय भारतवर्ष को एक करने के लिये, सद्वोपकार-साधन के लिये स्नेह से हाथ बढ़ा रहा था; वह भी रङ्गभूमि से अदृश्य हो गया है। बौद्ध-गर्भाङ्क, जो असंख्य गगनस्पर्शी विद्या-मन्दिरों के दृश्य प्रदर्शन कर रहा था, वह भी इस समय अतीत की अन्धकार-यवनिका के पीछे अदृश्य हो गया है; उसके बदले उनके धूल में पड़े हुए विषादपूर्ण दृश्य दिखाई दे रहे हैं। जनसाधारण ज्ञान-अनुशीलन से निवृत्त हो गये हैं। ब्राह्मण इस समय ऐसे स्वार्थपर हो गये हैं, कि ज्ञान और धर्म्मानुशीलन को अपनेही सम्प्रदाय में आबद्ध कर रक्खा है; वेदरूपी खानि के विशुद्ध सोने के बदले ताम्बेपर मुलम्मा किया हुआ सोना वितरण कर रहे हैं। इस समय राजपूतों ने एक नया अभिनय आरम्भ किया है, समग्र भारत में छोटे-छोटे राज्य हो गये हैं और आपस में आत्मकलह कर रहे हैं। स्वार्थ-परता समग्र भारत में अपना आधिपत्य विस्तार कर रही है। स्वार्थपरता से उत्पन्न हुई, देखने में सुन्दर, कुटिल नीति द्वारा कार्य्य सम्पन्न हो रहे हैं। पुराना सुख सम्पूर्ण रूप से विदा हो गया है।

बीस वर्ष के बालक मुसल्मान क़ासिम ने, केवल ६००० सेना लेकर, बलूचिस्तान की विस्तृत मरुभूमि को बिना किसी रोक-टोक के पार करके, भारत पर आक्रमण किया था।

सिन्धके हिन्दूराज्यको विजय करके बहुतसे मन्दिर और मूर्त्तियाँ तोड़ीं, कितनेही हिन्दुओंको मुसल्मान और बन्दी किया, कितनेही भारतवासियोंको लूटा और मार डाला (७११ ई०)। वह एक-एक नगरके द्वारपर पहुँचता और उसके अधिवासीगणोंको इस्लाम-धर्म्म ग्रहण करनेको और प्रचुर परिमाण में धन देनेको बुलाता। हिन्दू लोग जिस धनको देकर आत्म-रक्षा करते थे, वह 'जज़िया' नामसे विख्यात है। अरबको अनुशासन-प्रथाके अनुसार काफ़िरोंमें धनवान्‌को १२) साल, मध्यम श्रेणी वालेको ६) साल और श्रमजीवी दरिद्रियोंको ३) प्रतिवर्ष देने पड़ते थे। इसके पीछे यह नियम प्रचलित हुआ, कि विधर्म्मियोंका जीविका-निर्वाह होकर जो धन बचे वह सब जज़िया-रूपमें ले लिया जाय। फ़रिश्ताने लिखा है कि, मृत्यु-तुल्य दण्ड देनाही जज़िया लगानेका उद्देश था। काफ़िर लोग इस दण्डको ग्रहण करके मृत्युसे बच सकते थे; परन्तु हिन्दू-पूर्ण समस्त भारतवर्षको मिल कर क़ासिमके अत्याचार निवारण करनेका उद्योग करना तो दूर रहा, कितनेही हिन्दू राजा इस नवागत, अपरिचित, अश्रुतपूर्व्व विदेशी विधर्मी से मिल कर स्वदेशका सर्व्वनाश करने लगे।

क़ासिमके पीछे प्रायः तीन सौ वर्ष व्यतीत हो गये। इस समय भी सुविस्तृत भारतमें हिन्दुओंकाही राज्य था; इसके अन्तिम सौ वर्षों में काबुलके सिंहासन पर ब्राह्मण राजा

बैठा हुआ था। पासही ग़ज़नीमें महमूद जब बल संग्रह कर रहा था, गृह-द्वार पर प्रबल तस्कर जब शक्ति सञ्चय कर रहा था, उस समय भारतके बुद्धिमान् हिन्दू नरपतिगण अर्गल-शून्य दुर्ग-द्वारको बन्द करके केवल आत्मकलह कर रहे थे। इसी कारण महमूद प्रायः तीस वर्ष तक(१००१—१०३० ई०), सत्रह बेर भारतवर्षको अग्नि और तलवार द्वारा श्मशानमें परिणत करनेमें समर्थ हुआ था। नगरकोटका मन्दिर लूट कर ७०० मन स्वर्ण-मुद्रा, ७०० मन सोने और चाँदीके बर्तन, ४० मन विशुद्ध स्वर्ण, २००० मन चाँदी एवं २० मन बहुमूल्य मणिमुक्ता स्वदेशको ले गया था। महमूदने एक हमलेमें थानेश्वर इत्यादि लूट कर, दो लाख हिन्दू क़ैद करके स्वदेश को भेजे थे। फ़रिश्ताने लिखा है,—"उन हिन्दुओंके वहाँ पहुँचनेके कारण ग़ज़नी हिन्दुओंकीसी नगरी प्रतीत होती थी।" महमूदको एक और आक्रमणमें, मथुरा नगरकी लूटमें, विशुद्ध स्वर्णकी छै मूर्त्तियाँ और उनके शरीर पर के ११ रत्न मिले थे। यदि लुटे हुए भारतकी चरम अवस्था में; बृहत् विश्वेश्वरके मन्दिर और अमृतसरके समुन्नत मन्दिर को सोने से मढ़ा हुआ न देखता, और भारतकी बहुत-सी मूर्त्तियों में रत्न जड़े हुए हैं यह मुझे न मालूम होता, और ताजमहल और तख़्ताऊसको यदि उपन्यासकी सामग्री समझता; तो फ़रिश्ताकी बतलाई हुई लूटे हुए धनकी तादाद पर कभी भी मैं विश्वास न करता। केवल धनरत्न

ही नहीं, महमूद मथुरा इत्यादिसे इतने बन्दी ले गया था, मुसल्मान अलउटबीने लिखा है, कि महमूदने एक-एक बन्दी को ढाई-ढाई रुपये तकमें बेचना चाहा, फिर भी काफ़ी ख़रीदार न मिले। मथुरा उस समय बड़ी समृद्धिशाली नगरी थी। महमूदने लिखा है,—"यहाँ सहस्रों अट्टालिकायें विश्वासीके विश्वासकी तरह दृढ़ भावसे खड़ी हैं। उनमेंसे अधिकांश संगमरमरकी बनी हुई हैं। यहाँ असंख्य हिन्दू-मन्दिर हैं। अपरिसीम अर्थ-व्ययके बिना, इस नगरीकी ऐसी सुन्दर अवस्था नहीं हुई है। दो सौ वर्षके यत्न और परिश्रम के बिना, ऐसी दूसरी नगरी निर्मित नहीं हो सकती है।" हाय! मुसल्मानोंके उत्पीड़नके कारण, मथुराकी सङ्गमरमर की सौध-शोभा इस समय उपन्यासमें परिणत हो गई है। उस समय गुजरातका सोमनाथका मन्दिर सुप्रसिद्ध था। उसकी दीवारों और ५६ खम्बों पर विविध भाँतिके रत्न जड़े हुए थे। सोनेकी ज़ञ्जीरमें दीपक लटक रहा था, जिससे मन्दिर आलोकमय होता था। चालीस मन भारी सोनेकी ज़ञ्जीर से एक वृहत् घण्टा मधुर-ध्वनि विकीर्ण करता था। महमूद ने उस मन्दिरको लूटकर नष्ट कर दिया; उसकी ५ गज़ लम्बी शिवकी मूर्त्तिको अपने हाथसे तोड़कर उसका अपरिमेय और बहुमूल्य धन-रत्न आत्मसात् कर लिया। मुसल्मान उस हिन्दू-मन्दिरके ऊपर नित्य पदाघात कर सकें इसलिये, महमूदने शिवकी मूर्त्तिका एक खण्ड ले जाकर, आधा

ग़ज़नीकी मसजिदकी सीढ़ियोंमें और आधा राज-प्रासादकी सीढ़ियोंमें लगवा दिया। इस समय उस मनोहर मन्दिरके खँडहर पर मुसल्मानी मसजिद विराज रही है।

उस समय एक ओर तो समस्त भारतवर्ष हिन्दू-राज्योंसे परिपूर्ण था; दूसरी ओर महमूद स्वदेशसे बहुत दूर कन्नौजमें और ग़ज़नीसे गुजरातके दक्षिणी प्रान्तमें आनेकी फ़िक्रमें था। दुस्तर सिन्धु प्रभृति बड़ी-बड़ी नदियाँ पार करके, तृणहीन और जलहीन सुदीर्घ मरुभूमि की गर्मीको सहता हुआ, पथ-श्रमसे परिक्लान्त होकर, प्याससे मृत-प्राय होकर, महमूद बारम्बार धावे मारने लगा; परन्तु दो-चार हिन्दू राजाओंके अतिरिक्त, समस्त भारतमें किसीने भी अत्याचार-निवारणका उद्योग नहीं किया; कोई भी शत्रुको शिक्षा देनेके लिये ग़ज़नी नहीं पहुँचा।

यह होता किस प्रकार? अलबेरूनीने उस समयकी भारतवर्षकी शोचनीय अवस्था प्रत्यक्ष रूपसे इस प्रकार लिखी है,—"भारतवर्ष बहुतसे छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त है, और वह सब एक दूसरेसे स्वतन्त्र हैं। वह सब आपसमें एक दूसरेसे युद्धमें प्रवृत्त रहते हैं, और भारतकी शक्तिको नष्ट करते हैं। ब्राह्मण लोग अपने अधिकारोंकी रक्षा के लिये इतने व्याकुल हैं, जातिभेदका विद्वेष ऐसा प्रबल है, कि वैश्य और शूद्रोंको वेद-पाठ करते देखकर ब्राह्मण लोग उन पर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं, और उनको राजद्वारमें उपस्थित करके,

जिह्वा कटवा कर, पीछा छोड़ते हैं। ब्राह्मण लोग सब प्रकारके राज-करसे मुक्त हैं। हिन्दू लोग बाल्यकालमेंही विवाह करते हैं। विधवायें आजीवन दुःख भोगनेके कारण सती हो जाती हैं। हिन्दू लोग और किसी देशको नहीं जाते हैं; और किसी जातिकी श्रद्धा नहीं करते हैं; वह समझते हैं कि उनकासा उत्कृष्ट देश जगत्‌में और नहीं है, और उनकी बराबर श्रेष्ठ जाति पृथ्वी पर दूसरी नहीं है। यदि वह विदेशको जावें, और अन्यान्य जातियोंसे मिलें-जुलें, तो उनको अपना भ्रम समझमें आ जावे, उनके मतका भी परिवर्त्तन हो जावे। उनके पूर्व्वपुरुष उनकी तरह अनुदार नहीं थे।"

महमूदके चले जाने पर, प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पीछे, ग़ज़नी के उस समयके अधिपति, मुहम्मद ग़ोरीने फिर भारत पर आक्रमण किया। दिल्लीके अधिपति पृथ्वीराजने कुछ राजाओंसे मिलकर कुरुक्षेत्रमें ग़ोरीको हराकर भगा दिया। उसके चले जाने पर, हिन्दू लोग फिर आत्मकलहमें मग्न हो गये। इतिहासने भारतके लिये मानों जन्मही ग्रहण नहीं किया था! कन्नौजका राजा जयचन्द पृथ्वीराजसे संग्राम करनेमें प्रवृत्त हुआ और शत्रुका सर्व्वनाश करनेके लिये उसने ग़ोरी को बुलाया। ग़ोरी भारतवर्षकी विजयका समय देखकर, सेना लेकर भारतको चल दिया। कुछ राजाओंके अतिरिक्त, भारतके एक चतुर्थांश हिन्दू भी पुरानी बातको याद करके

ग़ोरीसे लड़नेको अवसर न हुए। कुरुक्षेत्रमें फिर भीषण युद्ध हुआ। पृथ्वीराज पराजित हुआ। ग़ोरी भारतमें पठानी साम्राज्य प्रवर्त्तन करनेमें समर्थ हुआ (११९३ ई०)।

मुसल्मान ऐतिहासिकगणोंने अपना वीरत्व दिखलानेके लिये लिखा है कि, बहुतसे हिन्दू राजाओंने इकट्ठे होकर ग़ोरीपर आक्रमण किया था। उनकी बातों पर विश्वास करनेसे स्वीकार करना पड़ता है, कि हिन्दुओंमें साहसी पुरुष न होनेके कारण, थोड़ेसे मुसल्मानों द्वारा असंख्य हिन्दू पराजित हुए; परन्तु हम इसको स्वीकार नहीं कर सकते हैं; क्योंकि हिन्दू कभी भी अलौकिक वीरत्व प्रदर्शन करने में पराङ्मुख नहीं हुए। कभी-कभी दो-चार राजा लोग मिल जाते थे; परन्तु उन्होंने कभी भी सदैव मिले रहनेका कोई उद्योग न किया, और न कभी बहुत दिनों तक एकत्रित रह सके।

स्वदेशद्रोहीको स्वदेशद्रोहितासे कब लाभ हुआ है? जयचन्दने ग़ोरीको बुलाकर जो भीषण अग्नि प्रज्वलित की थी, उससे शत्रु तो शीघ्रही भस्मीभूत हो गया; परन्तु भारत-वर्षको भी उसने दग्ध करनेमें त्रुटि नहीं की।

पठानोंने दिल्लीमें ३३३ वर्ष राज्य किया। शेषमें, वंश-परम्पराके अनुसार वे भी आत्मकलह करने लगे और बहुतसे विदेशियोंके आक्रमणोंसे पीड़ित होने लगे; तथापि समय-समय पर बहुतही थोड़ी सेना भेज-भेज कर, कभी छलसे और

कभी बलसे, अति समृद्धिशाली हिन्दू राज्योंका एक-एक करके ग्रास करने लगी, और उन पर लोमहर्षण अत्याचार करना आरम्भ किया।

ब्लाकमैन साहबने लिखा है,—"हिन्दुओंका धन-ऐश्वर्य्यही उनके सर्व्वनाशका कारण हुआ था; इसीसे पठान लोग उनको लूटनेके लिये उत्साहित हुए थे।" हिन्दू धर्म्म उनको राजकीय कामोंके करनेका निषेध करता था। पठान राजाओंके उत्पीड़नसे हिन्दुओंके बहुतसे तीर्थ विलुप्त हो गये। यदि हिन्दू लोग तीर्थ-पर्यटनको जाना चाहते, तो पठानराज को कर प्रदान करके अनुमति लेते थे। चौदहवीं शताब्दीके मध्य भाग में, प्रत्येक हिन्दू-परिवार के वयःप्राप्त मनुष्योंकी गणना करके, यह आज्ञा निकाली गई थी कि धनवान् पुरुषसे चालीस रुपया, मध्यम श्रेणी वालेसे बीस रुपया, और प्रत्येक दरिद्रसे दस रुपया प्रति वर्ष जज़ियाकर वसूल किया जाय। फ़ीरोज़ शाहके इतिहासमें यह विधान लिखा हुआ है कि,—"ज्योंही कोई राजकर्मचारी हिन्दुओंसे यह कर चाहे, त्योंही वह अति नम्र भावसे शिर झुका कर उसको दे देवे। यदि कोई मुसल्मान कर्मचारी किसी हिन्दूके मुखमें थूकना चाहे, तो उसको चाहिये कि सीधा खड़ा रह कर मुखको खोले रहे, जिससे वह कर्मचारी अनायासही अपनी अभिलाष पूरी कर सके। यह मुखमें थूकने की प्रथा किसी मन्द अभिप्रायसे नहीं है, केवल हिन्दुओंकी

राज-भक्ति की परीक्षाके लिये है, केवल इस्लामधर्मकी महिमा प्रचार करना और हिन्दू धर्मसे अतुलनीय घृणा प्रदर्शन करनाही इसका मुख्य उद्देश है। यह किसी प्रकार अनुचित नहीं है, क्योंकि ख़ुदाने स्वयं कहा है,—'तुम लोग काफ़िरोंसे घृणा करो।' मुहम्मदने भी कहा है,—'हिन्दुओं को लूटो, उनको चिरदास बनाओ और उनकी हत्या करके स्वर्गका द्वार खोल दो। वह इस्लाम-धर्म क्यों नहीं ग्रहण करेंगे? वह उसके ग्रहण करनेके लिये बाध्य हैं।' हिन्दू लोगोंसे निकृष्ट व्यवहार करना हमारा धर्म-कार्य है; क्योंकि यही मुहम्मद के प्रधान शत्रु हैं। जज़िया लेकर हिन्दुओं को छोड़ देना बड़ा गर्हित काम है। क्योंकि एक अबू हनीफ़के अतिरिक्त और किसी ने हिन्दुओंसे केवल जज़िया लेनेका मत नहीं दिया है। और तो सबने यही कहा है कि,—'या तो वह लोग इस्लाम-धर्म क़बूल करें; नहीं तो उनके खण्ड-खण्ड कर डालो'।" पाठक अश्रुवर्षणका समय अब भी नहीं गया है। एक पठान सम्राट्ने एक हमलेमें मेवात-प्रदेशके एक लाख मनुष्य मार डाले थे। एक पठान राजाने एक हिन्दू राजाका जीवित अवस्था में ही चमड़ा उतरवा डाला था। एक और पठान नृपति ने, अपनी राजधानी दिल्ली से दक्खन में देवगिरि ले जानेकी इच्छा से, दिल्ली-अधिवासियोंको वहाँ जानेका आदेश दिया था, जिससे सहस्रों मनुष्य मृत्युमुख में पतित हुए।

एक और पठान सम्राट् ने कन्नौजसी बड़ी समृद्धिशाली नगरी के अधिवासियों को, वयस देखे बिनाही, निहत कर दिया। वह शिकार का सुख उपभोग करने के लिए, बहुतसी सेना द्वारा बहुसंख्यक मनुष्यों को चारों ओर से घेर कर भीतर को घुसता था और जो कोई निरपराधी पुरुष, रमणी, बालक, बालिका मिलते उनको विविध प्रकारसे मार-कर पैशाचिक आमोद उपभोग करता। एक बार नहीं, बार-म्बार वह इसी अश्रुतपूर्व शिकार-क्रियामें निमग्न होता था। उसने सहस्रों नरमुण्ड अपनी राजधानीकी प्राचीर पर लगवा-कर उसको अलङ्कृत किया था! एक सम्राट् ने नगरकोट की मूर्त्तियों को तोड़कर, उनके साथ गोमांस मिश्रित करके, वे ब्राह्मणों के गलों में बँधवा दी थीं। दक्खिन के एक मुसल्-मान नरपतिने सत्रह वर्षमें पाँच लाख हिन्दुओंको मार डाला था। वहाँका एक और मुसल्मान नरपति राजपथ पर यदि किसी की बरात जाती हुई देखता, तो दुलहन को अपने राजप्रासादमें पकड़वा मँगाता और उसका सतीत्व नष्ट करके वापिस भेज देता। पठानोंके अत्याचारसे भारतवर्ष श्मशाना-वस्था को प्राप्त होगया। जो साहित्यकानन नित नये कुसुमों के सौन्दर्य और सुगन्धसे आमोदित रहता था वह सूख गया। स्वदेशहितैषिता, निःस्वार्थपरता, ज्ञान और धर्म सभी भारतसे अन्तर्हित हो गये। समग्र देश विषाद और अनुत्साहकी छाया छाया में आवृत हो गया।

इसी प्रकार दुःख-दुर्दिनमें चौदहवीं सदी समाप्त हुई । इस समय एक और नई दुर्दशा एक ओरसे आई । मध्य एशिया का विख्यात तैमूरलङ्ग, भारतके पठानोंमें आत्मकलह का संवाद पाकर, बहुतसी सेना लेकर भारतके विजय करने को निकला । उस समय मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का अधीश्वर था । तैमूर बिना किसी रोकटोक के, अनायासही, बेड़े की सहायतासे दुस्तर सिन्धु नदी के प्रखर वेग को पार करके, सेना सहित बढ़ने लगा । जिस प्रदेश, जिस नगरी में उसके पैर पड़ते उसीको लूटता हुआ; घरों को जलाकर निरपराधी अधिवासियों को वन्दी करता हुआ; अथवा तलवार द्वारा उनके खण्ड-खण्ड करता हुआ; दुस्तर पथ को कहीं कृष्णवर्ण, कहीं रक्तवर्ण, कहीं खण्डित मनुष्यों के शरीरों से चिह्नित करता हुआ, आगे बढ़ता जाता था । उसने राह में एक लाख से अधिक मनुष्यों को वन्दी किया ; उनमें से जो पन्द्रह वर्ष से अधिक वयस के थे, उनको बड़ी निष्ठुरता से मरवा डाला । पठानों की एकता-विहीन, नेतृहीन, भीरु, कापुरुष थोड़ीसी सेना अनायासही पराजित होगई । तैमूर दिल्ली के द्वार पर पहुँच गया । दिल्लीश्वर गुजरात को भाग गया । तैमूर ने दिल्ली-निवासियों को रक्षा करने का वचन दिया । सुनतेही मूर्ख अधिवासीगण ने महानगरी का द्वार खोल कर अपनी जन्मभूमि बिना विवाद के शत्रु के हाथ समर्पण कर दी (१३९८ ई०) । दिल्ली उस

समय सामान्य नगरी नहीं थी, आत्मरक्षा के उपाय से विहीन भी नहीं थी। वर्णित समयसे प्रायः ५० वर्ष पहले, एफ्रिका का सुप्रसिद्ध भ्रमणकारी इबन बतूता भारतवर्ष में आया था। उसने लिखा है,—"दिल्ली एक महासमृद्धिशाली नगरी है, उसकी मन्दिर और चहारदीवारी की तुलना जगत् में और कहीं नहीं मिलती। यह महानगरी प्राचीर से परिवेष्टित है, जो ११ हाथ चौड़ी है, नीचे पत्थरकी और ऊपर ईंटकी बनी है। इस प्राचीर के भीतर बहुतसी कक्षायें हैं। उनमें पहरे-वाले रहा करते हैं। यहाँ पर बहुतसी युद्ध की और आहार की सामग्री इकट्ठी रहती है। इस प्राचीर के भीतर ही भीतर घोड़े और पैदल नगरी के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक जा सकते हैं।" तैमूर सेना सहित आनन्द से दिल्ली में प्रवेश करके, अपनी विजय के महोत्सव में, सुरा और सुन्दरी के आमोदोत्सव और नृत्य-गीत में निमग्न हुआ। उसकी उन्मत्त, असभ्य, रक्तलोलुप सेना नगरी के लूटने में प्रवृत्त हुई, और तलवार द्वारा हतभाग्य अधिवासीगणोंको खण्ड-खण्ड करने लगी। पाँच दिन तक लगातार, तैमूर की विपुल वाहिनीने महानगरी में लूटना, जलाना, सतीत्वनाश और नरहत्या इत्यादिका पैशाचिक अभिनय सम्पन्न किया। मुग़ल-सेनाके एक-एक मनुष्यने सौ-सौ अधिवासियोंको स्त्रियोंकी तरह पीड़ित करके बन्दी किया। एक दिल्ली नगरमें, शत्रुओंकी अपेक्षा अधिवासियों की संख्या दसगुनीसे भी अधिक थी।

फ़रिश्ताने लिखा है,—"मुग़ल सेना लूटने की लालसा से महानगरीके विभिन्न अंशोंमें, विभिन्न राज-पथों पर, विक्षिप्त की तरह छूटी थी; लूटे हुए द्रव्य को उठाना कठिन हो गया। यदि अधिवासीगण उनको निहत करना चाहते, तो उस समय भी निहत कर सकते थे। तैमूर की सेना जाति, धर्म और वयसका कुछ विचार न करके अधिवासियों को निहत करने लगी। मृत शरीरोंसे राजपथ अवरुद्ध हो गये। वह लोम-हर्षण बीभत्स व्यापार वर्णन करना असम्भव है।" मुसल्मान ऐतिहासिकगण के मत से, तैमूरलङ्ग ने अकेली दिल्ली में एक लाख मनुष्य मारे थे। यह कल्पना नहीं है और न असम्भव घटना है। जो लोग स्वदेश-रक्षा के लिये रक्तपात करने में कुण्ठित होते हैं, जो लोग स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्मभूमि के बदले आराम का अन्वेषण करते हैं, उनके लिये यह परिणाम होना स्वाभाविक है। हाय, इस देशके सभी पुरुष केवल वर्तमान सुख की रक्षामें व्यस्त हो रहे थे। तभी निष्ठुर लोग निरापद समझ कर अपकार्य द्वारा अपनी प्रधानता दिखलाने की इच्छा करते थे। यदि सब लोग भय और हिंसा को छोड़ कर केवल कर्तव्यपालन करते और वर्त्तमान को छोड़ कर भविष्यत् की ओर ध्यान रखते; तो दुष्ट निष्ठुर मनुष्योंको अवैध शक्ति प्रदर्शन करनेका साहस न हो सकता।

तैमूर भारत में महामारी, दुर्भिक्ष और अराजकता छोड़कर

अपरिसीम धन-रत्न और असंख्य बन्दी लेकर स्वदेश को लौट गया। उसके साथही पठान-शक्ति भी भारत से अन्तर्हित होगई; तथापि पठान राजगण हिन्दुओं पर लोमहर्षण अत्याचार करने से विरत नहीं हुए। सम्राट् सिकन्दर लोदी हिन्दुओंके मन्दिर तोड़ने और मूर्त्तियाँ नष्ट करनेमें मग्न रहा। हिन्दुओंको तीर्थ-पर्यटन और गङ्गास्नानके निषेधकी आज्ञा दे दी गई। इसी समय में एक ब्राह्मण किसी को उपदेश दे रहा था, कि भक्ति और विश्वासके साथ किसी भी धर्म का प्रतिपालन करने से ईश्वर-प्रीति मिल सकती है। इसका संवाद पाकर सम्राट् ने उस ब्राह्मण को बुला कर बहुत तिरस्कृत और अपमानित करके उसे अपना उपदेश लौटा लेनेकी आज्ञा दी। ब्राह्मण किसी प्रकार इस प्रस्ताव से सम्मत नहीं हुआ। वह बुद्धिमानोंकी तरह, शिक्षितों की तरह, विवेकके बदले राजानुग्रह लेनेमें स्वीकृत नहीं हुआ; क्षमाप्रार्थना करके निरापद होने का अभिलाषी नहीं हुआ। वह विपद्-सागरमें निमग्न होनेपर भी, अति दृढ़ता के साथ, अपना मत समर्थन करने लगा। शेषमें, सम्राट् उसका शिर काट कर निवृत्त हुआ। जिस समय नृपतिगणों की ऐसी शोचनीय अवस्था थी, उस समय चित्तौड़ के महाराणा संग्रामसिंह ने अठारह बेर सम्मुख संग्राम करके, दिल्लीश्वर को और मालवा के मुसल्मान राजाओंको पराजय करके, भारतकी पठान-शक्ति का अवसान किया था। दुःखकी अन्धेरी रात भारतके वक्षपर

नाचती हुई पठानों की लीला के साथ विदा हुई और मुग़ल-साम्राज्य आरम्भ हुआ (१५२८ ई०)।

पठान राजाओं के इतने अत्याचार करने पर भी हिन्दू-लोग आपस में नहीं मिले, और एक हिन्दूराज्य के आक्रान्त होने पर, दूसरे हिन्दू राजगण उसकी सहायता को नहीं आये। तैमूर के प्रस्थान से अकबर के अभ्युदय पर्यन्त (१३-९८—१५५६ ई०), १५८ वर्ष तक, दिल्लीके राजाओंमें शक्ति नहीं थी, क्षमता नहीं थी; यदि कभी किसीने अपनी शक्ति प्रदर्शित भी की, तो वह अपनी मृत्यु के साथ अदृश्य होगया। दूसरी ओर आत्मकलह के कारण उनका बड़ा विध्वंस हुआ। इस दीर्घकाल में मुसल्मान नृपतिगण प्रखर धार वाली नदीके किनारे पर, जराजीर्ण कटी हुई जड़ की अट्टालिका की तरह खड़े हुए थे; तथापि समस्त हिन्दूगण उस विपज्जनक गृह का अवसान करने में सचेष्ट न हुए; आँधी-तूफ़ान के समय का भी सद्व्यवहार नहीं किया, और न सुन्दर नया महल बनाने के प्रयासी हुए।

तो क्या भारत में कोई वीर नहीं था, साहसी नहीं था, पुरुष नहीं था? वीर-प्रसविनी भारतभूमि में वीरोंका किस समय अभाव हुआ है? क़ासिम ने जिस समय सिन्ध देश पर आक्रमण किया था, उस समय हिन्दुओं ने अमानुषिक वीरत्व दिखलाकर उसको स्तम्भित किया था। हिन्दूसेनाके दलके दल समूल नष्ट होगये; तथापि आत्मसमर्पण करके

आत्मरक्षा करने में सम्मत नहीं हुए। लाहौर का राजा जय-पाल महमूद से पराजित होने पर भी, पराजित और अप-मानित जीवन वहन करने में स्वीकृत नहीं हुआ था। वह पुत्र के हाथ में अपना प्रिय राज्य अर्पण करके, राजवेश परि-धान करके, अलौकिक साहस से, धीर और शान्त भावसे, जलते हुए अनलकुण्ड में, अपनी इच्छा से, प्रवेश करके भस्मी-भूत होगया था। ऐसा साहस और ऐसा सङ्कल्प पृथ्वी पर और किस ठौर और किस इतिहास में मिलता है? अकबर के समय तक हिन्दुओं का साहस प्रवादवाक्यों में कहा जाता था। उस युगमें भी महा वीरत्व प्रदर्शन करते समय मुसल्-मान लोग कहते थे,—"आज हम हिन्दुओं की तरह युद्ध करेंगे।" वास्तव में, अकबर के समय में हिन्दुओंने कौनसा वीरत्व प्रकाशित नहीं किया है?

तो क्या पठान-आक्रमणके साथही हिन्दू-राज्य और शक्ति अन्तर्हित होगई थी? यह बात किस प्रकार स्वीकार की जाय? क़ासिम के सिन्ध देश के आक्रमण तक (७१२ ई०), समग्र भारतमें हिन्दू राज्य था। सिन्ध देश भी फिर से हिन्दू-राजा की अधीनता में आकर स्वाधीन होगया था (८२८ ई०), सुतरां महमूद के आक्रमण के समय (१००१ ई०), समग्र भारत हिन्दू-राज्य-परिपूर्ण था। महमूद की चेष्टा से पञ्जाब का कुछ अंशमात्र उसके राज्य में मिल गया था। इसके पीछे, मुहम्मद ग़ोरी के अन्तिम आक्रमण के समय (११९३

ई०), इस अंश को छोड़ कर सभी भारतवर्ष हिन्दूराज्यमय था। इसके पीछे एक-एक करके धीरे-धीरे हिन्दूराज्य नष्ट होते गये और उनके स्थानों पर मुसल्मान राज्य स्थापित होते गये। ११८७ ई० में, बिहार का हिन्दूराज्य मुसल्मानी राज्यमें परिणत होगया। ११९८ ई० में, पश्चिमी बङ्गाल के मुसल्मानों के हाथ में जा चुकने पर भी, पूर्वी बङ्गाल और भी १२० वर्ष तक स्वाधीन रहकर सन् १३१८ ई० में मुसल्मानों के अधीन होगया। कालिदास और राजा विक्रमादित्य के लीलाक्षेत्र मालवा और उज्जैन, १२३१ ई० पर्यन्त, हिन्दू राजा के अधीन थे। गुजरात में हिन्दुओं ने १२८७ तक राजत्व किया था। काश्मीर चौदहवीं शताब्दी के प्रथम भाग में मुसल्मानों के हाथ पड़ा था। अकबर के अभ्युदय के समय पर्यन्त, उड़ीसा हिन्दू राजा के अधीन था। बदाऊनी ने लिखा है,—"उड़ीसा का राजा अन्य राजाओं की अपेक्षा सैन्यबल के लिये सुप्रसिद्ध था। सम्राट् अकबर ने उससे मेल करने के लिये दूत भेजा था।" सन् १५६० ई० में, वह मुसल्मानों के अधीन होगया। दक्षिण का हिन्दूराज्य विजयनगर, १५६५ ई० में मुसल्मानों के हाथ लगा। उसके दक्षिणी भाग के हिन्दू राजाओं ने अठारहवीं शताब्दी तक स्वाधीनता की रक्षा की थी। मध्य भारत की हिन्दू-शक्ति सबसे पहले अकबर द्वाराही अपहृत हुई। बहुशक्तिशाली हिन्दू राजा, सोलहवीं शताब्दी के शेष भाग पर्यन्त, हिमालय के पहाड़ी

प्रदेश में अपना प्रताप विस्तार करते रहे । उनके पास दश सहस्र अश्वारोही और एक लाख पैदल सेना थी। स्वाधीनता के लीलाक्षेत्र, राजस्थान ने यद्यपि कभी-कभी मस्तक को किञ्चित् झुकाया था ; परन्तु सदैवही हिन्दू-शक्ति की रक्षा की थी। बाबर ने लिखा है कि, जिस समय मैंने दिल्ली अधिकार में की थी ; उस समय दक्षिण में विजयनगर और राजस्थान में चित्तौड़,—इन दोनों के राजा बड़े क्षमताशाली थे। अकबर के समय तक जोधपुर के हिन्दू राजा के पास ८० हज़ार अश्व-सेना थी। उस समय बुन्देलखण्ड का राजा भी महाशक्तिशाली था। अकबर के समय में आसाम, कूचबिहार, टिपरा और अराकान प्रबल हिन्दू राजाओं के अधीन थे। और, मुसलमानों के अधिकृत प्रदेशों में भी बहुत से शक्तिशाली हिन्दू ज़मीन्दार और बलशाली हिन्दू प्रजा थी। अकबर के समसामयिक बदाऊनी ने लिखा है,—"हिन्दुओं की बराबर प्रबल प्रतापान्वित, पठान और मुग़लों में एक भी जाति विद्यमान नहीं है।" ब्लाकमैन साहब ने लिखा है,—"भारतवर्ष एक दिन को भी संपूर्णरूप से मुसलमानों के अधीन नहीं हुआ। भारत का सुविस्तृत क्षेत्रफल और असंख्य हिन्दू अधिवासीगण मुसल्मान आक्रमण करनेवालों से कहीं अधिक थे।" जनसंख्या से, एक सहस्र हिन्दुओं के पीछे एक मुसल्मान था ; तथापि हिन्दू लोग सम्मिलित होकर हिन्दू-गौरव को सुप्रतिष्ठित करने में सचेष्ट नहीं हुए ! हाय,

आत्मरक्षा भी न कर सके! जो शताब्दी पर शताब्दी पदाघात सहते हुए भी, त्यागस्वीकार करके सम्मिलन के लाभ को न समझे, आपस की फूट को छोड़ कर शक्ति-सञ्चय का उपाय न कर सके, तो इसमें आश्चर्य्यही क्या है जो वह रसातल को पहुँच गये।

तीसरा अध्याय।

बाल्यकाल।

When we reflect what he did, the age in which he did it, the method he introduced to accomplish it, we are bound to recognise in Akbar one of those illustrious men whom Providence sends, in the hour of a nation's trouble, to reconduct it into those paths of peace and toleration which alone can assure the happiness of millions. —**Malleson**.

हम इस समय तैमूरका अनुसरण करके मध्य एशिया में प्रवेश करते हैं। तैमूर स्वदेशमें पहुँचकर भारतके रत्न, भारत के पत्थर, भारत के परिश्रम से बुखारा और समरकन्द को मनोहर हर्म्यमाला से अलङ्कृत करने में प्रवृत्त हुआ; किन्तु महातेजस्वी दिग्विजयी होनेपर भी समयके आक्रमण को कौन रोक सकता है? समय पर तैमूर ने शरीर त्याग किया। उसका सुविस्तृत साम्राज्य सैकड़ों खण्डोंमें विभक्त

हो गया। उसके दूरवर्त्ती वंशधर बाबर की वयस जिस समय बारह वर्षकी थी, उस समय वह पितृहीन था। तैमूर के राज्य का फ़र्ग़ाना नामक एक क्षुद्रांश उसको मिला। बहुत शीघ्र ही उजबकों द्वारा वह उससे भी वञ्चित करके निकाल दिया गया। स्वदेश के उद्धार की चेष्टा में उसका सर्वस्व जाता रहा, कोई नौकर तक न रहा। उसके दुःख की अवधि न रही। वह रो-रो कर अपने दुःख का भार हलका करने लगा। उसने स्थिर कर लिया, कि दूरदेश चीन में जा कर वहाँ अपने दिन बितावें। पृथ्वी पर दुःख और विपद् न मिलने से मनुष्य अग्रसर होने को चेष्टा नहीं करता है। इस प्रकार दुर्दशाग्रस्त बाबर शत्रु के हाथ से परित्राण पाने के लिये, समरकन्द से बहुत दूर, उत्तर-पूर्व वन में भाग गया। शीतकालका समय था, रात को बर्फ़ गिरने लगी, बाबर रातके लिये आश्रय अन्वेषण करने लगा। पासही एक कुटी थी, उसी में ठहर गया। उस कुटी को मालकिन वृद्धा ने बाबर को बड़े आदर से लिया और भारतके अतुल ऐश्वर्य के विषय में कीर्त्तन करने लगी। सैकड़ों योजन दूर, वन, जङ्गल, पहाड़ों के बीच, एशिया की बर्बर-निवासिनी बुढ़िया भी हतभाग्य भारत के ऐश्वर्य्य की ख्याति करती थी! अथवा यों कहिए कि मुग़ल-राजलक्ष्मी ने, वृद्धा के रूप में, बाबर को भारत की ओर को प्रवर्त्तित किया।

आज जिसको देखकर समस्त पृथ्वी प्रलुब्ध है, बाबर भी

उसके लिये प्रलुब्ध हुआ। बाबर शनैः-शनैः भारत की ओर को बढ़ने लगा। राह में काबुल राज्य था। तीक्ष्णबुद्धि बाबर ने आत्मकलह के रन्ध्रपथ में प्रवेश करके उस पर अधिकार कर लिया (१५०४ ई०)। यहाँ से बाबर एक ओर स्वदेशोद्धार के यत्न सोचता था और दूसरी ओर भारत के प्रति लोलुप-दृष्टि निक्षेप करता था। भारतवासियों ने उसका पथ प्रशस्त कर दिया। पञ्जाब में आत्मकलह ने एक पक्ष को दूसरे पक्ष के दमन करने की इच्छा से, बाबर से सहायता की प्रार्थना करनी आरम्भ की। बाबर ने निमन्त्रण-रक्षा के बहाने, हृदय में साम्राज्य-लालसा रक्खे हुए, मुख से परोपकारिता दिखला कर, भारत में प्रवेश किया और आतेही मनोहर दृश्य देख कर मुग्ध हो गया। उसने लिखा है,—"इससे पहले मैंने कभी ग्रीष्मप्रधान देश अथवा भारत को नहीं देखा था। जब मैंने देखा तो ज्ञात हुआ, कि मानों मैं किसी नयी पृथ्वीपर आगया हूँ। इसके वृक्ष, लता, वन्य-पशु इत्यादिक सभी बड़े सुन्दर हैं, सभी नये हैं। मैं इस नयी पृथ्वी के दर्शन करके विस्मयरस से पूर्ण हो गया; वस्तुतः मेरे विस्मय के बहुतसे कारण थे।"

जिस बाबर ने एक दिन शत्रु-नगरी समरकन्द को विजय करके, अपनी सेनाको लूटमार करने नहीं दी थी; वही बाबर पुनः-पुनः भारतमें आकर, बहुतसे भारतवासियोंको लूट और मार कर, काबुल को लौट-लौट कर जाने लगा। उस समय चित्तौराधिपति महाराणा संग्रामसिंह भारत में अत्यन्त क्षमता-

शाली हिन्दू नरपति था। उसने पठान-सेना को बारम्बार पराजय करके, पठान-सम्राटों को कुछ-कुछ पर्य्यवसित करदिया था; तथापि वह भारत के सब राजाओं को एक करके, भारत के हिन्दू गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने में सचेष्ट नहीं हुआ और अपने बाहुबलसे भी दिल्ली का सिंहासन लेने को अग्रसर नहीं हुआ। उसने बाबर द्वारा सिंहासन का पथ परिष्कार करने का सङ्कल्प किया। उसने सोच लिया, कि वह लूट कर और हत्या करके, अपनी भूख की निवृत्ति करके, स्वदेश को चला जायगा और वह उन भारतवासियों के मृत शरीरों की नाव बना कर दिल्ली के उच्च सिंहासन पर अनायासही बैठ सकेगा;—इन्हीं बातों को सोचकर उसने बाबर के पास काबुल में अपना दूत भेजा और उसको भारतमें बुलवाया। हाय! भारत-सन्तान अपने हानि-लाभ के समझने में सदैवही असमर्थ रहे हैं! माँ! यदि तुम न रोओगी, तो और इस जगत् में कौन रोवेगा?

बाबर इस मधुर निमन्त्रण से नाच उठा। उसने लिखा है,—"इस बार मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा के घोड़े पर सवार होकर, और ईश्वर के भरोसे की लगाम हाथ में लेकर, मनोरथ पूर्ण करने के लिये यात्रा की।" बाबर अपने पुत्र हुमायूँ के साथ तोप, बन्दूक और सेना लेकर पाँचवीं बार भारत में आया। कुरुक्षेत्र में, दिल्लीश्वर इब्राहीम लोदी को पराजय और निहत करके दिल्ली और आगरा अधिकार में कर लिया और भारत

में मुग़ल-साम्राज्य स्थापन करने में प्रवृत्त हुआ (१५२६ ई०)। अब राणा संग्राम सिंह को चैतन्य हुआ, सुख-स्वप्न का अन्त हुआ। उसने समझ लिया, कि बाबर उसके सर्वनाश के लिये एक प्रतियोगी साम्राज्य स्थापन करने में बद्धपरिकर है। यह समझ कर संग्राम सिंह कुछ राजपूत राजाओं के साथ बाबर से युद्ध करने को चला।

अब जहाँ पर फ़तहपुर सीकरी है, उसी स्थान पर भीषण युद्ध हुआ। संग्रामसिंह ने दो बार दो मुगल-सेनाओं को नष्ट कर दिया। बाबर पराजित होकर रणक्षेत्र से भाग गया। परन्तु संग्रामसिंह उस भीत, विह्वल सेना के पीछे नहीं गया। इधर बाबर हिन्दुओं के पराक्रम को देख कर इतना शङ्कित हो गया, कि संग्रामसिंह के पक्षावलम्बियों को घूँस देकर वशीभूत करने की चेष्टा करने लगा। इसी समय एक और राजपूत राजा महा भ्रम में पड़ गया। बाबर ने उसके और उस के स्वदेश के सर्वनाश के लिये, भविष्यत् के गर्भ में गम्भीर गड्ढा खोद कर, उसके ऊपर वर्त्तमान लाभके मनोहर फूल विस्तीर्ण कर दिये। हिन्दू राजा मनोहर वर्त्तमान को देख कर, भविष्यत् को भूल गया। जब बाबर की अभीष्टसिद्धि हो गई; तो अपनी पराजय और पलायन के एक महीने पीछे उसने राणा पर आक्रमण किया। जिस राजपूत राजा ने बाबर का पक्षावलम्बन किया था, वह सेना सहित बाबर से आकर मिल गया और स्वदेश के सर्वनाश को तत्पर हो गया। महाराणा आहत

और पराजित होकर, क्षुण्मन और अवनत मस्तक से अतीत-कार्य के लिये अनुताप करता-करता घर को गया। इस प्रकार हिन्दुओं की स्वार्थपरता और आत्मद्रोहिता से सुसमय की अवहेला हुई। हिन्दुओं की स्वार्थपरता और आत्मद्रोहिता से उनका आशा-भरोसा अतल जलमें डूब गया; और ऐसी तरंगें उठनी आरम्भ हुईं, कि जिनमें संग्रामसिंह अदृश्य हो गया। हतभागिनी भारत-भूमि का फिर ध्वंस होना आरम्भ हो गया।

जिस शराबी ने शराब के आधार से स्वर्णाक्षरों में लिखा है,—"वसन्त सुख, युवती रमणी और पुरानी शराब को आनंद से उपभोग करो।" उसी को इस समय भारत के भाग्य-चक्र के परिचालन का भार मिला है! वह भी भारत में पञ्जाब से बिहार तक और अयोध्या से राजस्थान की उत्तर सीमा पर्यन्त अधिकार करने में समर्थ हो गया! परन्तु चार वर्ष भी पूरे न हो पाये थे, कि बाबर ने इहलीला सम्बरण की। उसका ज्येष्ठ पुत्र हुमायूँ दिल्ली के सिंहासन पर बैठा (१५३० ई०)।

सासराम का एक पठान अपने हाथ से एक भीषण व्याघ्र मार कर, "शेरशाह" उपाधि से भूषित होकर, बिहार में अत्यन्त क्षमताशाली हो गया था और इसी समय वङ्ग-विजय में प्रवृत्त हुआ। हुमायूँ पूर्व की ओर प्रबल प्रतिद्वन्द्वी का अभ्युदय देखकर, सेना लेकर, उसके विनाश के लिये चला।

राज-महल पर्वत के उत्तर में, पूर्व-पश्चिम गङ्गा नदी बहती है। पर्वत और नदी के बीच में एक छोटासा भूमिखण्ड है। पहले वही बङ्गाल में जाने को एक राह थी। इस पथ के मुख पर, वर्त्तमान साहबगञ्ज स्टेशनसे सात मील पश्चिम में, पहाड़ के ऊपर तेलियागढ़ नामक एक क़िला है। इस दृढ़ दुर्ग से गङ्गा पर्यन्त, एक विस्तीर्ण पर्वत पथ की रक्षा करता है। इस पथ के मध्य भाग में, वर्त्तमान सकरीगली स्टेशनके उत्तर में, ऊँचे पहाड़ पर विविध चिह्नों द्वारा अनुमान होता है, कि इस पथ की रक्षा के लिए यहाँ भी एक दुर्ग था। उसके चारों ओर खाई थी, एक स्थान पर प्राचीर के चिन्ह हैं। बहुतसे ईंटों के खण्ड और इसी प्रकार के बहुतसे चिन्ह अब भी स्थान-स्थान पर विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त, मुँगेर के निकट और एक क़िला, पर्वत से गङ्गापर्यन्त फैला हुआ, उस पथ की रक्षा करता था।

इन सबके अतिरिक्त, पश्चिम में काशी के पास पहाड़ पर चुनार-दुर्ग बङ्गाल के पथ को रक्षा करता था। तीक्ष्णबुद्धि शेरशाह ने हुमायूँ को रोकने के लिये, इस दुर्ग में और तेलियागढ़ में सेना संस्थापन कर दी। चुनार-दुर्ग के सैनिक हुमायूँ की प्रतिज्ञा पर भरोसा करके बाहर निकल आये; उस ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर सैनिकों के दाहिने हाथ कटवा लिये और तेलियागढ़ पर अधिकार करके बङ्गाल में प्रवेश करके देखा, कि शेरशाह भाग गया है। हुमायूँ बङ्गाल को

राजधानी गौड़ को हस्तगत करके, उसकी शोभा से अपने आप को भूल गया। वह, उसके सैनिक और सेनापति लोग यहाँ निश्चिन्त होकर सब तरह के आमोद-उपभोग में प्रवृत्त हो गये और आलस्य के दास बन गये।

इस अवसर में, शेरशाह ने सासराम में आकर रोहतासगढ़ पर अधिकार करने की चेष्टा की। यह दुर्ग सासराम से थोड़ी दूर पर एक ऊँचे पर्वत पर बना हुआ है। पर्वत के तीन ओर नदी बह रही है, जिससे उसकी रक्षा होती है। जिस ओर नदी नहीं है, उस ओर पर्वत बहुत ऊँचा-नीचा और दुर्भेद्य घने जङ्गल से भरा हुआ है। एक अप्रशस्त, दो मील लम्बी राह पर्वत के नीचे से घूमती-घामती ऊपर तक चली गई है। यह पथ ऊपर तीन द्वारोंसे सुरक्षित है। उसके प्रत्येक द्वार पर बड़े-बड़े पत्थर, तोपें और सेना रहती है। ऊपर पर्वत समतल है; वहाँ पर दुर्ग, राज-प्रासाद, अट्टालिका, बाज़ार, नगरी, खेत इत्यादि हैं। यहाँ पर ७—८ हाथ खोदने से ही उत्तम पानी निकल आता है। इसके अतिरिक्त तीन सुन्दर सुवृहत् जलाशय पर्वत-शिखर को अलङ्कृत कर रहे हैं। वर्षा के आने पर यह स्थान और भी मनोहर शोभा धारण कर लेता है। बहुतसे सोते आँखों और कानों को तृप्त करते हुए पर्वत से नीचे उतरते हैं। यहाँ का जल-वायु भी बड़ा स्वास्थ्यकर है। कहा जाता है, कि महाराजा हरिश्चन्द्र ने इसी दुर्गसे एक दिन पुण्य-प्रताप विस्तार किया था। उनके पुत्र रोहिताश्व के नाम

सेही इस दुर्ग का नाम रोहतासगढ़ पड़ा है। जब सम्राट् अकबर ने राजा मानसिंह को बङ्गाल-बिहार का शासनकर्त्ता नियुक्त किया, तब उन्हों ने इस दुर्ग का बहुत कुछ संस्कार किया; बहुतसी मनोहर अट्टालिकायें बनवाईं; रोहिताश्व की मूर्त्ति, मन्दिर और अनेक देवालय प्रतिष्ठित किये। उनमें से एक अत्यन्त मनोहर और दर्शन-योग्य था। पीछे औरङ्गज़ेब ने उन सब मूर्त्तियों को तोड़ कर हिन्दू-विद्वेष की पराकाष्ठा दिखलाई। भँवर-जाल में पड़े हुए, हतभाग्य बङ्गाल के नव्वाब मीरक़ासिम ने अङ्गरेज़ों के पराक्रम से परित्राण पाने के लिये, अपने परिवार और धनरत्न को इसी दुर्ग में ला रक्खा था। अब वह अङ्गरेज़ोंके पास है और उजाड़ पड़ा है।

उस समय उस दुर्ग का अधिपति चिन्तामणि नामक एक ब्राह्मण राजा था। शेरशाह ने इस विपद् के समय में, अपने परिवार और धनरत्न को वहाँ रखने के लिये चिन्तामणि से प्रार्थना की। उसके सम्मत हो जाने पर, निर्द्दिष्ट दिन ६०० डोलियाँ दुर्ग के भीतर आईं। सभी अपूर्व मनोहर वस्त्रों से आच्छादित थीं, सभी के साथ वेशभूषासमन्वित अप्सरासदृश सहचरियाँ थीं। उनको देखकर दर्शकगणों ने समझ लिया, कि शेरशाह का बहुत बड़ा परिवार है। ज्योंही सब शिविकायें दुर्ग के भीतर पहुँच गईं, त्योंही अकस्मात् उनमें से सैनिकगण निकल-निकल कर दुर्ग पर आक्रमण करने लगे और उसपर अधिकार कर लिया। शेरशाह अपने परि-

वार और धन-रत्नकी वहाँ रक्षा करके, निरापद और निर्भय होगया ।

इधर हुमायूँ गौड़नगरी में ठहरा हुआ था; वहाँ उसको संवाद मिला, कि उसका भाई हिन्दाल दिल्लीके सिंहासन पर बैठने के लिए षड़्यन्त्र कर रहा है। सुनतेही, वह शीघ्रता से सेना लेकर आगरे को चला। चौसा की सीमा में पहुँच कर उसने देखा, कि शेरशाह उसकी राह रोके हुए खड़ा है; अब किस की सामर्थ्य थी जो अग्रसर होता? लाचार होकर, उसने गङ्गाके उत्तरी किनारे पर पहुँचकर, नौकाओं द्वारा पुल बनाने की फ़िक्र की। इसी बीच में, रात के समय, शेरशाह चुपचाप अपने शिविर से निकला और तीन ओरसे मुग़ल-सेना को घेर कर संपूर्ण रूप से जयलाभ कर लिया। हुमायूँ का सब धन-रत्न और अगणित सुन्दरी रमणियाँ उसके हाथ लगीं। हुमायूँ ने आत्म-रक्षा का और कोई उपाय न देख कर, अपने घोड़े सहित भागीरथी में कूद कर, एक मशक द्वारा गङ्गा पार करके अपने प्राण बचाये। आगरे पहुँच कर उसने सेना इकट्ठी की और फिर शेरशाह के विरुद्ध पूर्व की ओर यात्रा की। गङ्गा के तीर पर कन्नौज में भीषण युद्ध हुआ। सुशिक्षित मुग़ल-सेना बिहारी योद्धाओं से पराजित हुई। हुमायूँ दिल्ली का सिंहासन गङ्गा में विसर्जन करके प्राण लेकर भाग गया। इस प्रकार चौदह वर्ष बाद, मुग़ल-साम्राज्य का पतन हुआ और फिर से पठान-राज्य आरम्भ हुआ (१५४० ई०)।

इस समय शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा और राज्य विस्तीर्ण करने लगा। रोहतासगढ़के पास, पर्वतके ऊपर, शेरगढ़ निर्माण किया। शासनके सम्बन्ध में भी बहुतसे संस्कार किये। राजपथों पर कुछ स्थान निर्द्दिष्ट थे, जहाँ अश्वारोही उपस्थित रह कर पथिकों के धन-प्राण की रक्षा करते थे और राजकीय एवं व्यवसाय-वाणिज्य-सम्बन्धी संवाद ले जाते थे। डाक का बन्दोबस्त भारत में, सबसे पहले, इसी ने किया था। डाकका बन्दोबस्त पहले भी था, परन्तु पहले राजकीय संवाद ही जाया करते थे। इबन बतूताने चौदहवीं सदी के प्रायः मध्य भाग में भारत-भ्रमण किया था। उसने लिखा है,—"राजपथ पर, प्रति ८ मील के अन्तर पर, अश्वारोही नियत हैं। वह लोग राजकीय संवाद ले जाते हैं। कहीं-कहीं पर, एक-एक मील के अन्तर पर पैदल सेना रहती है। वह लोग दो हाथ लम्बी लाठी में एक पीतल की घण्टी बाँध कर उस को बजाते हुए राजकीय संवाद लेकर जाया करते हैं।" शेरशाह ने पूर्वी बङ्गाल के सोनारगाँव से सिन्ध नदी पर्यन्त एक सुन्दर और सुप्रशस्त राज-पथ बनवाया था। उसने पाँच वर्ष राज्य करके मानव-लीला समाप्त की। सासराम में, एक मील की परिधि के एक मनोहर सरोवर में, बड़ी ऊँची और अपूर्व समाधि में वह रक्खा गया।

हुमायूँ राज्य-हीन होकर सिन्ध देश में पहुँचा। उसकी विमाता ने प्रीतिपूर्वक उसका निमन्त्रण किया; और-और

बन्धुओं को भी बुलाया । आज उसका घर आलोक-माला से सज्जित है, बन्धु-बान्धवों के हास्य-परिहास से आमोदित है। इसी समय, सन्ध्या के आकाश में उज्ज्वल नक्षत्र की तरह एक चौदह वर्ष की बालिका रूप-प्रभा से घर को आलोकित करके उदित हुई । हुमायूँ उसकी रूप-माधुरी देखकर मुग्ध हो गया ; उसके स्वभाव-सौन्दर्य्य को देख कर आत्मविस्मृत हो गया । सौन्दर्य-विमुग्ध सम्राट्, बालिका के पाणिग्रहण के लिये, व्याकुल हो गया । राज्य जाता रहा, सम्पद जाती रही, स्वयं अनन्त समुद्र में लक्ष्यहीन तिनके की तरह मारा-मारा फिरता था ; तथापि विवाह करने को व्याकुल हो गया । उसके भाई हिन्दाल ने इस विवाह में घोर आपत्ति खड़ी की ; परन्तु भाई के कहने से कौन कब सुन्दरी संग्रह करने में पीछे हटा है ? बालिका की जननी, सम्भव है, बालिका के मनका भाव समझ गई हो । उसने विवाह-प्रस्ताव का समर्थन किया । शीघ्रही शुभ विवाह सम्पन्न हो गया । इस बालिका का नाम हमीदा बेगम था ।

हिन्दाल इस विवाह से क्रुद्ध होकर हुमायूँ को परित्याग करके चला गया । हुमायूँ नाना स्थानों में आश्रय की खोज में घूमने लगा ; किन्तु उसको कहीं आश्रय नहीं मिला । इस समय उसके पास सेना नहीं थी, अर्थ नहीं था, आश्रयस्थान नहीं था, क्लेश की अवधि नहीं थी । जो अनुचर साथ थे, वह भी उसको ग्राह्य नहीं करते थे । हमीदा बेगम इस

समय गर्भवती थी । वह ऐसी अवस्थामें, घोड़े पर सवार, एक स्थान से दूसरे स्थान को स्वामी के साथ, बड़े क्लेश से मरुभूमि को पार करती हुई, सिन्ध-प्रदेश की सीमा पर, अमरकोट के दुर्ग में पहुँची। वहाँ का हिन्दू राजा अतिथियों की दुर्दशा देख कर बड़ा दुःखी हुआ। उसने हुमायूँ को बड़े आदर से लिया और उसका दुःख दूर करने की सब तरह से कोशिश की ।

हुमायूँ ने अमरकोट के राजा की सेना और अर्थ-बल से उसके साथ सिन्ध प्रदेश को अधिकार में लाने के लिये यात्रा की । हमीदा बेगम अमरकोट के दुर्ग में बड़े यत्न से रक्खी गई। उसने यहाँ हिन्दू के घर में, सन १५४२ ई० की १५, अक्टूबर को, एक पुत्र-रत्न प्रसव किया। इसी शिशु ने, पीछे से जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह का नाम धारण करके, पृथ्वीमय ख्याति उपार्जन की। हुमायूँ को राह में यह संवाद मिला। उसके पास राज्य नहीं था, अर्थ नहीं था, क्षमता नहीं थी, इस महानन्द के दिन बन्धुगणों में क्या वस्तु उपहार में वितरण करता ? उसके पास थोड़ीसी कस्तूरी थी, वही लाई गई। सम्राट् ने एक मिट्टी के बर्तन में विभक्त करके वही कस्तूरी बन्धुओं में बाँट दी और कहा,—"मेरे पुत्र के जन्म के उपलक्ष में, मैं आपको केवल यही देने में समर्थ हूँ। इस कस्तूरी की सुगन्ध से जिस प्रकार यह घर आमोदित हुआ है, मैं आशा करता हूँ, इसी प्रकार मेरे पुत्र के यशः-सौरभ से

भी समस्त पृथ्वी आमोदित होगी।" उसकी आशा संपूर्ण रूप से फलवती हुई।

सिन्ध प्रदेश में हुमायूँ की आशा सफल होने की सम्भावना होतेही, हमीदा बेगम हृदयधन को हृदय से लगा कर पति के पास पहुँच गई। दम्पति-युगल के आनन्द की सीमा न रही। परन्तु सुख के दिन बहुत नहीं ठहरते हैं। हुमायूँ के एक मुसल्मान अनुचर ने अमरकोट के राजाका किसी बात में अपमान किया; परन्तु हुमायूँ ने अपने अनुचर से कुछ न कहा। स्वजातिवत्सल सम्राट् अपने परमोपकारक के अपमान से दुःखी नहीं हुआ, यह देख कर अमरकोट का राजा क्रुद्ध होकर अपनी सेना लेकर चल दिया; हुमायूँ फिर सहायहीन और बलहीन हो गया। जब उसको कोई उपाय न दिखाई दिया; तो वह कन्दहार की ओर चल पड़ा। हुमायूँ का भाई कामरान वहाँ का अधिपति था। वह और उसका दूसरा भाई अस्करी हुमायूँ को बन्दी करने की फ़िक्र में लगे। हुमायूँ और कोई उपाय न देख कर, बालक अकबर को छोड़ कर, अपने घोड़े पर अपनी प्रिय महिषी को लेकर, भाइयों के भय से वहाँ से भागा। अस्करी ने अकबर को पाकर, उसे अपनी स्त्री की रक्षा में रक्खा।

हुमायूँ फ़ारिस पहुँचा। वहाँ के राजाने उसको शिया-धर्म ग्रहण कराने के लिये सम्मान और अपमान सबही कुछ उसके शिर पर अर्पण किया। एक दिन उसने हुमायूँ के

रन्धनकार्य के लिये बहुतसा ईंधन भेज कर कहला भेजा,—"यदि तुम शिया-धर्म ग्रहण न करोगे; तो इसी ईंधन द्वारा तुम्हारा दाह-कार्य सम्पन्न होगा।" और कोई उपाय न देख कर, हुमायूँ ने शिया-धर्म की कई बातें अवलम्बन कर लीं। यह देख कर फ़ारिसराज ने प्रसन्न होकर उसको सेना और अर्थ प्रदान किया। हुमायूँ ने उसकी सहायता से कन्दहार पर अधिकार करके, काबुल और अपने पुत्र को भी ले लिया; परन्तु शीघ्रही वह दोनों उसके हाथ से जाते रहे। इसी प्रकार कभी हुमायूँ और कभी कामरान काबुल और अकबर को अपने-अपने अधिकार में ले लेते थे। एक बार हुमायूँ की तोप के गोले काबुल के भीतर गिर रहे थे; कामरान ने उससे छुट-कारा पानेके लिये, नगरकी प्राचीरके ऊपर, गोलोंके सामने, अकबरको बैठा दिया। पिताने यह देख कर गोला चलाना बन्द कर दिया। शेषमें, कामरान बारम्बार पराजित होकर भारतको भाग आया। हुमायूँको काबुलका राज्य और प्रिय पुत्र प्राप्त हो गया। उस समयसे हुमायूँका भाग्य-आकाश बादलोंसे शून्य होगया। यहाँ उसको संवाद मिला, कि शेरशाह मर गया; उसके स्वजनगण दिल्लीके सिंहासनके लिये घोर आत्मकलह कर रहे हैं। आदिलशाह दिल्लीश्वर होगया है; सिकन्दर सूरने पञ्जाब अधिकारमें कर लिया है।

हुमायूँ अकबर और बैरमखाँके साथ पन्द्रह हज़ार अश्व-सेना लेकर काबुलसे चला। पञ्जाबमें, सरहिन्दके पास,

सिकन्दरने मुग़ल-सेनाको रोका। उसकी सैन्य-संख्या देख कर हुमायूँके सेनापति निराश होगये। उन्होंने कहा, कि इतनी बड़ी सेनासे संग्राममें प्रवृत्त होना बड़ी मूर्खताका काम है; किन्तु बालक अकबर सबको युद्धके लिए उत्साहित करने लगा और प्रवीण सेनापतियोंके उपदेशको अग्राह्य करके वीर-मदसे मत्त हो गया। उस समय उसकी वयस बारह वर्षकी थी। हुमायूँ प्रिय पुत्रकी तेजस्विता देख कर उसीके पक्षमें रहा। शीघ्रही भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। बालक अकबर सबसे आगेवाली सेनाका सेनापतित्व करनेको नियुक्त हुआ। उसने युद्धमें अलौकिक वीरत्व प्रकाशित किया, और सबही को अपने दृष्टान्तसे उत्साहित कर दिया; जिससे सम्पूर्ण रूपसे जयलाभ हुआ। हुमायूँने वहाँसे आगे बढ़ कर, दिल्ली और आगरेको अपने अधिकारमें कर लिया। पन्द्रह वर्ष निर्व्वासनका दुःख सहकर, उसे फिर दिल्लीका सिंहासन मिला (१५५६ ई०)।

इस समय दिल्लीमें भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। समग्र भारतमें अन्न दुष्प्राप्य होगया; परन्तु दिल्लीकी दुरवस्थाकी तो सीमाही न रही। बहुत अर्थ-व्यय करने पर भी लोग अन्न न पा सके। बहुतोंने राजधानीके निर्ज्जन स्थानोंमें दल बाँधकर पथिकोंको मार-मार कर नरमांससे जठरज्वालाको निवारण करना आरम्भ किया। उसके पीछे महामारीने आकर बहुतोंके जीवन नष्ट किये।

हुमायूँ अत्यन्त निष्ठुर था। भाई कामरान इस समय उसके हाथ पड़ गया। हुमायूँने बड़े प्रेमसे उसको ग्रहण करके उसको विश्वास दिलाया। पीछे उसको वन्दी करके, उसकी आँखें तीक्ष्ण शलाका द्वारा फोड़ डालीं और उनमें नमक और नीबूका रस डलवाया। कामरान यन्त्रणा से अधीर होकर बोला,—"पिता परमेश्वर! इस लोकमें तुम्हारी करुणाकी आवश्यकता नहीं है, परलोकमें कृपा करना।" हुमायूँने भाईको ऐसी अवस्थामें मक्काको निर्व्वासित कर दिया। भाई अस्करीको भी प्रायः तीन वर्ष वन्दी रख कर मक्काको भेज दिया। तीसरे भाई हिन्दालको पहलेही लड़ाईमें निहत कर चुका था।

हुमायूँको भाइयोंसे तो छुट्टी मिल गई; मगर सिंहासन पर बैठे छै महीने भी न हुए थे, कि ऊँचे पुस्तकालयकी सीढ़ियों परसे उतरते समय उसका पैर फिसल गया, और वह प्रायः बीस फ़ीट नीचे आकर गिरा। गिरनेके चौथे दिन उसने प्राणत्याग किये (२४ जनवरी १५५६ ई०)। अकबर उस समय पञ्जाबमें था। वह बैरमख़ाँकी देख-रेखमें सिकन्दर सूरको पराजित करनेकी चेष्टामें था। अकबरकी सिंहासन-प्राप्तिमें कोई विघ्न उपस्थित न हो जावे, इस भयसे दिल्लीके शासनकर्त्ता टार्डिबेगने इस शोक-संवादको सत्रह दिन तक सर्वसाधारणमें प्रकट नहीं किया; परन्तु यह समाचार एक विश्वासी अनुचर द्वारा पञ्जाबको भेज दिया। पिछ-

वत्सल अकबर आजीवन पितृवियोगको भूल न सका। अतुल ऐश्वर्य और महायश उसके हृदयसे उस दुःखको दूर न कर सके। उसने सदैव गम्भीर दुःख प्रकाशित करके कहा, "हाय! पिता मेरे शैशवकालही में चले गये; मैं उनकी कुछ भी सेवा न कर सका।" उसने अपने पिताकी समाधि पर ऐसा वृहत् और मनोहर समाधि-मन्दिर निर्माण कराया है, कि वह आजतक पर्यटन करनेवालेके चित्तको आकर्षित करता है और दिल्ली सरीखी महानगरीमें भी दर्शनीय वस्तुओं में गिना जाता है।

किसीने अकबरको लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया। उसके पुत्र सम्राट् जहाँगीरने लिखा है,—"सम्राट् लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे; परन्तु सदैवही पण्डितोंके साथ कथोपकथन करते रहनेके कारण उनकी भाषा ऐसी विशुद्ध हो गई थी, कि कोई समझ न सकता था कि वह अशिक्षित हैं।" आश्चर्यकी बात है, कि भारतके पुरुष-रत्न अकबर, शिवाजी, रणजीतसिंह और हैदरअली सबही अशिक्षित और अनक्षर थे; तथापि वे लोग जो कर गये हैं, उसका ध्यान करनेसे विस्मयाभिभूत होना पड़ता है।

महापुरुषगण असामान्य प्रतिभाके बलसे विश्वके महाग्रन्थसे ज्ञान प्राप्त करते हैं। अकबरने भी वही किया। इसको उसमें महापण्डितोंकी महाप्राज्ञता मिलेगी। वह बाल्यकालही से विश्वसे ज्ञान-सञ्चय करता था। चिन्ता

करके कर्त्तव्याकर्त्तव्यको स्थिर करता था। युक्तिकी सेवा करता था। बिना विचारे किसीके मतको नहीं मानता था। अकबर छोटी वयसही से विविध गुणोंसे विभूषित था। वह अहङ्कारशून्य, असाधारण बुद्धिमान्, अत्यन्त परिश्रमी और महा तेजस्वी पुरुष था। वह सभीसे मिलता था; सौहार्द्दके साथ बातचीत करता था और सच्चे व्यवहारसे सब ही को विमुग्ध करता था। पोर्चुगीज़ोंने देख कर लिखा है,—"अकबर चिन्ताशील था; जब कभी क्रुद्ध होता था, तो बहुतही क्रुद्ध होता था; परन्तु थोड़ीही देर पीछे फिर स्वाभाविक भाव धारण कर लेता था। उसका स्वभाव नम्र और दयालु था।"

अकबरकी एक धात्रीके केवल कन्याही कन्या हुआ करती थीं। जब वह दूसरी बार गर्भवती हुई; तो उसके स्वामीने तिरस्कार-पूर्वक कहा,—"यदि अबकी बार कन्या हुई तो अवश्यही तुमको छोड़ दूँगा।" मुसलमानोंमें भार्य्याका परित्याग करना बहुत सहज बात है। धात्री रोती हुई अकबरकी माताकी शरण गई। अकबर उस समय बालक था। उसने सब बातें सुनकर हँसकर कहा,—"कोई भय नहीं है, इस बार अति सुन्दर पुत्र उत्पन्न होगा।" पीछे धात्रीके पतिको बुलाकर कहा,—"महाशय, आपने अपनी स्त्रीके साथ बहुत असद्व्यवहार किया है; परन्तु सावधान रहिये भविष्यमें यदि आप ऐसा करेंगे, तो आपको मेरे क्रोधानलमें पड़ना होगा। धात्री-

पति फिर कभी अपनी स्त्रीको क्लेश पहुँचानेका साहसी नहीं हुआ। लिखा है, कि उस बार सत्यही उसके गर्भने एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। अकबर उसको बड़ा प्यार करता था। उसने उसको उच्च राजकर्मचारी बनाया।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, कि अकबर एक असाधारण मनुष्य था। एक सुप्रसिद्ध अँगरेज़ लेखकने लिखा है,—"जब हम यह सोचते हैं कि अकबरने क्या किया है, कौनसे समयमें किया है, और किस उपाय द्वारा किया है; तब हमको यह स्वीकार करना पड़ता है, कि मनुष्यजातिकी दुःख-दुर्दशा के समयमें उनको फिर सुख-शान्तिकी राह पर लानेके लिये, परमेश्वर कृपा करके अति प्रतिभाशाली मनीषिगणको जगत् में भेजता है, अकबर उनमेंही से एक था।" मनुष्यके भाग्य में इससे बढ़ कर प्रशंसा और नहीं हो सकती।

चौथा अध्याय।

बैरमख़ाँ और अबदुलरहीम।

The world of existence is amenable only to kindness.
No living creature deserves rejection. AKBAR.

भारतके आकाशमें पूर्णचन्द्र अब भी उदय नहीं हुआ था; परन्तु उसका अग्रगामी उज्ज्वल किरणजाल काले बादलोंको भेद कर सहस्र रेखाओंसे ऊपर निकल आया था। ऐसा मालूम होता था, मानों अन्धकार उजेलेको निवारण करनेके लिये उसके ऊपर पतित होता था; परन्तु समर्थ नहीं होता था ;

अकबरके बालक होने पर भी, बैरमखाँके अधीन होने पर भी, उसकी गुण-गरिमा सहस्र भावसे प्रकाशित होने लगी। उसका राज्याभिषेक पञ्जाबमें ही होगया। बैरमख़ाँ उसके अभिभावक पद पर नियुक्त हुआ। बड़े गौरवकी "ख़ानख़ाना" और "ख़ानबाबा" उपाधिसे विभूषित हुआ। इस अन्तिम उपाधि द्वारा वह सम्राट्के पितृस्थान पर

समझा जाकर सम्मानित होता था। वास्तवमें उसके तुल्य तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न, राजनीतिज्ञ और साहसी सेनापति उस समय मुगल-पक्षमें और कोई नहीं था। उसने कुरान स्पर्श करके सम्राट्का काम विश्वासपूर्वक सम्पन्न करनेकी प्रतिज्ञा की और साम्राज्यके शीर्ष स्थान पर बैठा।

अभिषेकके समय सबही अमात्य उपस्थित थे; परन्तु एक प्रधान मुसल्मान अमात्य बारम्बार बुलाने पर भी नहीं आया, और उसने नवीन सम्राट्की वश्यता स्वीकार नहीं की। बैरम-खाँ दृढ़ हस्तसे शासन करता था; किसीके अपराधको क्षमा नहीं करता था। एक कर्मचारीकी ऐसी स्पर्द्धा देखकर वह बहुत क्रोधित हुआ। उसको वन्दी करके प्राणदण्ड देनेके लिये उद्यत हुआ। बदाउनीने लिखा है,—"दयालु सम्राट् उस संकल्पके विरोधी हुए और कहा,—'राज्याभिषेकके दिन एक निर्दोषीके रक्तपात करनेसे मेरे परितापकी अवधि न रहेगी'।" इस प्रकार उसने रक्षा पाई।

इस समय मुसल्मान लोग घोर आत्मकलहमें प्रवृत्त हो रहे थे। आदिलशाह दिल्लीश्वर था। सिकन्दर सूर और इब्राहीम सूर दोनोंही आदिलशाहको निकालकर, आप सिंहासन पर बैठनेके लिये व्याकुल हो रहे थे। आदिलशाहने हेमू-नामक एक हिन्दूको सर्वप्रधान सेनापति और सर्वप्रधान अमात्य बनाया। इससे पहले किसी मुसल्मान दिल्लीश्वरने किसी हिन्दूको सेनापति नहीं बनाया था। हेमू बड़ी दक्षताके

साथ राजकार्य सम्पादन करता था। वह बारम्बार चुनार और बङ्गालके विद्रोहको शान्त करके, इब्राहीम सूरको पराजित और विताड़ित करके, दिल्लीसे मुग़लोंको निकाल देनेके लिये चला। आगरेको अनायासही अपने अधिकारमें करके वह दिल्लीकी ओर बढ़ा। टार्डिबेग उस समय वहाँका शासनकर्त्ता था। वह हेमू द्वारा सम्पूर्ण रूपसे पराजित होकर, बची-बचाई सेना लेकर, अकबरके मिलनेकी इच्छासे पञ्जाबकी ओरको भागा। हेमू दिल्ली पर अधिकार करके, "महाराजाधिराज विक्रमादित्य" नाम ग्रहण करके, आनन्दसे अधीर होकर, पञ्जाबमें मुग़लों और प्रतिद्वन्द्वी सिकन्दर सूरको निकाल देनेकी इच्छासे उधरको बढ़ा। परन्तु उसने हिन्दुओंको मिला कर अपनी शक्ति बढ़ानेकी कोई चेष्टा नहीं की और न हिन्दुओंनेही अपना साम्राज्य स्थापन करनेकी कोई चेष्टा की।

अकबरकी वयस उस समय केवल चौदह वर्षकी थी। पिताकी मृत्यु होतेही उसको चारों ओरसे बुरे समाचार सुनाई देने लगे। दिल्ली और आगरेका पतन होगया है। काबुल हाथसे जाता रहा है। सिकन्दर सूर पञ्जाबमें बहुत सी सेना इकट्ठी करके युद्धके लिये तय्यार हो रहा है, और हेमू विजयके आनन्दमें मत्त होकर सेना लिये हुए आ रहा है। वास्तवमें उस समय अकबरके पास कोई भी देश नहीं था। वह उस समय राज्यहीन राजा था। ऐसे दुर्दिन में,

कर्त्तव्य निर्णय करनेके लिये समर-सभा एकत्रित हुई। सब सेनापतियोंने मत प्रकाश किया, कि भारतके चारों ओर जिस प्रकार घनघोर घटा छायी हुई है, उससे यही समझमें आता है, कि काबुल पर अधिकार करके वहीं आश्रय ग्रहण करना उचित है। बैरमख़ाँने उस मतका प्रतिवाद करके कहा,—"दो बार दिल्ली अधिकारमें आई है और दो बार हाथसे जाती रही है; इसलिये उसीको हाथमें लेना कर्त्तव्य है। दिल्ली अधिकारमें आनेसे काबुल भी अनायासही मिल सकता है।" तेजस्वी सम्राट्को बैरमख़ाँकी बातही पसन्द आई। वह दिल्ली को हाथमें लेनेके लिये सेना लेकर चल दिया।

पराजित टार्डिबेग राहमें सम्राट्को मिल गया। बैरमख़ाँ उस समय राज्यका सर्व-प्रधान प्रभु था। वह तीसरे पहर उपासनाके समय टार्डिबेगके शिविरमें गया और उसे 'दादा' शब्दसे सम्बोधन करके, बड़े आदरसे अपने शिविरमें ले आया। सन्ध्याकी उपासनाके समय बैरमख़ाँ हाथ-मुँह धोनेके लिये उठा और उपस्थित घातकगणों द्वारा तत्क्षणात् टार्डिबेगको मरवा डाला। वह अन्यायपूर्वक दिल्लीको शत्रुके हाथ छोड़ कर भाग आया है, उस पर यह दोष लगाकर अपने एकमात्र प्रतिद्वन्द्वीको संसारसे विदा कर दिया।

बैरमख़ाँने इस प्रकार निरापद होकर दश हज़ार सेनाके साथ अलीकुलीख़ाँको हेमूसे लड़नेके लिये भेजा। अलीकुली को हेमूकी सेनाका अग्रभाग कुरुक्षेत्रके सुप्रसिद्ध मैदानमें

मिला। उसने शीघ्रही उसपर आक्रमण करके हेमू का सब तोपखाना छीन लिया। इसी समय सम्राट् और बैरम खाँ भी सेना सहित आ मिले। हेमू भी बहुतसी सेना लेकर युद्ध को तय्यार हुआ। भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। हेमू ने अपनी सेना के आगे हाथी खड़े करके महापराक्रम से लड़ना आरम्भ किया। मुग़लपक्ष के घोड़े भीषण गजश्रेणी को देख कर ऐसे भयभीत हुए, कि उनके सवार अपनी इच्छानुसार उनको चलानेमें असमर्थ हो गये। इस प्रकार मुग़ल-सेनाकी दोनों बाहु आक्रान्त होकर भागने लगीं। हेमू मत्त-मातङ्ग-श्रेणी को लेकर मुग़ल-सेना के भीतर घुसा। बैरमखाँ उसी सैन्यदल का परिचालन कर रहा था। हेमू हाथी पर बैठा हुआ था। बैरमखाँ ने उसके ऊपर तीक्ष्ण शर चलाने का आदेश दिया। शीघ्रही हेमू की आँख में एक तीर लगा। तीर लगतेही पीड़ासे व्याकुल होकर वह हौदेमें गिर पड़ा। उसकी सेनाने समझा, कि वह मारा गया। यह समझतेही सेना भाग निकली। हतभाग्य एशियाकी ऐसीही रीति है, कि सेना-ध्यक्ष अथवा राजाके अदृश्य होतेही सेना भाग छूटती है। इस प्रकार मुग़लोंको जय-लाभ हुआ (१५५६ ई०)। जिस हाथी पर हेमू अचेत पड़ा था, वह भी रणस्थल से भाग रहा था; परन्तु वह अपने काममें कृतकार्य्य न हो सका। हेमू शीघ्रही बन्दी-भाव से बैरमखाँ के सामने लाया गया। अकबर ने सम्राट् होकर पहला युद्ध यही जय किया था। बैरमखाँ ने

अकबरसे उसका सिर काटनेका अनुरोध किया और कहा, कि मुसल्मान के लिये हिन्दू का मारना परम धर्म है। उसने विधर्मीको मार कर 'धर्मवीर'की उपाधि धारण करने के लिये अकबर को बहुत कुछ उत्साहित किया; परन्तु किसी से कुछ फल न हुआ। बालक सम्राट्ने प्रवीण सेनापतिकी एक बात भी न मानी। चौदह वर्ष का सम्राट् अपने वृद्ध अभिभावक और शिक्षा-गुरु के आदेश को न मान कर, अपने विवेक और युक्ति की सहायता से, बड़े गौरव के साथ, अपने विचार पर खड़ा रहा और कहा,—"यह तो इस समय मरनेही पर है, इस पर किस प्रकार अस्त्र चलाऊँ? यदि इसमें ज्ञान और शक्ति होती तो इससे युद्ध करता।" "शिर के दो टुकड़े करता—" यह वाक्य भी बालक के मुख से न निकल सका। बैरमखाँ बालक की बातों से, और उससे भी अधिक उसके व्यवहार से उत्तेजित हुआ। उसका धैर्य जाता रहा। उसने सम्राट् का तिरस्कार करके, अपने हाथ से मृतप्राय हेमू का शिर काट लिया। सम्राट्ने यहाँ से चल कर दिल्ली और आगरा ले लिया और अपने पिताके सिंहासन पर बैठ गया।

जिस कुरुक्षेत्र में जयलाभ करके बाबर ने मुग़ल-साम्राज्य भारत में प्रवर्त्तित किया था, उसी कुरुक्षेत्र में अकबर ने जय-लाभ करके भारत में मुग़ल-साम्राज्य प्रतिष्ठित किया। कुरु-क्षेत्र भीषण प्रान्त है। यहाँ पर भारत का भाग्यचक्र कई बार घूम चुका है। दिल्ली से उत्तर-पश्चिम की ओर थोड़ीही दूर

पर यह प्रान्त है। उसको देखने से ज्ञात होता है, कि न इसका आदि है न अन्त है; जिधर दृष्टि फेरो उधरही सपाट मैदान चला गया है। बीच-बीच में, कहीं-कहीं काँटेदार वृक्ष खड़े हुए हैं। इस मैदान के पूरब की ओर पानीपत है और पश्चिम ओर थानेश्वर है। बीचमें कुरुक्षेत्र का युद्धक्षेत्र है। वह ४८ कोस लम्बा और पाँच कोस चौड़ा है। थानेश्वरमें एक छोटे सरोवरके किनारे एक छोटासा मन्दिर बना हुआ है। सरोवरके चारों ओर के किनारे ईंटोंसे बने हुए हैं। उसके पासही प्राचीन थानेश्वरके चिह्न अबतक विद्यमान हैं। महमूदके आक्रमण से उसकी यह दशा हुई है। वहाँ पर एक दिन एक सुविस्तृत हिन्दू राज्य की राजधानी थी। कुरुक्षेत्र का सरोवर उससे कुछ दूरी पर है। वह बहुत बड़ा होने पर भी एक प्रकार से सूखा पड़ा है। उसके तीन ओर बहुतसी सीढ़ियाँ हैं। किनारे पर बहुतसे मन्दिर शोभायमान हैं। उसके बीचमें ईंटोंसे बना हुआ एक सामान्य मन्दिर खड़ा हुआ है, जो जराजीर्ण ईंटोंके पुलके द्वारा किनारेसे जुड़ा हुआ है। अमृतसरके सरोवर और उसके मध्यस्थित मन्दिरकी शोभासे, इसकी किसी प्रकार तुलना नहीं की जा सकती। वह मनोहर चौकोन और वृहत् सरोवर चारों ओरसे संगमरमरकी सीढ़ियोंसे सुशोभित है। उसके किनारोंपर चारों ओर संगमर-मर बिछा हुआ है। उसके बीचमें दोतल्ला संगमरमरका मन्दिर कैसा विचित्र है! उसका ऊपर का भाग काशी के विश्वेश्वर

के मन्दिर की तरह स्वर्णपत्र से मढ़ा हुआ है। इस मन्दिर से किनारे तक का पुल भी संगमरमर से बना हुआ है। यह अनुपम शोभा कुरुक्षेत्रमें नहीं है; परन्तु जो कुछ कुरुक्षेत्र में है, वह अमृतसर में नहीं है। यहाँ पर खड़े होकर न जाने कितनी विषाद की बातें, अतीत की कथायें हृदय में उदय होती हैं। दुःख की स्मृति आत्मोन्नति का उपाय है। यहाँ पर न जाने कितनी बार वीरत्व प्रकाशित हो चुका है। इस समय यहाँ पर भीषण नीरवता राज्य कर रही है। कुरुक्षेत्र मानों गम्भीर विषाद में सो रहा है। हमलोग जिस समय इस भीषण प्रान्त में विषाद से विचरण कर रहे थे, उस समय मनमें होता था मानों कुरुक्षेत्र कह रहा है,—"कितने वीरोंका कैसा-कैसा वीरत्व मैंने देखा है, परन्तु अब नहीं दिखाई देता है। क्या उन वीरोंके वंशधर विलुप्त हो गये? वीरभूमि क्या कापुरुषों के लीलाक्षेत्र में बदल गई है?"

सम्राट् की जननी और धात्री अब काबुल से आ गईं। सम्राट् की जननी अति तीक्ष्णबुद्धि और स्नेहपरायणा रमणी थीं। सम्राट् उनकी बड़ी श्रद्धा और भक्ति करते थे। उनका आदेश शिर झुका कर प्रतिपालन करते थे। अब से वह सब दिल्ली के मनोहर राजप्रासाद में सुख और सम्मान से रहने लगीं।

सिकन्दर सूर पराजित हो गया। पञ्जाब मुग़ल-साम्राज्यमें मिल गया। सम्राट् साम्राज्य के अधीश्वर थे, तब भी बैरम

खाँ उनके शीर्ष स्थान पर बैठा हुआ था। उसने स्वेच्छाचार की शासन-नीति अवलम्बन कर ली थी। उसका स्वभाव उद्धत, स्वर कर्कश, हृदय निष्ठुर और चरित्र पाप-कलुषित था। उसने अपनी कार्य्यपरम्परा के कारण सबहीको अप्रसन्न कर दिया। सम्राट् एक दिन मतवाले हाथियों का युद्ध देख रहे थे। पराजित हाथी अकस्मात् बैरमखाँ के शिविर की ओर को भागा। हाथी ने उस शिविर का कुछ भाग गिरा दिया। बैरमखाँ यह देख कर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने ऐसी भावना की, कि उसके मारने के लियेही यह षड्यन्त्र रचा गया है। सम्राट् ने स्वयं उससे कहा,—"हाथी आपके शिविर की ओर को भेजा नहीं गया था, वरन् महावत के बहुत यत्न करने पर भी वह उस ओर से नहीं फिरा।" तथापि बैरमखाँ प्रसन्न नहीं हुआ और सम्राट् से अप्रसन्न रहने लगा। एक बार बैरम खाँ यमुनामें विहार कर रहा था। एक हाथी मतवाला होकर यमुनामें कूद पड़ा। महावत के चेष्टा करने पर बैरम खाँ बच तो गया, परन्तु उस महावत को प्राणदण्ड दिया गया। बैरम खाँ ने एक और सम्भ्रान्त अमात्य को सम्राट् की बिना अनुमति के मरवा डाला। और एक उच्च कर्मचारी को बिना अपराध के मक्का भेज दिया। इसी प्रकार सम्राट् के स्नेह और विश्वास के मनुष्यों को उसने स्थानान्तरित कर दिया। उच्चपदों पर अपने निजी मनुष्यों को रखने लगा, और अपने पक्षवालों से मिल कर सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र

करने लगा। अमात्यगण ने सम्राट् को राज्यभार अपने हाथ में लेने की सलाह दी। जननी और धात्रियों ने भी यही सलाह दी। किन्तु सम्राट् किस प्रकार बैरम ख़ाँ के हाथ से परित्राण पाते? शेष में, एक दिन सम्राट् ने शिकार के बहाने से कुछ थोड़ेसे सहचर लेकर, आगरे से निकल कर, बैरम ख़ाँ के हाथसे छुट्टी पाई। वहाँसे अपनी माताकी बीमारीका बहाना करके शीघ्रतासे वह दिल्ली आये। वहाँ लोगोंने बड़े आदरसे उनका स्वागत किया। दिल्ली पहुँचते ही उन्होंने सर्वत्र घोषणा कर दी,—"राज्यशासन का भार मैंने अपने हाथ में ले लिया है। अब से प्रजा सिवा मेरी आज्ञा के और किसी की आज्ञा न माने"(१५६० ई०)। इसी घोषणा की एक कापी उन्होंने बैरमख़ाँ के पास भी भेज दी। उसमें सम्राट्ने बड़े सम्मानके साथ लिखा,—"आपकी साधुता और विश्वस्तता पर विश्वास करके और निर्भर रह कर, साम्राज्यका कुल काम आपको देकर अबतक मैं आमोद-प्रमोद में दिन व्यतीत करता रहा। अब मेरी इच्छा है, कि राज्य-भार अपने हाथ में लूँ। आपने मक्का जाने की अभिलाष प्रकाशित की थी, वहाँ जाना आपका कर्त्तव्य है। आपको भारतवर्ष में एक उपयुक्त परगना जागीर में दिया जायगा, और आपके कर्मचारी उसकी आय आपके पास भेज दिया करेंगे।"

बैरमख़ाँ मक्का जानेके बहाने आगरे से निकला। कुछ दूर

आकर निरापद् होकर सम्राट्के विरुद्ध विद्रोही हो गया और सेना लेकर पञ्जाब की ओरको बढ़ने लगा। सम्राट्ने बैरमख़ाँ का मतलब समझ कर पहलेही पञ्जाब की ओरको प्रस्थान कर दिया। उसकी सेना भी पहलेहीसे वहाँ पहुँच गई थी। बैरम ज्योंही पञ्जाबमें पहुँचा, त्योंही सम्राट्की सेनाने उसको घेर कर सम्पूर्ण रूपसे पराजित किया। बैरमख़ाँ अपनी जान बचाकर भागनेका प्रयत्न करने लगा, परन्तु कृतकार्य न हो सका। सम्राट्के सेनापति मुनिमख़ाँने थोड़े से साहसी सहचर लेकर बैरमख़ाँका अनुसरण करके उसे क़ैदकर लिया। बैरमख़ाँने एक करोड़ रुपया लगाकर बहुमूल्य मणिमुक्ता और सोने से मढ़वा कर जो पताका बनवाई थी, उसको भी मुनिमख़ाँ ने छीन लिया। बैरमख़ाँ को गिरफ़तार करके मुनिमख़ाँ सम्राट् के पास ले चला। सम्राट् के हृदय में दया का अभाव नहीं था। उन्होंने यह संवाद पातेही कुछ उच्च कर्मचारियोंको आगे भेजकर, बहुतही सम्मान प्रकाशित करके, बैरम को अपने शिविर में बुला लिया। बैरम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये व्याकुल होकर, नङ्गे पैरों, नङ्गे शिर, गले में वस्त्र डाले, ज्योंही बादशाहके समीप पहुँचा त्योंही रोता हुआ सम्राट्के पैरों पर गिर पड़ा। करुणामय सम्राट् ने तत्क्षणात् सिंहासन से उठकर, बड़े सम्मानसे, अपने हाथोंसे उसको उठाकर सिंहासन पर अपनी दाहिनी ओर बैठाया और विषादपूर्णकण्ठसे सब लोगों से कहा,—"यदि ख़ान-

ख़ाना सैनिक जीवन व्यतीत करना चाहें, तो मैं इनको कालपी और चन्देरी प्रदेश प्रदान कर सकता हूँ। यदि यह दरबार में रहना चाहें, तो मैं इस में भी सम्मत हूँ। मेरे वंश का इन्होंने बहुत उपकार किया है। इनके ऊपर दया दिखलाने में, मैं कभी कुण्ठित नहीं हूँ। यदि यह अपने शेष जीवन को ईश्वरोपासनामें अतिवाहित करना चाहें, तो इनके पदानुसार सम्मानपूर्वक मैं इनको मक्काको भी भेज सकता हूँ।" ख़ान-ख़ानाको ऐसी आशा नहीं थी, कि सम्राट् उसके ऊपर इतनी दया करेंगे। ऐसी दया देखकर, वह सम्राट् से सम्पूर्णरूप से पराजित होगया। उसने खड़े होकर सम्राट् का अभि-वादन करके बड़े विनीतभाव से कहा,—"जब मैं सम्राट् के विश्वाससे एक बार वञ्चित होगया हूँ, तब मैं निकट रहने का प्रार्थी नहीं हो सकता। आपकी दया और क्षमा मेरी पुरानी कार्यावलीका प्रचुर पुरस्कार है। इस समय मुझ को इस लोककी अपेक्षा परलोक की ओर दृष्टि करने के लिये अवसर प्रदान कीजिये और मक्का के पुण्यतीर्थ को जाने की अनुमति दीजिये।" सम्राट् इस प्रस्ताव से सम्मत हो गये, और सम्मान-सूचक एक उत्कृष्ट पोशाक उसे प्रदान की। साथ ही ५० हज़ार रुपये वार्षिक की वृत्ति निर्द्धारित करके प्रचुर धन और सम्मानके साथ उसे मक्काको भेज दिया; किन्तु बैरमख़ाँने अपने हाथसे हिन्दूकी हत्या करके भी अभिलषित स्थान नहीं पाया॥

पहले कभी उसने एक व्यक्ति को मारडाला था। उसके पुत्रने प्रतिहिंसा-विद्वेष से गुजरात में बैरमको मारडाला। जिसने कितनेही मनुष्योंको मारा था, आज वह भी घातक के हाथ से प्राण खो बैठा।

सम्राट् इस संवाद को सुनकर बड़े दुःखित हुए और बैरमख़ाँ के पुत्र अब्दुलरहीम को उसकी ठौर पर ग्रहण किया। यह बालक पीछे से मुग़ल-साम्राज्य के अलंङ्कारों में गिना गया। अब्दुलरहीम फ़ारसी, अरबी, तुर्की और हिन्दी भाषा में विशेष विज्ञता प्राप्त करके उच्च श्रेणी के कवियों में गिना गया। सम्राट् ने अपनी धात्री की कन्या से उसका विवाह कर दिया। भिन्न-भिन्न समयों में उसे गुजरात, जौनपुर, मुलतान और सिन्धु प्रदेश का शासनकर्त्ता नियुक्त किया। पहले उसे 'मिर्ज़ाख़ाँ', फिर 'ख़ान-ख़ाना' की उपाधि मिली। शेष में, अति गौरव की पदवी 'वकील सल्तनत' से भूषित हुआ। वह अति साहसी और विचक्षण सेनापति था। सुशिक्षा में राजा टोडरमल की अपेक्षा श्रेष्ठ होने पर भी, उनके नीचे सर्वप्रधान पुरुष और सेनापति था। उसका हृदय करुणा और उदारता से पूर्ण था। सम्राट् ने उसकी कन्या के साथ अपने पुत्र कुमार दानियाल का विवाह किया। इस समय मुग़ल-साम्राज्य पञ्जाब, अयोध्या, ग्वालियर और अजमेर पर्य्यन्त फैल गया था।

इस समय फ़ारस के बादशाह ने सम्राट् के पास दूत

भेजा। सम्राट् ने उसको आदरपूर्वक ग्रहण किया; और पीछे से उसको सात लाख रुपये, एक बढ़िया घोड़ा और सम्मान-सूचक एक बहुमूल्य परिच्छद प्रदान करके, फ़ारसराज को असंख्य प्रीति-उपहार देकर दूतको वापिस भेज दिया। सम्राट् के पिता ने जो ऋण फ़ारसराज से लिया था, उसका सम्राट् ने इस प्रकार परिशोध किया।

अकबर-चन्द्र इस समय बादलों से मुक्त होकर उज्ज्वल प्रभा के विस्तार में प्रवृत्त हुआ।

पाँचवाँ अध्याय।

भारत में नया युग।

A monarch is a pre-eminent cause of good. Upon his conduct depends the efficiency of any course of action. His gratitude to his Lord, therefore, should be shown in just government and due recognition of merit; that of his people in obedience and praise.
— **Akbar.**

ऊषा-सुन्दरी अपूर्व शोभा से पूर्वाकाश में निकल आई है। महानगरी फ़तहपुर-सीकरी अब भी निद्रा देवी की गोद में अचेत पड़ी हुई है। राजपथ पर न कोई मनुष्य है, न कोई शब्द है। केवल मेहतरों की स्त्रियाँ बड़ी-बड़ी झाड़ू लिये हुए राजपथ साफ़ कर रही हैं और गत रात्रि की कथा मृदु मधुर भाव से एक दूसरी से कह रही हैं। कोई पति-निन्दा करती है, कोई कान्त-प्रशंसा करती है। एक सुन्दरी दूसरी के सौन्दर्य को सहने में

असमर्थ है। इसी समय में एक तोप के ऊपर दूसरी तोप चल कर गम्भीर गर्जन करने लगी, और नगर के मकानों से गूँज-गूँज कर सोते हुए मनुष्यों को जगाने लगी। जो महानगरी जनशून्य थी, प्राणीशून्य थी, अब वह कोलाहलमयी होगई। राजा के महलों से नौबत मृदु मधुर मङ्गल-प्रभात-गीत गाने लगी। फेरीवाले बहुतसी वस्तुओं को सिरों पर रख-रख कर चिल्लाते हुए फिरने लगे, और काँच को काञ्चन कह कर लोगों को ठगने का उपाय करने लगे। तमाम दूकानदार अपनी-अपनी दूकानें खोल कर, तरह-तरह की सामग्रियों को सजा-सजा कर रखने लगे, और जिस को जिस वस्तुके लेने की कुछ भी आवश्यकता नहीं थी, उसको उसी वस्तु के लेने के लिये प्रलुब्ध करने लगे। सम्भ्रान्तगण और नागरिक अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर, राजदरबार में जाने के लिये घरों से निकले। कितनेही सुसज्जित हाथी-घोड़े, कितनेही पुरुष-स्त्री राजपुरी की ओर को जाने लगे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने किन्तु नङ्गे पैरों नक़ीब लोग, पालकियों में बैठे हुए उमराओं की उपाधियों का वर्णन करते हुए, और उच्च स्वर से राहगीरों को हटाते हुए जाने लगे। उनके पीछे विविध वर्ण की पुष्पलताओं से अलंकृत पालकियों में, मनोहर वेशभूषा से सुसज्जित, बड़े-बड़े पेट वाले अमीर-उमरा पान खाते हुए, दरबार को जा रहे हैं। गुलाब की सुगन्ध से राजपथ आमोदित होता चला जाता है। चोबदार लोग सुसज्जित कपड़े पहने हुए उनको घेरे

हुए हैं, परन्तु नङ्गे पैरों हैं। कोई चाँदी का पीकदान लिये है, कोई मोरपङ्ख से गन्धलोलुप मक्खियों को अपने प्रभु के मुख से हटा रहा है, कोई काली-काली ढाल से अपने शरीर को ढाँके और लम्बी तलवार को अपने कन्धे से लगाये, सूर्य्य की किरणों से उसे चमकाते हुए, गम्भीर गर्ज्जन करके पथिकों पर आतङ्क जमाते और धूल उड़ाते हुए चले जा रहे हैं। कोई-कोई मनोहर पालकी के अग्रभाग में डङ्का बजाते और निशान उड़ाते हुए अमीर के पदगौरव की घोषणा कर रहे हैं। वाहकगण भारी बोझ से पीड़ित होकर, समस्वर से गाते हुए वर्त्तमान पीड़ा को भूलने की चेष्टा कर रहे हैं।

यह कौन है? स्वर्णालङ्कारों से भूषित और क़सीदे के काम के रक्तवस्त्रों से सुशोभित, उच्चैःश्रवा की तरह घमण्ड में भरा हुआ घोड़ा जिसको अपनी पीठ पर चढ़ाये, गौरव से अधीर होकर, अहङ्कार से नाचता हुआ जा रहा है। सवार के प्रशस्त ललाट पर चन्दन का तिलक है। वदनमण्डल से वीरत्व झलक रहा है। कानों में बहुमूल्य रत्न पहने हुए है। मस्तक पर हीरा इत्यादि रत्नोंसे जड़ा हुआ किरीट सूर्य्य की किरणों में इस तरह चमक रहा है, मानों सन्ध्याके आकाश की नक्षत्र-शोभा का उपहास कर रहा है। गले में लटकती हुई मोतियों की माला, उन्नत और दृढ़ शरीर में सुनहरे काम की मनोहर परिच्छद, कमर में रत्न-जटित तलवार लटक रही है। उसके आगे-पीछे बहुतसी अश्व-सेना श्रेणीबद्ध होकर बड़े गौरव से जा

रही है। यह हिन्दू राजा है। इसी प्रकार बहुतसे हिन्दू राजा, एक दूसरे से वेश-भूषा में बढ़ेचढ़े हुए, दरबारको जा रहे हैं। साधारण मनुष्य अपने-अपने कामों को भूल कर, उनकी ओर देख रहे हैं और अपनी श्रेणी वालों को अपनी जानकारी दिखलाने के लिये, बिना पूछेही, उन राजाओं का परिचय दे-देकर अपना गौरव बढ़ा रहे हैं।

हम भी आज राज-दरबार के दर्शन करेंगे। वृहत् 'दरबारे आम' बड़े सुन्दर रूप से सुसज्जित है। दुग्धफेन की तरह श्वेत दीवारों पर बेल-बूँटे चित्रित हैं। शिर के ऊपर विविध वर्ण के झाड़-फ़ानूस लटक रहे हैं। तरह-तरह की सुगन्धों से गृह आमोदित हो रहा है। गृह में पूर्व की ओर एक ऊँची वेदिका बनी हुई है। दरबार-गृह में से उस पर चढ़ने के लिये कोई उपाय नहीं है। वेदी के ऊपर, हाथी-दाँत का जड़ा हुआ सुन्दर चन्दन का सिंहासन रक्खा हुआ है। उसके ऊपर सुनहरे काम से सजा हुआ मख़मली गद्दा बिछा हुआ है। उसके ऊपर स्वर्णालङ्कृत, रक्तवर्ण राजछत्र लगा हुआ है, जिस में नाना प्रकारके रत्न लटकते हुए हवामें इस तरह हिल रहे हैं, मानों सम्राट्के यशके आनन्दसे अधीर हो रहे हैं। अथवा, घरके सब सामान दीवारों पर लगे हुए आईनोंमें अपनी-अपनी सूरतें देख कर अबोध बालकों की तरह हँस-हँस कर अधीर हो रहे हैं। सिंहासन के दोनों ओर, सुसज्जित पङ्खा हाँकने वाले चुपचाप बड़े अदब से खड़े हुए स्वर्णदण्ड के श्वेत

चँवरों से पङ्खा कर रहे हैं। उस अनुपम शोभामय गृह में, अतुल शोभामयी वेदिका को देखने से ज्ञात होता है, मानों कुसुमोद्यान में एक वृहत् सूर्यमुखी का फूल खिला हुआ है।

वेदी के नीचे अपूर्व वेश के चोबदार लोग सोने के असे हाथों में लिये हुए, सभा की शोभा और गाम्भीर्य्य सम्पादन कर रहे हैं। उनके बाद कुमारगण, उन से कुछ हट कर सम्राट् के नये हिन्दूधर्मावलम्बी मित्र, उनके पीछे हिन्दू राजा लोग, अमीर उमरा लोग, हिन्दू-मुसल्मान प्रधान पुरुष बैठे हुए हैं। आने वाले अपने-अपने स्थानों पर बैठते जाते हैं। कितनेही पवित्र ब्राह्मण-पण्डित सम्राट् के गुणों की प्रशंसा सुनकर, उनके दर्शनों की अभिलाष से और वेद के धर्म के कीर्त्तन के लिये बैठे हुए हैं। कितनेही पोर्चुगीज़ साहब, कितनेही कवि, कितनेही साहित्य-सेवक, कितनेही सङ्गीताध्यापक, कितनेही विदेशी वणिक यथास्थान बैठे हुए हैं। आज इस दरबार में हिन्दू-मुसल्मानों में पार्थक्य नहीं है। जाति-भेद के सम्मान का तारतम्य भी नहीं है। सम्राट् हिन्दू-रीति-नीति और हिन्दू-वेश-भूषा के अत्यन्त पक्षपाती हैं। इसी से मुसल्मान प्रधान पुरुषों ने दाढ़ी दूर करके, मनोहर हिन्दू-वेश धारण कर लिया है। कहीं-कहीं पर मौलवी लोग लम्बी-लम्बी दाढ़ियों को हवा में हिलाते हुए, इस परिणाम को देख कर दुःखित हो रहे हैं। आज यह महासभा हिन्दू-भाव से उद्भासित हो रही है। ऐसा मालूम होता है; मानों इन्द्र, चन्द्र, वायु,

वरुण इत्यादि देवगणों की सभा बैठी हुई है। सब के पीछे जन-साधारण खड़े हुए हैं। सभी,जाति-धर्मके झगड़े को त्याग कर, सम्राट् के पास जाते-आते हैं। सभी आज हर्ष-विकसित,सम्राट् में आकृष्ट, उन के लिये गौरवान्वित और उनके देखने के लिये उत्कण्ठित हैं। इसी समय नक़ीब ने घोषणा की, कि सम्राट् पधारने वाले हैं। सुनतेही, आये हुए सब मनुष्य खड़े होगये। वह शब्दायमान गृह एक मुहूर्त्त में नीरव होगया। सम्राट् सिंहासन-वेदिका के पीछे के भाग के उच्च द्वार-पथसे बाहर निकले; उस समय ऐसा मालूम हुआ,मानों पूर्वाकाशमें पूर्ण चन्द्र प्रकाशित हुआ। वह प्रतिदिन बहुत तड़के उठ कर और स्नान करके, ईश्वर की उपासना और सूर्य की आराधना करके दरबार में आते थे। उन्होंने सहास्यवदन सब लोगों का अभिवादन ग्रहण करके और सब का उत्तर देकर बैठने की अनुमति दी और आप सिंहासन पर योगासन से बैठ गये।

सम्राट् की उज्ज्वल श्यामवर्ण प्रतिभा से विकसित कृष्णोज्ज्वल दो आँखें,कृष्णभ्रू-युगल,प्रशस्तललाट,हँसता हुआ ज्योतिष्मान् मुखमण्डल सभीको मुग्ध करने लगा। नासिकाकी बाईं ओर एक छोटासा मस्सा, सन्ध्या के आकाश में उज्ज्वल नक्षत्र की तरह,मुख की शोभाको बढ़ा रहा था। मस्तक पर ब्राह्मण और राजा का सम्मिलित किरीट, ललाट पर ब्राह्मणोंकासा चन्दन का तिलक, मुख दाढ़ी-रहित—ये सब हिन्दू-भाव उद्भावन कर रहे थे। गुणाभिराम रामचन्द्र की तरह जानु तक लम्बी-

लम्बी बाहों, सुप्रशस्त वक्षस्थल, उन्नत सुदृढ़ और वीरत्वव्यञ्जक शरीर और मधुमय हँसीकी सभी प्रशंसा करने लगे। आये हुए सामुद्रिक-दक्षित पूर्वोक्त मस्से और आजानुलम्बित बाहुओं को अति सौभाग्यका लक्षण कहकर, एक दूसरेसे सम्राट्का कीर्त्तन करने लगे। सम्राट्ने आडम्बर-विहीन पोशाक पहन रक्खी थी। वह सदैवही ऐसीही पोशाक पहनते थे। शरीरमें शुभ्र रेशमी वस्त्र पहने हुए थे। जिस पर जहाँ-तहाँ सुनहरी बूँटियाँ पड़ी हुई ऐसी मालूम होती थीं, मानों परागमुग्ध भ्रमर अकबर-रूपी कमल पर बैठे हुए हैं। उसके ऊपर बड़े-बड़े मोतियोंकी माला गलेमें झूलती हुई ऐसी जान पड़ती थी, मानों अन्धकारको खद्योतमालाकी शोभाका उपहास कर रही हो। दाहिने हाथकी अनामिकामें मनोहर हीरेकी अँगूठी उज्ज्वल ज्योति विकर्ण कर रही थी।

सम्राट्ने स्वाभाविक मधुर स्वरसे आये हुए लोगोंका स्वागत किया और नये आये हुए व्यक्तियोंसे बात-चीत करना आरम्भ किया। उन्होंने उनसे उस देशकी रीति-नीति कैसी है, राज्य-शासन-प्रणाली कैसी है, इत्यादि-इत्यादि बातें पूछीं। जिस प्रकार पुष्पमधु लेनेकी इच्छासे भ्रमर बड़ी मधुरतासे बोलता है, उसी प्रकार प्रिय सम्भाषण द्वारा सम्राट् भी नये बाहरके आनेवालोंसे सदैव ज्ञान प्राप्त करते थे। उनकी मधुर कथोपकथन-पद्धति और सहृदय व्यवहारकी सब लोग मन-ही-मन भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। सम्राट्में यह एक ऐसी असा-

१२

धारण शक्ति थी, कि जो कोई उनके पास जाता वह उनके मधुर स्वभाव और सहृदय आलापसे विमुग्ध होकर आत्मवि-क्रीत हो जाता था।

सम्राट्‌ने दरबारमें उपस्थित होकर बहुतसे राज-कार्य और विचार-कार्य्य न्याय और निरपेक्ष भावसे निर्वाह किये। जिसकी जो प्रार्थना थी वह पूर्ण की। बहुतसी शताब्दियोंके पीछे धनी और दरिद्र, हिन्दू और मुसल्‌मान, जाति और धर्मके भेद बिना उनकी करुणाको समभावसे उपभोग करके पुलकित हुए। संसारकी मरुभूमिमें म्रियमाण मनुष्य धनकुबेरके मनोहर कुसुमोद्यानमें प्रवेश करके, भाँति-भाँतिके रमणीय दृश्योंको देख कर जिस प्रकार प्रफुल्लित होता है; प्रपीड़ित भारतवासी सम्राट्-विरचित सौहार्द-निर्झरनी द्वारा सींचे हुए, सुहृद-शोभान्वित हिन्दू-मुसल्‌मान-सम्मिलित पुष्प-वृक्षोंके अपूर्व्व उद्यानको देख कर उसी प्रकार प्रफुल्लित हुए। क्रमसे दोपहरकी नौबत मधुर नाद करती हुई बजने लगी। सम्राट्‌ने धर्मालोचनाके लिये आये हुए ब्राह्मण, बौद्ध, ईसाई, मुसल्‌मान और पारसी इत्यादिकोंसे आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया और उनसे कहा, कि सन्ध्याके समय आप लोग मेरे इबादतखानेमें पधारिये। शेषमें, उन लोगोंकी परिचर्य्याका भार उपयुक्त व्यक्तिको सौंपकर सभा भङ्ग की। इतना कर चुकने पर, सम्राट् पीड़ित और दरिद्रोंकी सेवामें नियुक्त हुए और बिना सङ्कोचके रुपये और औषधियाँ बाँटीं।

अब सम्राट् ने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। हिन्दू राजा हिन्दूसेना सहित अन्तःपुरकी रक्षामें नियुक्त थे। उनके बाहरी द्वार पर खोजालोग प्रताप विस्तार करते थे और भीतर साहसी रमणियाँ पहरेके काम पर नियुक्त थीं। वहाँ पुरुषका प्रवेशाधिकार न होने पर भी, लेखकोंके लिये सभी द्वार खुले हुए हैं। अन्तःपुर अति परिष्कार और धूपकी गन्धसे आमोदित था। तरह-तरहकी सुन्दर और सुगन्धित वृक्ष-लतायें फूल रही थीं। फूलोंकी माला फूलोंके स्तवक और फूलों के स्तूपोंसे हर एक कक्षा अलङ्कृत और आमोदित हो रही थी। कितनेही सुन्दर पदार्थ, कितनेही सुगन्धित द्रव्य सुशृङ्खलाबद्ध भावसे सजे हुए शोभाको बढ़ा रहे थे। सम्राट् तरह-तरह के सुन्दर और सुगन्धित द्रव्योंके व्यवसायको उत्साहित करते रहते थे। आप भी बहुत प्रकारके सुगन्ध-द्रव्य प्रस्तुत करना जानते थे। बहुतसे मनोहर पक्षियोंके पिञ्जरोंसे अन्तःपुर सुशोभित हो रहा था। सम्राट् आज प्रियतमा महिषी जोधाबाईके भवनमें आहार करेंगे। भोजन बाहर तय्यार होता है। प्रधान अमात्यके तत्त्वावधानमें, अति विश्वासी कर्मचारियों द्वारा यह काम सम्पादन होता है। रन्धन-विभागके प्रधान कर्मचारीने प्रत्येक खाद्यद्रव्य को खा और परीक्षा करके, सोने और चाँदीके बर्तनों और उन में रक्खी हुई खानेकी सामग्रीको रक्त-वस्त्रोंमें लपेट कर तथा अन्य खाद्य-सामग्री और दूसरे पात्रोंको श्वेत वस्त्रोंमें लपेट कर, उन सबके ऊपर अपने नामकी मुहर लगा कर, खाद्य-

सामग्रीकी तालिकाके साथ, उन सबको अन्त:पुरमें भेज दिया। इसी प्रकार सदैव भेजनेका नियम था। सम्राट्के सामने वह सब खोला गया और अन्त:पुरकी चारिणियोंने सबसे पहले उसको खाकर परीक्षा की। कोई विष न मिला देवे, इसी भय से यह सब सावधानता करनी पड़ती थी। इतना हो चुकने पर, सम्राट् भोजनको बैठे। जोधाबाई आनन्दसे अधीर होकर परिवेषण करने लगीं। सम्राट् मृदु-मधुर भावसे हँस-हँस कर उनसे बातें करने लगे। सम्राट् के लिये प्रति दिन बहुत बढ़िया भोजन तैयार होते थे। भोजनोपरान्त, वह सु-स्वादु फल खाते थे। सम्राट् फलोंके इतने पक्षपाती थे, कि काबुल काश्मीर और भारतवर्षके सभी स्थानोंसे उनके लिये फल आया करते थे। फल खानेके पीछे, उन्होंने बर्फ़ मिला हुआ गङ्गाजल पिया और पेट भरनेसे पहलेही भोजनसे उठ बैठे। वह बहुत मिताहारी थे। दिन-रातमें ब्राह्मणों की तरह केवल एकबार भोजन करते थे। भोजनोपरान्त शयन-गृह में गये। इस समय थोड़ी सी नींद लेनेका उनको अभ्यास था। अब हमको बाहर निकल आना चाहिये।

क्या यह वही नगरी है? वह प्रभातकी सुषमा और कोलाहल कहाँ है? अब तो यह जनशून्य, नीरव और निस्तब्ध है! दोपहर हो चुका है, सूर्यकी प्रखर किरणें चारों ओर अग्निवर्षा कर रही हैं। पवन भी मानों सूर्यसे मल्ल-युद्ध कर रही है। ढेरकी ढेर धूल उड़ा कर, मानों नगरीसे

होली खेल रही है। इन दोनोंकी लड़ाईके कारण दूकानोंके द्वार बन्द हो गये हैं। राज-पथ जनशून्य, प्राणी-विहीन हो गया है। गाय-बैल राजपथको छोड़ कर वृक्ष और अट्टालिकाओं की छायामें बैठे हुए पागुर कर रहे हैं। चञ्चल बछड़े भी उनके पासही बैठे हैं। वन्यपशु भी गुफाओं अथवा घने जङ्गलोंमें घुस कर बैठे हुए हैं। पक्षीगण घने पत्तोंमें छुपे हुए इस समय को काट रहे हैं। कभी-कभी कोई अपनी चोंचसे अपनी प्रियतमा का सिर खुजला देता है। केवल एक दो कौए प्यासके मारे काँ-काँ करके बोल उठते हैं। दो चार मोर और मोरनी प्यासके मारे पीड़ित होकर सरोवरका उष्ण जल पीनेको आये हैं, परन्तु मनुष्यके भयसे जल पीते भी जाते हैं और इधर-उधर देखते भी जाते हैं। मधुमक्खियाँ भिन-भिन करके परिहास रसका परिचय नहीं देती हैं, वरन् इतवारकी छुट्टी मनानेवाले आफ़िसके बाबुओंकी तरह पद्मिनीकी गोदमें पड़ी हुई हैं। वृक्ष-लता गर्मीके मारे मलिन हो रहे हैं। पुष्प-वृन्त सूख रहे हैं। केवल जीर्ण-शीर्ण कुत्ते इस समय भी राजपथ पर जहाँ-तहाँ दिखलाई देते हैं और इस दुःसमयमें भी भारतवासियोंकी तरह आत्म-कलह और वाक्-युद्ध करके चारों दिशाओंको कम्पित करते हुए, एक मुहूर्त्तमें ही न जाने कहाँ अदृश्य हो जाते हैं।

क्रमसे सन्ध्या हुई। नौबत बजने लगी। फिरसे महा नगरी जाग्रत हो गई। मानों सहस्त्ररजनीचरित्रकी मृतकल्प

नगरी जादूगरके जादूसे फिर जीवित हो गई। राजपथ क्रमसे मनुष्यपूर्ण हो गया। दूकानदारोंने फिर दूकानें खोल दीं। शैतानपुरको अभिसारिकाओंके दल दो-तल्ले घरोंके बरामदों पर वेशविन्यासके छलसे, रूपमाधुरी दिखलानेमें प्रवृत्त हुए और पथिकोंको अपने जालमें फँसानेके कौशल-जाल विस्तार करने लगे। कितनेही मनुष्य लम्बी अचकन पहने, दाढ़ीको सम्हाले, मुख पर तेल लगाये, ताम्बूल खाये, कानों में इत्र लगाये, शिर पर टोपी अथवा पगड़ी पहने, हाथमें बढ़िया छड़ी लिये, ऊपरकी ओर आँखें उठाये निकलने लगे। दूकानदार हो-हो करके हँसते हुए उन लोगोंकी ऊपर उठी हुई आँखोंको नीचे दूकानोंमें लानेकी चेष्टा करने लगे। महानगरी फिर प्रभातकी ही शोभाको प्राप्त हो गई।

सम्राट् बहुत पहले जाग कर दरबार-ख़ासमें आ गये हैं। प्रधान सचिव अबुलफ़ज़ल, राजस्व-सचिव राजा टोडरमल, बन्धुवर राजा बीरबल और फ़ैज़ी एवं महावीर राजा मानसिंह इत्यादिकोंके साथ बैठे हुए राज्यकार्य सम्पादन कर रहे हैं। वह हिन्दुओंको प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। उन्हें ऊँचे राज-कार्यमें नियुक्त करते थे और उनका अत्यन्त विश्वास करते थे। वे हिन्दू-अनुराग द्वारा हिन्दुओंको सुविशाल साम्राज्य के अतुल अलङ्कार और अभूतपूर्व अवलम्बन समझते थे। उन्होंने साम्राज्यको हिन्दू-मुसलमानके सम्मिलित राज्यमें रूपान्तरित कर दिया था। सम्राट् सब कामको समाप्त

करके, बन्धुओंसे आलापमें प्रवृत्त हुए। वे किसी-किसी दिन पुरुषोचित क्रीड़ा भी किया करते थे।

क्रमसे सन्ध्या हुई। नौबत ईश्वरकी स्तुति गान करने लगी। सम्राट् ईश्वरोपासनामें प्रवृत्त हुए। उसके पीछे धर्मालोचनाके लिये इबादतगाहमें गये। यह ऐतिहासिक गृह इसी कामके लिये बना था। सम्राट् यहाँ पर सभी जाति और सभी मतावलम्बियोंके तर्कवितर्क सुना करते थे। किसी-किसी दिन वह इस समय वेद, महाभारत और रामायण इत्यादि विविध ग्रन्थोंका पाठ सुना करते थे। गम्भीर रजनीमें तानसेन इत्यादि सुप्रसिद्ध सङ्गीताध्यापकोंसे सङ्गीत सुना करते थे। सम्राट्ने हिन्दू-मुसल्मान प्रिय सुहृद् लोगोंके साथ बैठ कर एक पात्रसे सङ्गीतसुधा पान किया। रातकी अन्तिम पहरकी नौबत बजने लगी और सम्राट् अन्तःपुरमें पधारे। वह अन्तःपुरमें बहुत कम रहा करते थे। स्त्री-सहवास अत्यन्त कम करते थे। भारतमाता पुत्ररत्न को गोदमें लेकर सुख-शान्तिसे सो गई।

सम्राट् राज्यभार अपने हाथमें लेकर भारतके मङ्गल-साधनके लिये अग्रसर हुए। दिन-रात स्वदेशकी उन्नतिके लिये परिश्रम करने लगे। वह अपने समयको आनन्दोपभोगमें व्यतीत नहीं करते थे। यूरोपके साहिबोंने आँखों देख कर लिखा है, कि वह केवल मात्र तीन घण्टे सोया करते थे। उनके प्रधान अमात्य अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"सम्राट् सर्दी-गर्मीकी ओर कुछ ध्यान न देकर, जिस समयको सर्व-

साधारण सोनेमें व्यतीत करते हैं, उस समयको जन-साधारण की मङ्गलकामनाके साधनमें लगाते थे। वह आराम की अपेक्षा परिश्रमसे अधिक प्रेम करते थे।" सम्राट्की कार्यावलीके लिये यह वाक्य प्रमाण स्वरूप हैं। उस समय असंख्य राजा और राज्य, भिन्न-भिन्न जाति और धर्म, भिन्न-भिन्न भाषा और स्वार्थ, महासंघर्ष द्वारा भारतवर्षको वृहत् गोलेकी तरह नीचेकी ओर ज़ोरसे परिचालन कर रहे थे। सम्राट्ने उसको निवारण करनेके लिये, अपनी छाती सामने करदी और दोनों बाहें फैला कर सत्साहस-पूर्वक उस गोलेके सामने खड़े हो गये। उसको अधोगतिसे निवारण किया, पठान-प्रवर्त्तित यथेच्छाचारके अन्धकारसे उद्धार किया, और फिरसे उन्नतिके शिखर पर पहुँचानेका प्रयत्न किया। सम्राट्ने इस पवित्र काम के सम्पादन करनेके लिये, हिन्दू और मुसल्मान दोनोंहीको सहायता के लिये आवाहन किया। बहुतसी भारत-सन्तान अग्रसर हुई। जो हिन्दू विच्छिन्न होकर, आशा और भरोसा छोड़ कर, दूर अन्धकारमें खड़े रह कर, दीन-हीन भावसे मुसल्मानों के सुखैश्वर्य्यको देख कर, प्रतिहिंसासे दग्ध हो रहे थे, और स्वदेश में विदेशी वेष, और अपने गृहमें भिक्षार्थीकीसी दशा अवलम्बन कर चुके थे, वही हिन्दू इस समय अन्धकारसे निकल कर, मुसल्मानोंका नेतृत्व ग्रहण करके, हिन्दूकुशपर्वत से ब्रह्मपुत्र नदी तक अपना गौरव विस्तार करने लगे। इस समय हिन्दू-मुसल्मान सम्राट् की दिखलाई हुई राह पर चलकर, सौहार्द्दसे

सम्मिलित होकर, भारतके अतीत गौरवको फिर लौटानेमें प्रवृत्त हो गये। दूरदर्शी सम्राट्ने समझ लिया, कि उनके पहले हिन्दू और मुसल्मान सरोवर की काई की तरह भारत-सरोवर के ऊपरी भागमें रह कर, एक दूसरेके अनिष्ट-साधनमें लगे रहे हैं; इसी कारण वह लोग एक सामान्य आँधी और तरङ्गसे टकराकर स्थानच्युत होकर उथल-पुथल होगये हैं। और जब भारतवर्ष हिन्दू-मुसलमान दोनोंही का चिर-वासस्थान हो गया है, तब भारतकी एक जाति दूसरीको विनष्ट अथवा भारत की सीमासे विताड़ित करनेमें समर्थ नहीं है। ऐसी अवस्थामें, सदैव विवाद करते रहनेसे उन लोगोंका शौर्य-वीर्य शीघ्रही विलुप्त हो जायगा। आत्मद्रोहसेही सब शक्ति भस्मीभूत हो जायगी। वह लोग निश्चयही विदेशियोंके चरणोंमें मस्तक अवनत करेंगे। उन्नीसवीं शताब्दीके यूरोपके प्रधान-प्रधान राजनीतिज्ञोंने कहा है,—"जिस देशमें विभिन्न राजा, विभिन्न जाति, विभिन्न धर्म और विभिन्न भाषा होती है, वह कभी सम्मिलित नहीं हो सकता। वहाँ किसी प्रकार एकता स्थापित नहीं हो सकती।" सोलहवीं शताब्दीके मध्यभागमें, घोर अन्धकार के समय, भारतमें जो अनश्वर सम्राट् सिंहासनपर बैठे थे उन्होंने भी असाधारण प्रतिभा के बलसे यही बात कही थी। इसीसे उन्होंने समस्त भारतवर्षको एक छत्रके नीचे करके, स्थायी शान्ति स्थापन करनेके लिये, समान और सकरुण व्यवस्था, एक धर्म और बन्धुता द्वारा विभिन्न जातियोंको सम्मिलित

करनेका प्रयत्न किया था। उनकी राज्य-विस्तार की नीति, शासन-नीति, धर्म-नीति, समाज-नीति और सारे काम एक स्वदेश-हितैषिता द्वारा परिचालित होने लगे। ऐसा स्वदेश-प्रेमी किस प्रकार प्राप्त होगा?

कोई-कोई पाठकगण यह भी कह सकते हैं, कि जिसने बहुतसे प्रदेशोंकी स्वाधीनता को अपहरण किया है, वह स्वदेश-हितैषी किस प्रकार हो सकता है? उनके लिये यह उत्तर है, कि समाज और जातिके गठन करनेके लिये बहुत से व्यक्तिगत अधिकार छोड़ने पड़ते हैं, नहीं तो जाति और समाजका गठन कभी होही नहीं सकता। त्याग स्वीकार किये बिना सम्मिलन सम्भव नहीं। स्वार्थ यदि न छोड़ा जाय, तो लाभ होना सम्भव नहीं है। लम्बे-लम्बे तिनकों को मिलाकर यदि रस्सी बनाई जाय, तो उनकी लम्बाई तो अवश्यही कम हो जायगी; परन्तु सम्मिलित शक्ति कितनी बढ़ जायगी! इसी प्रकार व्यक्तिगत भावकी ओर ध्यान कीजिये; इस त्याग-स्वीकार से, स्वार्थ-विसर्जन से सबही की क्षति है, परन्तु इससे समुदय जातिका कितना मङ्गल है। अङ्गरेज़ जातिने यदि कौशल से समस्त भारतवर्षको एकच्छत्री राज्य न बनाया होता, तो सम्भव था कि व्यक्तिगत दो चार लाभ अधिक होते; परन्तु एकच्छत्री राज्य न होनेसे मङ्गलपथ में कितनी-कितनी बाधायें पड़ जातीं और पड़ चुकी हैं, उनका भी ध्यान कर लेना उचित है। अङ्गरेज़ी भाषा द्वारा पाश्चात्य जगत्की स्वदेशहितैषिता का बिजली

के समान प्रवाह यदि इस देशमें न आया होता, तो इस अभूतपूर्व नव्यभारतकी सृष्टि न हुई होती—भारतकी भिन्न-भिन्न जातियाँ कभी बन्धुतामें आबद्ध न होतीं—एक चिन्ता, एक साधना और एक लक्ष्य लेकर सब एकही पथ पर जाते हुए न दिखाई देते। यदि अकबर रक्तपात के बिना समुदय जातिको एक छत्रके नीचे लानेमें और एकत्रित करनेमें समर्थ होता, फिरभी यदि वह ऐसा न करके तलवारका आश्रय लेता, तो इसमें सन्देह नहीं कि वह अवश्यही निन्दनीय होता, परन्तु तलवारके अतिरिक्त उसके साधन करनेका और कोई उपाय नहीं था। देख-सुनकर सीख लेनेवाली जाति तो एशियामें उत्पन्न ही नहीं हुई है। यदि ऐसी कोई जाति उत्पन्न हुई होती, तो इतना दृष्टान्त निष्फल नहीं होता। सुप्रसिद्ध मेलेसन साहबने लिखा है,—"अकबर ने अपनी क्षमता अक्षत रखनेके लियेही बीस वर्ष तक युद्ध किया था। यदि वह शान्तभाव धारण करता, तो अवश्यही उसके ऊपर हमले होते। पिछले अनुभव से यही ज्ञात होता है, कि यदि भारतवर्ष में शान्ति-सुखका विस्तार करना अभीष्ट है, तो समग्र भारतमें एक सर्व्व-प्रधान शक्तिका होना परमावश्यक है। सम्राट्का भी लक्ष्य भारतको एक राज्यके अधीन करना और एकता स्थापन करना था।" जर्मन राजकुमारने लिखा है,—"अकबरने छोटे-छोटे राज्योंपर अधिकार करके, एक बड़ा साम्राज्य बनाकर, उनकी अशान्ति और अराजकता दूर करनेका सङ्कल्प किया था।

उसके सङ्कल्प को देखकर उसकी निन्दा नहीं कर सकते हैं।" सम्राटोंका दिग्विजय करना सभी देशोंमें प्रशंसनीय है। इस कारण भी अकबर के कार्यका समर्थन करना उचित है। चाहे जो कुछ हो, परन्तु पहले अकबरने बिना युद्ध किये और बिना विवादकेही भिन्न-भिन्न प्रदेशोंको वशमें करनेका प्रयत्न किया था, जब उसमें अक्षतकार्य हुआ तब उसने युद्ध किया। फिर विजित देशोंके वश्यता स्वीकार कर लेनेपर उन लोगोंसे सदय भावसे सन्धि करली और उन देशोंके अधिपतियों को उच्च पदोंपर नियुक्त किया, उन प्रदेशोंकी उन्नति की; और वह देश उसके प्रति अनुरागी हों, उसके महत् उद्देश्य-साधनमें सहाय हों, इसके लिये उसने विविध उपाय अवलम्बन किये थे।

सम्राट्ने सुन्नियोंके अत्याचारसे शियाओंका उद्धार किया। उसने वही आदेश प्रचार किये, जिनसे हिन्दू-मुसलमानोंका पार्थक्य दूर होता और हिन्दुओंका उत्पीड़न बन्द करनेकी चेष्टा की। बहुत दिनोंसे हिन्दुओंके ऊपर तीर्थ-कर लगा हुआ था। जो कोई हिन्दू तीर्थ करने जाता, उसीसे यह कर लिया जाता था। यह कर इसलिये नहीं लिया जाता था, कि तीर्थ-यात्रियोंके लिये कोई सुभीता किया जाता, वरन् मुसल्मान राजगण हिन्दुओं को और हिन्दुओंके तीर्थों को बड़ी घृणा की दृष्टिसे देखते थे, इसीसे यह कर लगाया गया था। सम्राट् अकबरने कहा है—"यह कर बहुत अनुचित रूपसे लगाया गया है, और हिन्दू लोग जब तीर्थ-पर्यटन को धर्म-कार्य समझते हैं, तब उनके धर्म-

कार्य्य में बाधादेना बहुत अनुचित है।" उसने अपने राजत्व-काल के आठवें वर्ष में यह कर छोड़ दिया और अपने राजत्व के नवें वर्ष में लोमहर्षण जज़िया नामक कर उठा दिया। अबुलफज़ल ने लिखा है,—"इन दोनों करों से सम्राट् को करोड़ों रुपये की आय होती थी।" सबही अपने-अपने विवेक के अनुसार चलने के अधिकारी हैं। किसी को भी अपने विधर्मी होने के कारण उत्पीड़ित न होना पड़ेगा,—सम्राट् ने यह अति उदार और सहृदय आदेश सर्वत्र प्रकाशित कर दिया था। सम्राट् जाति और धर्म के भेद का ध्यान न करके गुण के अनुसार सम्मान और उत्साह प्रदान करते थे। देश में ज्ञान-विस्तार के बहुत से उपाय अवलम्बन किये थे और जनसाधारण की सब तरह की उन्नति साधन की चेष्टायें की थीं। सम्राट् आर्थिक लाभ की ओर दृष्टि नहीं करते थे, और स्वजाति की ओर का पक्षपात भी नहीं करते थे। उन्होंने स्वार्थ की ओर कभी भी ध्यान नहीं दिया। उनका एक लक्ष्य, एक साधना यही थी, कि किसी प्रकार उनकी जन्मभूमि गौर-वान्वित हो और महाशक्तिशाली विशाल साम्राज्य में परिणत हो। वे युक्ति-देवी को आगे करके, दाहिने हाथ से बन्धु हिन्दुओं के और बायें हाथ से आत्मीय मुसल्मानों के गलदेश को बड़े प्रेम से वेष्टन करके, भारत के महामङ्गल-मन्दिर में पहुँचने के लिये, उन्नति-शिखर के अति कठिन पथ को अतिक्रम करने लगे।

छठा अध्याय।

जौनपुर का विद्रोह।

Truly we must not reject a thing that has been adopted by the wise men of other nations, merely because we cannot find it in our books or how shall we progress ? —Akbar.

इस समय सम्राट् विशाल भारतवर्ष को अपने छत्र के नीचे लाने में सचेष्ट हुए, मालवा प्रदेशके विजय करने के लिये आदमखाँ को भेजा। मालवा की राजधानी उज्जैन नगरी एक दिन गगनस्पर्शी अट्टालिकाओं और हिन्दू राजाओं के अतुलनीय कीर्त्ति-कलाप से अलंकृत थी। यहाँ महाकालेश्वर का एक मन्दिर सौ हाथ ऊँची चहारदीवारी से परिवेष्टित बना हुआ था, जिसमें और-और मूर्त्तियों के अतिरिक्त महाराज विक्रमादित्य की प्रस्तर-मूर्त्ति

भी विराजमान थी। फरिश्ता ने लिखा है,—"यह मन्दिर तीन सौ वर्ष के परिश्रम और धनव्यय से तय्यार हुआ था। सन् १२३२ ईसवी में, दिल्ली के पठान-नृपति ने इस मन्दिर को विध्वंस और इस नगरी को श्मशान में परिणित कर दिया; तथापि तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक हिन्दुओं ने इस प्रदेश में राज्य किया।" अन्तिम हिन्दूराजा को मुसल्मानोंके पराक्रम से परित्राण पाने के लिये, पास के किसी हिन्दू राजा से मिल जाना उचित था, परन्तु ऐसा न करके उसने गुजरात के राजा से लड़ाई ठानी! इस आत्मकलह से मालवा की हिन्दू-शक्ति एकदम नष्ट होगई और हिन्दू-राजा पराजित हो गया। ऐसी दुरवस्था के समय में, दिल्लीश्वर अलाउद्दीन ने चौदहवीं सदी के आरम्भ में उसको अनायासही पठान-साम्राज्य में मिला लिया। उस समय भी उसके चारों ओर प्रबल हिन्दू राजा विद्यमान थे। परन्तु हिन्दू-जाति में एक के दुःख से दूसरा दुःखित नहीं होता, धीरे-धीरे सबही का नाश होगया, और देखते रहने पर भी वह लोग सावधान न हुए। इसी कारण जिस प्रदेश के सिंहासन पर एक दिन महाबली महाराज विक्रमादित्य बैठे हुए थे, उज्जैन जिनकी महा-नगरी थी, कालिदास जिनके महाकवि थे, उसी प्रदेश में, इस अकबर के समय में, पठान-नृपति बाज़बहादुर अन्धकार फैला रहा था। सेनापति आदमख़ाँ ने उसको पराजित करके वहाँ से निकाल दिया। उसका राज्य और उसका धन-माल

सब अपने हाथ में कर लिया और रूपवती नामक उसकी रानी के रूपलावण्य पर मोहित होगया। वह जैसी असामान्य रूपवती थी, वैसीही गुणवती भी थी, कवि और सङ्गीत-निपुणा भी थी। लिखा है, कि वैसी रूपलावण्यसम्पन्न और गुणवती रमणी उस प्रदेश में दूसरी नहीं थी। पतङ्ग जिस प्रकार अग्नि की शोभा पर मोहित होता है, आदमखाँ उसी प्रकार रमणी के रूप पर मुग्ध हो गया। सुन्दरी ने और उपाय न देख कर, पुरुष के पुरुष हाथों से परित्राण पाने के लिये, आदमखाँ को और किसी समय पर आने को कहा। लोभ-परतन्त्र आदमखाँ ने निर्दिष्ट समय पर उसके पास पहुँच कर देखा, कि वह अपूर्व वेशभूषा परिधान करके, सर्वाङ्ग को सुगन्धित करके, रूप की शतगुण वृद्धि करके, हाल के खिले हुए कमल की भाँति शय्या को अलंकृत करके उसपर लेटी हुई है। आदमखाँ ने उसको जगाने की चेष्टा की, परन्तु जब वह न जागी तब उसको ज्ञात हुआ, कि उसने विष खाया है, सुख का जीवन नष्ट करके सतीत्व की रक्षा की है।

अबला के शाप से आदमखाँ आत्मरक्षा न कर सका। उसकी दुष्प्रवृत्ति ने एक और दुर्बुद्धि उत्पन्न की। उसने लूटे हुए धनरत्न को आत्मसात् करके, स्वाधीन राज्य स्थापन करने की चेष्टा की; परन्तु सम्राट् तो धोखे में आने वाले मनुष्य नहीं थे। उन्होंने तुरन्तही वहाँ पहुँच कर आदमखाँ को आगरे भेज दिया। आदमखाँ अपनी दशाके परिवर्तन को देख

कर वृद्ध मन्त्री पर बड़ा क्रोधित हुआ, और उसी को इस दुःख को जड़ समझ कर, रात के समय, राजप्रासाद में उस को मार डाला।

सम्राट् ने बाहर के मकान में कोलाहल सुनतेही तलवार हाथ में ली और तत्क्षणात् वहाँ जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर जो दृश्य उन्होंने देखा, उससे वह विचलित होगये। उन्होंने देखा, कि उनका वृद्ध प्रधान मन्त्री पड़ा हुआ है, रक्त की नदी बह रही है, और आदमखाँ रक्त से भीगी हुई तलवार लिये खड़ा है। सम्राट् को आते देख कर, आदमखाँ ने एक हाथ में तलवार लिये हुए दूसरे हाथ से दृढ़ता-पूर्वक सम्राट् का हाथ पकड़ लिया। यह देख कर, सम्राट् ने एक कठोर घूँसे की चोटसे उसको पृथ्वी पर गिरा दिया। जब सब बातें ज्ञात हुईं,तो उन्होंने आदमखाँको प्राणदण्ड दिया। नौकरों ने उसको एक ऊँची दीवार पर ले जाकर वहाँ से गिरा दिया; इस प्रकार हतभाग्य का जीवन समाप्त हुआ। आदम की जननी सम्राट् की एक धात्री थी। सम्राट् उसकी अपनी जननी की भाँति श्रद्धा-भक्ति करते थे। वह सम्राट् के पास पहुँच कर दया की भिक्षा माँगने लगी। वह नहीं समझती थी, कि सम्राट् अपने पुत्र तक को प्राणदण्ड दे सकते हैं! सम्राट् ने कहा,—"ऐसा गर्हित अपराध किसी प्रकार क्षमा नहीं किया जा सकता, इसी कारण मैंने उसे प्राणदण्ड दिया है।" पुत्रके शोक से आतुर जननी ने उसके

मरने के ४० दिन पीछे प्राण त्याग किये। सम्राट् उसकी मृत्यु से बड़े दुःखित हुए। क़ब्र में गाड़ने को ले जाते समय, कुछ दूर तक शव के साथ जाकर, उन्होंने सम्मान प्रदर्शन किया। दिल्लीमें आदमख़ाँ की क़ब्र के पास उसकी क़ब्र बनवाई और उसके ऊपर एक मनोहर मक़बरा बनवाकर अपनी भक्ति का परिचय दिया। इस हत्या के षड्यन्त्र में और भी कई मनुष्य लिप्त थे, परन्तु उन सब को सम्राट् ने क्षमा कर दिया।

सम्राट् एक दिन शिकार खेल कर लौट रहे थे, इतनेही में किसी दुष्ट ने एक तीर चलाया, जो सम्राट् की गरदन में लगा। सम्राट् के कई एक मुसल्मान कर्मचारियोंने उनको मरवा डालने के लिये अपना एक नौकर नियुक्त किया था। सम्राट् के पार्श्वचरोंके हाथ से वह तीर चलाने वाला मारा गया और सम्राट् ने तीर को अपनेही हाथ से अपनी गरदन से निकाल कर प्रासाद में प्रवेश किया।

सम्राट्-जननी के भाई का चरित्र कुत्सित था। वह अपनी स्त्री के साथ निष्ठुर व्यवहार करता था। सम्राट् स्वयं मामा के घर गये और बहुत कुछ हितोपदेश करके परिवार की अशान्ति दूर करने के अभिलाषी हुए; परन्तु मामा यह अवस्था देख कर क्रोधान्ध होगया। वह मूर्ख सम्राट् के हृदय के महत्त्व को न समझ सका। उसने तत्क्षणात् स्त्री की हत्या करके लोहूकी डूबी हुई तलवार सम्राट् के ऊपर

चलाई, और साथही उसके द्वारपालने भी सम्राट् पर हमला किया, परन्तु भाग्यसे शरीर-रक्षकोंने सम्राट् को बचा लिया। सम्राट् ने स्त्री-हत्याके अपराधमें मामाको प्राणदण्डकी आज्ञा दी। हतभाग्य यमुनामें फेंका गया, परन्तु मृत्यु नहीं हुई, तब सम्राट् ने उसको ग्वालियर में वन्दीभाव से रक्खा, जहाँ वह पागल होकर मर गया।

जिसने एक दिन विधर्मी और परम शत्रु हेमू का सिर काटने के लिये किसी प्रकार सम्मति प्रदान नहीं की थी, उसीने अपने धात्रीपुत्र और अपने मातुल को गुरुतर दण्ड-विधान करने में संकोच नहीं किया! सभी ने समझ लिया, कि सम्राट् गुरुतर अपराध को क्षमा नहीं करेंगे और न्याय-विचार के करने में कभी भी उदासीन न होंगे।

आदमख़ाँ के पीछे, सेनापति अब्दुल्लाख़ाँ ने मालवा-विजय को सन् १५६१ ई० में सुसम्पन्न किया। सम्राट् ने वहाँ के राजा बाज़बहादुर को अति उच्च राजकार्य्य में नियुक्त किया। एक वर्ष भी व्यतीत न हुआ था, कि अब्दुल्लाख़ाँ ने स्वाधीन राजाओं का सा व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। सम्राट् यह मालूम होते ही हाथी पर सवार होकर, शिकार के बहाने, राजधानी से निकल कर अकस्मात् वहाँ पहुँच गये। अब्दुल्ला वहाँ से भाग गया और सम्राट् से युद्ध करने की तय्यारी करने लगा। सम्राट् ने उसके पास एक अमात्य भेजकर अभय-वचन दिया, आश्वासन दिया, परन्तु निष्फल।

शीघ्रही युद्ध आरम्भ हो गया। अब्दुल्ला पराजित होकर भागा और ख़ानेज़माँ अलीक़ुलीख़ाँ से मिल गया। वह उस समय सम्राट्‌के प्रतिनिधि-रूप में, जौनपुर में, शासन कर रहा था। उसने सब मुसल्मानों से एका करके विद्रोह की पताका उड़ाई। अलीक़ुलीख़ाँ और अब्दुल्ला दोनों उज़बक सम्प्रदायके थे, इसीलिये यह विद्रोह उज़बक अथवा जौनपुर-विद्रोह के नामसे इतिहासमें लिखा गया है। सम्राट्‌ने स्वयं जौनपुर पहुँच कर, विद्रोहियों को वहाँ से निकाल कर, जौनपुर पर अधिकार किया। अलीक़ुली निराश होकर सम्राट्‌के प्रधान अमात्य ख़ानख़ाना मुनिमख़ाँकी शरण गया, और अपनी जननी और अपने चचाको सम्राट्‌ के पास, उपहार-स्वरूप बहुत से हाथियों सहित, भेज कर क्षमा माँगी। उसके चचाने नङ्गे सिर, गले में तलवार लटकाये हुए सम्राट्‌ के पास पहुँच कर भतीजेके लिये बहुत कुछ प्रार्थना की। सम्राट्‌ने कहा,—"इस बार मैं क्षमा करता हूँ, परन्तु शीघ्रही वह फिर विश्वासघात करेगा।" मुनिमख़ाँने पूछा,—"उसकी जागीरका क्या होगा?" सम्राट्‌ने उत्तर दिया,—"जब मैंने अपराध क्षमा कर दिया है, तब जागीर भी उसीको मिलेगी।" सम्राट्‌की इस दया को देख कर सभी लोग विस्मित हुए।

जिस समय अलीक़ुलीको सम्राट्‌की इस दया का संवाद मिला उसी समय उसे ख़बर लगी, कि उसके पक्षावलम्बियों ने अयोध्यामें सम्राट्‌की सेना को पराजय करके बहुत बल

सञ्चय कर लिया है। सुनतेही आशा की मुग्धकर मूर्त्ति फिर उसके सामने आ खड़ी हुई, और स्वाधीन नृपति का उच्च और मनोहर सिंहासन दिखला कर कहने लगी,—"चेष्टा करने से क्या वस्तु नहीं मिल सकती है?" यह ध्यान आतेही, अलीकुलीने फिर भीषण मूर्त्ति धारण कर ली और जौनपूर और ग़ाज़ीपूर को बाहुबल से अधिकार में कर लिया। सम्राट् यह संवाद पातेही स्वयं युद्ध के लिये चले। अलीकुली ने फिर निराश होकर, जीवन-रक्षाके लिये अति विनीत भावसे प्रार्थना की। सम्राट् का हृदय दयाहीन नहीं था। दूसरी बार भी राजद्रोह का अपराध क्षमा कर दिया। यह अपराध केवल मौखिक नहीं था, न केवल संवादपत्रमें ही छापा गया था। यह कार्य्यमें परिणत हुआ। भीषण षड्यन्त्र रचा गया। विस्तृत प्रदेश उत्तेजित हो गया। बहुतसे व्यक्तियों ने सम्राट् के विरुद्ध हथियार उठाये, बहुतसी राजकीय सेना मारी गई और बन्दी की गई; तिस पर भी यह पहला अपराध नहीं था, जिसको क्षमा की गई थी। ऐसी उदारता, ऐसी सहृदयता क्या और किसी सम्राट् में कभी देखने को मिली है?

इसके पीछे जब सम्राट् लाहौरको गये, तो अलीकुलीने फिर तीसरी बार विद्रोहानल प्रज्वलित किया। उसने समझ लिया, कि सम्राट्की अनुपस्थितिमें मैं कृतकार्य्य हो जाऊँगा। सम्राट् यह संवाद पातेही फिर आगरेको लौटे और शत्रु

को उचित दण्ड देनेके लिये अग्रसर हुए। अलीकुली ने सम्राट् के सामने आनेका साहस न करके, गङ्गा पार होकर, एक निरापद स्थानमें शिविर स्थापन किया। ऐसी भयङ्कर नदी को पार करके सम्राट् उस पर आक्रमण न कर सकेंगे, ऐसा विचार करके वह सुरापान करके विगत दुःख और क्लेश को विस्मृत करने की चेष्टा करने लगा।

इधर सम्राट् ने बाधा-विघ्नको तुच्छ समझकर, निद्रा और आहार को छोड़ कर, दिन-रात सिंहपराक्रम से शत्रु के अनुसरण करने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। जब सन्ध्या का समय हुआ, तो सम्राट् ने १०००—१५०० अति साहसी सेना लेकर, हाथी पर सवार होकर गङ्गाको पार किया, और उस पारके वनमें चुपचाप रात काटी। प्रातःकाल होने के पहलेही सम्राट् ने भीम पराक्रम से शत्रु पर आक्रमण किया। मुग़ल-सेना ने तीन भागों में बँट कर, विपक्षी पर आक्रमण किया और महातेज से शत्रु का संहार करने लगे। सम्राट् एक हाथी पर बैठे हुए अपनी सेना के मध्यभाग का परिचालन कर रहे थे। क्रम से युद्ध भीषण से भीषणतर हो गया। विद्रोहियों ने अमित तेजसे राजकीय सेनाको ध्वंस करना आरम्भ कर दिया और जय-पराजय अनिश्चित हो गई। यह देख कर सम्राट् ने हाथी से उतर कर उच्चैःश्रवा-तुल्य एक उद्दाम घोड़े पर सवार होकर, रणक्षेत्रमें उपस्थित होकर, अपने साहस और दृष्टान्त द्वारा सैनिकों को मत्त कर

दिया। वह लोग स्वार्थ को भूल कर, फलाफल से उदासीन होकर, अदम्य तेजसे शत्रुका संहार करने लगे। मुग़ल-सेना मुहूर्त्त-भर में मानों सञ्जीवित हो उठी, मुहूर्त्त-भर में विपक्षियों पर आक्रमण किया, राजकीय हाथियों ने विपक्ष का नाश करना आरम्भ कर दिया। थोड़ीही देर में अलीकुली ख़ाँ एक तीक्ष्ण तीर से आहत हुआ। वह अपनेही हाथ से तीर को निकाल रहा था, कि इसी समय में एक और तीर उसके घोड़ेके आकर लगा। घोड़ा उसकी यन्त्रणा से घबरा कर भागा और अलीकुलीको भूमि पर गिरा दिया। इतनेही में एक राजकीय हाथी के पैरोंके नीचे आकर अलीकुलीने अपने प्राण त्याग दिये। अब उसकी सेना किस प्रकार खड़ी रह कर युद्ध कर सकती थी? एशिया की सेना सेनापति के भरोसेही लड़ती है। जब उसकी सेना ने देखा, कि सेनापति नहीं है तो अपना कर्त्तव्य समाप्त हुआ समझ कर भाग निकली; बहुतसी सेना मारी गई, शेष सम्राट् की बन्दी हो गई।

सम्राट् ने अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण रूपसे जयलाभ करके अपने शिविर में प्रत्यावर्त्तन किया। अलीकुली का कटा हुआ सिर वहाँ आया। पासही उसके सैनिक बन्दी भाव से खड़े हुए थे। एक हिन्दू क़ैदी अपने प्रभु के कटे हुए सिर को देखकर और अधीर होकर, बिजली की तरह आगे बढ़ा और उस लोहू से भरे हुए मुसल्मानके सिर को बड़े आदरसे

उठाकर और अपनी छातीसे लगाकर, उसके ऊपर अश्रुधारा वर्षण करने लगा। सम्राट् यह दृश्य देख कर विचलित हो गये और हिन्दू की प्रभु-भक्ति की पराकाष्ठा देख कर मुग्ध होगये। सम्राट् ने बड़े दुःखित भाव से अलीकुली के वन्दी-भाई से पूछा,—"मैंने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया था, जो तुमने मेरे विरुद्ध अस्त्र ग्रहण किये?" यह कह कर, सम्राट् अपने नौकरों को उसके यत्न-पूर्वक रखने की आज्ञा देकर और काम को चले गये। सम्राट् के अमात्यगणने सोचा, कि सहृदय सम्राट् इसको क्षमा कर देंगे और यह फिर विद्रोहानल प्रज्वलित करेगा। इस शंका से, उन लोगों ने सम्राट्के चले जानेपर, उनकी अनुमति बिनाही, उस हतभाग्य वन्दीको मार डाला।

इन विद्रोहियों का एक दल अयोध्यामें था। राजा टोडर मल इत्यादि ने बड़े वीरत्व के साथ उन लोगों पर आक्रमण करके विद्रोह को शान्त किया (१५६७ ई०)। विद्रोहियों में से जितने लोगोंने शत्रुताचरण से विरत होकर सम्राट् की वश्यता स्वीकार की, उनको सम्राट् ने क्षमा कर दिया; और उनके किये हुए दुष्कार्य का कुछ भी दण्ड उन्हें नहीं दिया।

इसके पीछे, एक और मुसल्मान अमात्य ने विद्रोही होकर, अनेक स्थानों को लूटकर बहुतसी राजकीय सेना को निहत किया। सम्राट् ने उसके विरुद्ध सेना भेजकर उसको आहत और वन्दी किया और एक अच्छे वैद्य को भेजकर

उसकी चिकित्सा कराई; परन्तु उसका फलोदय कुछ भी न हुआ, क्योंकि उसके सख़्त ज़ख़्म आये थे, जिनके कारण उसने प्राण त्याग किये।

हुमायूँकी मृत्युके पीछे, उसका दूसरा पुत्र मिर्ज़ा हकीम काबुलका शासन करता था। अकबरको एक सुवृहत् साम्राज्यका अधीश्वर देखकर, वह ईर्षासे जर्ज्जरित हो गया। यह सुनकर, कि जौनपुरके मुसल्मानोंने विद्रोह किया है, वह बड़ा प्रफुल्लित हुआ और पञ्जाब पर आक्रमण करके उसने उसका बहुतसा भाग अपने अधिकारमें कर लिया। सम्राट्ने यह समाचार पाकर लाहौरको प्रस्थान किया। वहाँके अधिवासी, सम्राट्को आया हुआ सुनकर, शङ्ख घण्टा इत्यादि बजाकर आनन्द-कोलाहल करने लगे और बड़ा आनन्द प्रकाश किया। इससे ज्ञात होता है, कि इतनेही दिनोंमें अकबर प्रजारञ्जनमें समर्थ हो चुका था। उस आनन्दध्वनिको सुन कर, कारण पूछने पर हकीमको ज्ञात हुआ कि सम्राट् आ रहे हैं। हकीमने देखा, कि अब उसके जीतनेकी आशा नहीं है; और विलम्ब न करके वह शीघ्रही काबुलको चला गया (१५६६ ई०)। सम्राट्ने भाईको उचित शिक्षा देनेके लिये उसका अनुसरण नहीं किया, और काबुलको सेना भी नहीं भेजी। केवल इतनेहीसे सन्तुष्ट हो गये, कि भाई अनिष्ट-साधनसे विरत हो गया। पाठक! पुरोवर्त्ती और परवर्त्ती सम्राटोंसे अकबरकी तुलना कीजिये।

इसके पीछे खानखाना मुनिमखाँ जौनपुरके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। उन्होंने जौनपूरको बहुतसी अट्टालिकायें बनाकर अलङ्कृत करना आरम्भ किया। उन्होंने नदी पर जो वृहत् मनोहर पुल बनवाया था, वह आज भी समय और स्रोतसे प्रतिद्वन्द्विता करता हुआ विद्यमान है और उनकी कीर्त्ति की घोषणा कर रहा है।

इधर सन् १५८२ ई० में, गृहनिर्माणके लिये मिट्टी खोदते समय, भूगर्भमें एक मकान दृष्टिगोचर हुआ। उसका द्वार बन्द था और एक सुवृहत् ताला लगा हुआ था। द्वार खुलने पर, घरके भीतर एक वृद्ध दृष्टिगोचर हुआ। बाहर निकालने पर वह छै महीने तक जीवित रह कर मर गया। मुसल्मान लेखकोंने, आत्मधर्मके समर्थनके लिये, इस योगीके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है वह विश्वासयोग्य नहीं है। महाराजा रणजीत सिंहके समयमें, एक हिन्दू-योगी बहुत दिनों तक भूगर्भमें रहा था; इस कारण यह घटना नितान्तही अविश्वास-योग्य नहीं है।

एक बार असदबेगने बीजापूरसे अति उत्कृष्ट तम्बाकू और मणिमुक्ताखचित सोने और चाँदीसे बना हुआ एक अति मनोहर और बहुमूल्य हुक्का लाकर सम्राट्‌को भेंट किया। सम्राट् यह उपहार पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने दो चार बेर उसको पिया होगा, कि चिकित्सकोंने निषेध करके कहा,—"यद्यपि यूरोपके पण्डितोंने इसकी प्रशंसा की है, तथापि

हमारे देशके चिकित्सकोंने इसके गुणागुणके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं लिखा है; इस कारण आपको धूम्रपान न करना चाहिये।" असदबेगने प्रतिवाद करके कहा,—"यूरोपवासी ऐसे मूर्ख नहीं हैं, जो उसके गुणोंसे अवगत न हों, उन लोगोंमें भी ज्ञानी लोग विद्यमान हैं। आप लोग इसकी परीक्षा किये बिनाही किस प्रकार इसके सम्बन्धमें मतामत प्रकाशित करते हैं? सबही वस्तुयें अपने-अपने अच्छे-बुरे गुणोंके अनुसार आदर और अनादरके योग्य हुआ करती हैं।" एक दूसरे चिकित्सकने उत्तर दिया,—"हमलोग यूरोपवासियोंका अनुकरण करना नहीं चाहते हैं। हमारे देशके प्राज्ञलोगोंने जिसके अनुष्ठानकी अनुमति नहीं दी है, उसका अनुष्ठान नहीं कर सकते हैं।" असदबेगने उत्तर दिया,—"यह बड़े आश्चर्यकी बात है! प्रत्येक आचार-व्यवहारही पहले नया था। सबही वस्तुयें एक-एक करके व्यवहारमें लाई गई हैं। द्रव्यका अच्छा-बुरा उसके गुणके अनुसारही विज्ञलोगोंने निर्धारित किया है। चायनाकी जड़ कैसी होती है, पहले लोग नहीं जानते थे। आधुनिक समयमें उसका आविष्कार हुआ है और अब वह कितनेही रोगोंमें चलने लग गयी है।" सम्राट्ने असदबेगकी युक्ति-परम्पराको सुनकर बहुत आनन्द प्रकाश किया और कहा,—"अवश्यही जिस वस्तुको दूसरे देशोंके प्राज्ञलोगोंने व्यवहारमें लिया है, उसको हमारी पुस्तकोंमें न होनेके कारण छोड़ना

उचित नहीं है । इस प्रकार चलनेसे हमलोग किस प्रकार उन्नति कर सकते हैं ।" असदबेग बीजापुरसे बहुतसी तम्बाकू लाया था, और वह सम्भ्रान्तगणमें वितरण भी कर दी थी। सबने उसका सेवन आरम्भ कर दिया था। क्रमसे वणिक् लोग दक्षिण से तम्बाकू ला-लाकर दिल्ली और आगरेमें बेचने लगे। बहुतसे मनुष्योंको उसके पीनेका अभ्यास हो गया। परन्तु सम्राट् अकबरने फिर कभी उसे नहीं पिया।

इस प्रकार सम्राट्, अमात्य और आत्मीयगणोंके विद्रोह को दमन करके, महा क्षमताशाली होगये और मध्याह्नकाल के सूर्यकी भाँति तेज विकीर्ण करने लगे।

सातवाँ अध्याय ।

रानी दुर्गावती और मध्यभारत ।

It is true, we are overcome in war, but shall we ever be vanquished in honour? Shall we, for the sake of a lingering ignominious life, lose that reputation and virtue which we have been so solicitious to acquire?
—**Rani Durgabati.**

कभी-कभी जिस प्रकार चारों ओर से बादलोंकी छाया से घिरे रहने पर भी, मध्यस्थलमें सूर्यालोक दिखाई देता है, उसी प्रकार मध्य-भारतमें प्रायः चारों ओर मुसल्मानी राज्य होनेपर भी, मध्यस्थलमें हिन्दू-गौरव उद्भासित हो रहा था। इसी स्थान पर, एक समयमें अति गौरवान्वित विदर्भ राज्य था। यहीं रमणी-रत्न दमयन्तीने जन्मग्रहण किया था। वर्णित समयमें, इस स्थानपर सुविस्तृत गढ़मण्डल राज्य था। वह ३०० मील लम्बा और १६० मील

चौड़ा था। अबुलफ़ज़्लने लिखा है,—"और स्थानोंके हिन्दू इस प्रदेशके हिन्दुओंको पतित समझते हैं और इस राज्यको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।" आपसमें हमलोग एक दूसरेको इसी प्रकार समझते हैं; नहीं तो ऐसे महादेशकी ऐसी दुर्गति क्यों होती? सबही एक प्रकारके आँसू क्यों डालते? वर्णित समयमें, यह राज्य बड़ा समृद्धिशाली था। इस राज्य में ८० हज़ार नगर और गाँव सुखसे दिन बिता रहे थे। राज्यके नाना स्थानोंमें सुदृढ़ और उच्च दुर्ग शत्रु के आक्रमणका परिहास कर रहे थे। वर्त्तमान जब्बलपुरके पास, चौरागढ़ नामक स्थानमें राजधानी और दुर्ग था। वर्णित समय तक, मुसल्मान इसे नहीं ले सके थे। यह बड़े गौरवसे अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर रहा था। अकबरके समयमें कालिञ्जरकी राजकन्या वीररमणी रानी दुर्गावती इस विस्तृत भूभागकी अधीश्वरी थी। वह जिस प्रकार अपूर्व रूप-लावण्यसे विभूषित थी, उसी प्रकार अशेष सद्गुणोंसे सम्पन्न थी। वह बन्दूक़ और धनुषके चलानेमें भी बड़ी निपुण थी। उसका लक्ष्य बड़ा सच्चा था। वह सदैव वन्य-पशुओंके शिकारको जाया करती थी। अबुलफ़ज़्लने लिखा है,—"यह रमणी साहस, दक्षता और वदान्यतामें सुप्रसिद्ध थी और उन गुणोंके कारणही वह इस प्रदेशको अधिकारमें ला सकी थी।" वह बड़ी दक्षता से राज्य-शासन करती थी और बड़ी विचक्षणता और दूरदर्शिता से विदेशी राजा-

ओंसे व्यवहार करती थी। उसने मालवा देश के राजा बाज़बहादुर को युद्धमें पराजित किया था। उसके पास एक हज़ार उत्कृष्ट हाथी और बीस हज़ार अश्व-सेना थी।

सम्राट् अकबरके सेनापति आसफखाँने पन्ना प्रदेशको विजय करके, उसके निकटवर्ती इस राज्यको विजय करनेकी इच्छा की। परन्तु वह रानी दुर्गावतीके वीरत्वके विषयमें जानता था, इससे सहसा इस कार्यके साधन करनेका साहस नहीं कर सका। उसने मुखसे तो इस राज्यसे मित्रता कर ली और गोपनमें तीक्ष्णबुद्धि चतुर दूतोंको वणिक-वेशमें इस राज्यमें भेजकर, उनके आवागमनकी राहें, सैन्य-बल और समृद्धि इत्यादि ज्ञातव्य विषयोंसे अवगत होने लगा। जब सब बातोंसे अवगत हो गया, तो साहस से बड़ा उत्फुल्ल हो गया और उसके जय करनेके लिये सम्राट्से अनुमति माँगी (१५६४ ई०)। आसफ़खाँने बहुतसी सेना लेकर राज्य पर आक्रमण किया और साहससे उद्दीप्त होकर, भीतर घुस कर; बड़े अहङ्कारसे आगे बढ़ने लगा। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे संवाद मिला, कि रानी उसके विरुद्ध आ रही है। ज्यों-ही रमणीका वीरत्व उसे याद आया, त्योंही सब साहस अन्त-र्हित हो गया। उसने बीचमें ही सेनाको रोक लिया। अभी तक तो वह द्रुत-वेगसे जा रहा था; पर अब धीरपदसे भी आगे न बढ़ा, वरन् पीछेको लौटा।

रानी दुर्गावतीने ज्योंही संवाद पाया, कि मुग़ल-सेनाने उसके राज्यमें प्रवेश किया है, त्योंही उसने अपने प्रधान अ-मात्यको बुलाया। परन्तु यह सुनकर वह स्तम्भित होगई, कि केवल ५०० सैन्यगण राजधानीमें हैं, शेष सब राज्यमें इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। रानीने अमात्यसे तिरस्कारपूर्वक कहा,—"तुम्हारी मूर्खतासे यह घटना हुई है। मैं बहुत दिनसे राज्य-शासन कर रही हूँ, परन्तु ऐसा काम मैंने कोई नहीं किया है, जिससे मेरे सम्मानमें कमी आवे।" रानीने तत्क्षणात् चारों ओर दूत भेजे और जो सेना मिल सकी उसे लेकर युद्धको चल पड़ी; परन्तु उसने किसी और हिन्दू राजाकी सहायता नहीं ली। और कोई राजा उसकी सहा-यताके लिये अग्रसर भी नहीं हुआ। प्रति दिन रानीके पास नई सेना आने लगी। रानी उसको विजन वन-भूमिमें रखने लगी, कि जिससे विपक्षी उसकी संख्या और गतिविधि न जान सके। आसफ़ख़ाँ चेष्टा करने पर भी, उस सेनाके सम्बन्धमें ज्ञातव्यविषयको न जान सका। जब यह अवस्था देखी, तो उसका साहस अन्तर्हित होगया और अहङ्कार अदृश्य होगया। वह भयभीत होकर सोचने लगा, कि रानी वज्राग्निकी तरह अकस्मात् आविर्भूत होकर आक्रमण करेगी। यह ध्यान आते ही वह वहाँ न ठहर सका और पीछेको लौट पड़ा। फ़रिश्ता ने लिखा है,—"रानी ज़िरहबख़्तर पहन कर, हाथमें तीक्ष्ण धारका बल्लम लेकर, शरासन से सुसज्जित होकर, हाथी

पर सवार होकर विपक्षोंके विनाशके लिये अग्रसर होने लगी।" उसकी सेना भी उसीकी तरह वीरत्वसे सञ्जीवित और उसके उत्साहसे उद्दीप्त होकर बढ़ी। प्रत्येक सैनिक उत्साहसे अधीर होकर, वीर-मदसे उन्मत्त होकर, प्रत्येक सबसे पहले शत्रु को संहार करनेकी इच्छासे आगे बढ़ने लगा। रानीने हाथी पर खड़े होकर सेनाको दलबद्ध होनेका आदेश दिया। सेना श्रेणीबद्ध होकर, उत्साहसे भरी हुई, एक मुहूर्त्तके भीतर मुग़ल-सेनाके ऊपर महापराक्रमसे जा पड़ी, और भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। हिन्दूगण महापराक्रमसे युद्ध करने लगे। मुग़ल-सेनाको कब साध्य था, कि उसकी सम्मुखीन होती? मुग़ल-सेनामें यह शक्ति कहाँ थी, कि उसके आक्रमणको रोकती? आज शक्ति-रूपी रानी रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुई है, स्वदेशके कल्याणकी कामनासे आत्माहुति देनेको तय्यार हुई है, आज क्या उसकी प्रिय सेना इस प्रिय कार्यके सम्पादनसे विरत होगी? रानी जन्मभूमिके नाम पर, स्वाधीनता के नाम पर, सबको उत्साहित करने लगी और शत्रुके संहार के लिये सबको उद्दीप्त करने लगी। वह सन्ध्याके बादलों की सौदामनीकी तरह, कभी यहाँ और कभी वहाँ, दिखाई देने लगी—वीरत्व-विद्युच्छटासे विपक्षोंको स्तम्भित करने लगी। उसके दृष्टान्तसे परिचालित सैन्यगण भीम पराक्रम प्रदर्शन करने लगे और मुग़ल-सेनाको खण्ड-खण्ड करने लगे। ग्रीष्ममें, जिस प्रकार आँधीके कारण बादल

आकाशमें एक ओरसे दूसरी ओरको निकल जाते हैं, उसी प्रकार मुग़ल-विपुल-वाहिनी रमणीके पराक्रमसे पराजित होकर रणक्षेत्रसे विताड़ित हो गई। मुग़लोंकी बहुतसी सेना मारी गई। मुग़ल-सेना अदृश्य हो गई, यह देख कर वीर रमणी तृप्त नहीं हुई और न उसने विश्राम किया। विपद् फिर न आ जाय, इसलिये उसने उसका अनुसरण किया और बहुतसे विपक्षी मारे और बन्दी किये।

क्रमसे सूर्यदेव भारतललनाका वीरत्व दर्शन करके मुग्ध होकर हँसते-हँसते अस्ताचलको गये, मानों भारतललनाका विस्मयकर वीरत्व अपनी प्रियतमाको दिखलानेके लिये अधीर होकर द्रुतपदसे अन्तःपुरमें गये। क्रमसे सन्ध्या देवी आ गई। नीले आकाशका मनोहर तोरण निर्माण करके, उसके मध्यमें पूर्णचन्द्रका वैद्युतिक आलोक-गोला लटकाकर, उसके चारों ओर नक्षत्रोंकी असंख्य आलोकमाला अलङ्कृत करके, और अगणित खद्योतमाला—मानों लटकती हुई कुसुम-माला से उस तोरणकी शोभा सम्पादन करके, सान्ध्य-अर्चनाके शङ्ख और घण्टोंकी ध्वनिसे दिगन्तको प्रतिध्वनित करके, भारत-ललनाकी सम्बर्द्धनाके लिये उपस्थित हुई।

क्रमसे रात हो गई। रानी दुर्गावतीने सैनिकोंको कुछ देर विश्राम करनेके लिये आदेश दिया और विश्राम कर चुकनेके पीछे रातहीमें मुग़ल-सेना पर आक्रमण करके उस को ध्वंस करनेका सङ्कल्प कर लिया। परन्तु उसके अमात्यगण

और प्रधान-प्रधान पुरुषोंने उसके सङ्कल्प-साधनमें अप्रसन्नता प्रकट की। वह लोग युद्ध-क्षेत्रसे बहुत दूर निकल आये थे, उन्होंने वहाँ लौट कर अपने आत्मीय-स्वजनोंकी अन्तिम क्रिया करनेके लिये व्याकुलता दिखलाई और देशाचारके प्रतिपालनमें दृढ़प्रतिज्ञ हो गये। रानीने कहा,—"दुर्दिनमें सभी बातोंका त्यागन करके देशकी विपद्‌को निवारण करना चाहिये।" परन्तु सेना और अमात्यगण कोई भी उसकी दूर-दर्शिता और उपदेशको ग्रहण करनेमें समर्थ न हो सके! स्वदेशहितैषिताकी देवी देशाचारके दानवके सामने पराजित हुई। रानी दुर्गावती बड़ीही अनिच्छासे पीछेको लौटी, और प्रतिकूल मतकी अनुवर्ती हो गई, मानों प्रतिकूल भाग्यका अनुसरण करना आरम्भ किया। क्रमसे मृत हिन्दुओंकी सत्कार-क्रिया समाप्त हुई। जब यह काम पूर्णतया हो चुका, तब रानी दुर्गावती युद्ध करनेके लिये और शत्रुको विनाश करनेके लिये सबको उत्साहित करने लगी और उस गम्भीर रातमें पराजय-विह्वल मुग़ल-सेनाको आक्रमण करके संहार करनेको उद्यत हो गई; परन्तु फिर भी प्रधान व्यक्तिगण उसकी प्रतिकूलता करने लगे। उन्होंने कहा,—"विश्राम किये बिना और अच्छी तरह सोये बिना हम लोग परिश्रम न कर सकेंगे। और अब परिश्रमका प्रयोजनही क्या है? शत्रुओंको उचित शिक्षा मिल चुकी है, अपने प्राण बचानेके लिये वह आपही चले जायँगे।" रानीने उन लोगोंको

विविध प्रकारसे समझाया और मुग़ल-सेनाका अनुसरण करनेका अनुरोध किया, परन्तु कोई फल नहीं निकला। हतभाग्य भारतमें स्वदेशहितैषिताको देवी, विश्राम और विलासितासे पराजय हुई। हतभाग्य हिन्दूगण विश्राम और विलासिताकी मनोहर मूर्त्तिको देख कर मुग्ध हो गये और विश्राम और विलासिताके लिये सब कुछ खो बैठे। भारत-वर्ष एक आरामकी खोजमें जाकर सदैवके लिये आरामसे वञ्चित हो गया। हिन्दुओंने स्वदेशहितैषिताकी जीवित मूर्त्तिका उपदेश प्रतिपालन नहीं किया। वह सुख-यामिनी स्थायी न रही। क्रमसे रात गई, सवेरा हुआ, सब लोगोंने आँखें खोलीं। देखा, कि मुग़ल-सेना तोप, गोला, बारूद इत्यादिके साथ उन पर भीषणभावसे आक्रमण करनेके लिये उद्यत है। उन लोगोंके विनाशके लिये शृङ्खलाबद्ध होकर आगे बढ़ रही है। अब हिन्दुओंको रानीका उपदेश याद आया और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करने लगे। सुसमयको अवहेलामें व्यतीत करके, अब भाग्यके ऊपर वृथा दोषारोपण करने लगे। शीघ्रही मुग़ल-सेनाने आक्रमण किया। रानी दुर्गावती फिर अमानुषिक वीरत्व प्रदर्शन करने लगी। किसका साहस था, जो उसके सामने खड़ा होता अथवा आगे बढ़ता? मुग़ल-सेना उस भीम पराक्रमके सामने पराजित होकर पीछे हट गई; परन्तु फिरसे इकट्ठी हुई और बड़े उत्साहसे आगे बढ़ी और विपक्षियों पर आक्रमण किया, परन्तु फिर भी पीछे

हटना पड़ा। इस प्रकार विपुल मुग़ल-वाहिनी हिन्दूललना के वीरत्वसे तीन बार पीछे हटी। तो क्या सत्यही आज अकबरकी साहसी सेना रमणीसे पराजय मानेगी? यदि ऐसा ही हुआ, तो प्राचीन सैनिक सम्राट्के पास जाकर उन्हें किस प्रकार अपना मुँह दिखलावेंगे? इन बातोंका ध्यान करके, उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की, कि आत्मप्राण विसर्जन करेंगे, परन्तु रमणीसे पराजित होकर घरको न लौटेंगे। निराशासे उन्मत्त, साहससे उद्दीप्त, प्रबल मुग़ल-सेनाने फिर हिन्दुओं पर आक्रमण किया। उनकी हुँकारसे चारों दिशायें गूँज उठीं। उनके पदभारसे पृथ्वी कम्पायमान होने लगी। उनके दलके दल नष्ट होते हुए भी शत्रुका संहार करने लगे। आत्मप्राण विसर्जन करते हुए भी नष्ट-गौरवका पुनरुद्धार करने लगे। उनके भीषण आक्रमणसे हिन्दू लोग विचलित हो गये। रानी दुर्गावतीका पुत्र सिंहविक्रमसे शत्रुसंहार में प्रवृत्त हो गया। हिन्दुओंके प्राणोंमें फिरसे आशा और साहस आगया और वह लोग फिरसे अतुल पराक्रमसे मुग़ल-सेनाको ध्वंस करने लगे। इसी समय कुमार आहत होकर गिरा। रानीने यह संवाद सुनतेही, पुत्रको रण-स्थलसे निरापद स्थानमें ले जानेका आदेश दिया। अब सेना किस प्रकार खड़ी रहती? आकाशमें बादल आये हुए देख कर रातके समय पथिक जिस प्रकार आश्रयके अन्वे-षणमें व्याकुल होता है, रानीकी सेना भी उसी प्रकार व्याकुल

हुई। कुमारके अनुसरणके बहाने, प्राणोंकी रक्षाके लिये, सैनिक रणक्षेत्रको छोड़ने लगे। वह लोग मानों एक रानी और उनके पुत्रके लियेही रक्तपात करनेको समागत हुए थे। वह लोग स्वदेश-रक्षाका पवित्र कार्य भूल गये। स्वाधीनता-रक्षा, गौरव-रक्षा, यह सब चिन्तायें उनके हृदयोंसे अपसृत हुईं। हाय, सुसमयमें यह पवित्र चिन्तायें भारतवासियोंके हृदयमें उदयही नहीं होती हैं और उनके कामोंमें आनेही नहीं पाती हैं। रानीके पास केवलमात्र ३०० सैनिक रह गये।

तथापि रानी इस क्षुद्र सैन्य-दलको लेकर विपक्षियोंको मथन करने लगी। वह हाथी पर बैठी हुई थी। इस समय मुग़ल-सेना उसको लक्ष्य करके तीर चलाने लगी। एक क्षण के भीतर, एक तीक्ष्ण शर रानीकी आँखमें लगा। रानीने उसको अपने हाथसे निकाला, परन्तु उसका कुछ अंश आँख में रह गया। इसी समय एक और तीर उसके गलेमें आकर लगा। उसको भी उसने निकाल दिया; परन्तु यन्त्रणाके कारण वह हौदेमें गिर पड़ी। एक साहसी सशस्त्र कर्मचारी उसके हाथीको चला रहा था। उसने निवेदन किया,—"अब जयकी आशा नहीं है, चारों ओर सेना भाग रही है, ऐसे समयमें हाथीको लेकर पलायन करनेहीका आदेश दीजिये।" रानी दुर्गावतीने बड़ी घृणाके साथ इस प्रस्तावसे असम्मति प्रकाश की और कहा,—"मैं संग्राममें पराजित हो गई हूँ यह सत्य है, तो क्या सम्मानमें भी पराजित होऊँ ?

और भी कुछ वर्ष जीने के लिये क्या सम्मानको विदा कर दूँ? यश को छोड़ दूँ? जिसके उपार्जन करने के लिये इतना प्रयास किया है, उसको स्वेच्छा से नष्ट कर दूँ? यह कभी न होगा। मैंने तुम्हारा कितना उपकार किया है; आज तुम उसका बदला मुझको दो। तुम अपनी छुरी से मुझे मारो, जिस से मुझे आत्महत्या न करनी पड़े।" वह व्यक्ति यह सुन कर रोने लगा और बोला,—"अब भी रणक्षेत्र से निरापद निकल सकते हैं।" परन्तु रानी दुर्गावती रणक्षेत्र से कब भागने वाली थी? वह शत्रु को कब पीठ दिखला सकती थी और यशके बदले में क्या जीवन-रक्षा ले सकती थी?

वह पलायन के लिये उद्यत न हुई। क्रम से उसकी सेना चारों ओर से भागने लगी, और रणक्षेत्र से अदृश्य होने लगी। मुग़ल-सैन्य-समुद्र की उत्ताल तरङ्गें रानी दुर्गावती को चारों ओर से वेष्टन करने लगीं। रानी दुर्गावती ने समझ लिया, कि सब आशा विफल हुई, सारा प्रयास व्यर्थ हुआ और अब मुग़लों के हाथमें वन्दी होना पड़ेगा। उसने सोचा, कि ऐसे जीवन से क्या लाभ है? तत्क्षणात् उसने हाथी चलाने वाले की छुरी लेकर अपनी छाती में विद्ध करली और इस प्रकार रणक्षेत्र में, हाथी की पीठ पर, कीर्त्ति और यश के साथ पञ्चत्व को प्राप्त हुई।

अब मुग़ल-सेना की विपक्षता कौन करता? स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा में अपने प्राण कौन विसर्जन करता? जो

महा शक्ति हिन्दुओं को जीवित कर रही थी, वह अन्तर्हित हो गई; तथापि रानी दुर्गावती का उपयुक्त पुत्र स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा के लिये दण्डायमान हुआ, परन्तु कार्य्यसाधन में समर्थ न हो सका। वह पराजित और निहत हुआ। मुग़ल-सेना ने सम्पूर्ण प्रदेश को अधिकारमें कर लिया। रानी दुर्गावती का अपरिमेय सोना-चाँदी और बहुमूल्य रत्न इत्यादि आत्मसात् कर लिये। ऐतिहासिक फ़रिश्ता और फ़ैज़ी सरहिन्दी ने उस वीर रमणीरत्न की वीरगाथा का कीर्त्तन करके इतिहास के पृष्ठों को उज्ज्वल किया है। जो दुर्ग रानी दुर्गावती की लीला से उद्भासित हो रहा था, वह आजकल के आक्रमण से भूलुण्ठित होने पर भी शतमुख से भारतलल-नाके वीरत्व की घोषणा कर रहा है। जिस पर्वत पर रानी ने प्राण त्याग किये थे, वहाँ पर उसकी समाधि बनी हुई है। वह स्थान जब्बलपूर से १२ मील दूर है। मध्य भारत के अधिवासी वहाँ जाकर, वहीं के उत्पन्न हुए स्फटिक के छोटे-छोटे खण्डोंको फूलों के समान उस समाधि पर चढ़ा कर, उस मृत व्यक्तिका सम्मान और उसके प्रति श्रद्धा प्रदर्शन करते हैं। उसकी कीर्त्ति को हुए कितनी शताब्दियाँ हो चुकीं, कितने नये वंश उत्पन्न होकर विलीन होगये, तथापि मध्यभारतके अधि-वासी रानी दुर्गावतीको भूल नहीं सके हैं; वह लोग आज भी उसकी वीरगाथा और कीर्ति-कथाको शतमुखसे कीर्त्तन करते हैं और अतीत गौरवको स्मृति-मन्दिरमें रक्षित करते हैं।

आठवाँ अध्याय।

नक्षत्रमण्डल।

It is my duty to be in good understanding with all men. If they walk in the way of God's will, interference with them would be in itself reprehensible; and if otherwise, they are under the malady of ignorance and deserve my compassion.

—**Akbar.**

बहुत दिनों की छायी हुई घनघटा अब भारत के आकाश से अन्तर्हित हो रही है। बहुत दिनों के पीछे उज्ज्वल नक्षत्रराजि, अकबर-चन्द्र की शोभा-सम्पादन के लिये, नीलाकाश में एक-एक करके उदय हो रही है।

जिस समय हुमायूँ शेरशाह से पराजित होकर भागा था, उस समय राजस्थान-अम्बरके राजा बिहारीमलसे उसको सहायता मिली थी। राजा उसी उपकार के लिये सम्राट् से साक्षात् करने के लिये निमन्त्रित हुए। हेमू के पराजित होने

के दोही दिन पीछे राजा वहाँ पहुँचे। दिल्ली से बाहर, थोड़ीही दूर पर, एक छावनी स्थापित हुई थी। राजाने बहुत से अनुचरों के साथ उसमें प्रवेश किया, तो देखा कि चारों ओर बहुतसी शिविर-श्रेणी दण्डायमान है। बहुतसी सेना, दलके दल भृत्य, इधर-उधर विविध कार्य सम्पादन कर रहे हैं। कितनेही अश्वारोही, कितनेही गजारोही, द्रुतवेग से गमनागमन कर रहे हैं। कितनीही बन्दूकें, कितनीही तोपें और बहुत से युद्ध के सामान इधर-उधर पड़े हुए हैं। बड़ी भारी आँधीके पीछे, किसी उद्यान के पत्र, पुष्प और वृक्ष इत्यादि की जो दशा होती है, वही इस समय इस शिविरश्रेणीकी भी हो रही है। एक शौर्य-वीर्य-दृप्त सुन्दर बालक ऐरावत-तुल्य एक मत्त मातङ्ग की गर्दन पर बैठा हुआ, हाथ में अंकुश लिये, उसको चला रहा है। साहस के पक्षपाती राजपूतगण उस दृश्य को देखकर मुग्ध हो गये और उसी ओर को बढ़ने लगे। गजराज बालक के शासन का उपहास करता हुआ, आनन्द से, वेगपूर्वक धावित होने लगा। उसके सामने के मुसल्मान सैनिकगण प्राणभय से चारों ओर भागने लगे। बहुतसे व्यक्ति भागने के पथपर शिविर-रज्जु में फँस कर गिर पड़े। वीर बालक अंकुश द्वारा मृदुमन्द भाव से हाथी को आहत और शासनाधीन करके, धीरे-धीरे अभिलषित पथ पर उसे चलाने लगा। गजराज ने बालक के शासन की फिर से अवहेला की और आये हुए राजपूतों की ओर को द्रुतवेग से दौड़ा। परन्तु राजपूत

क्या भागने वाले थे ? क्या वह प्राणों के भय से भाग सकते थे? वह लोग बड़ी दृढ़ता से अपने-अपने स्थानों पर खड़े रहे। समुदय मुग़ल-सेना विस्मय से देख रही थी, और क्षण-क्षण हिन्दुओं के विनाश की आशङ्का कर रही थी। हाथी राजपूतों को पददलित करने के लिये महापराक्रम से भागा, तथापि हिन्दू स्थिर और अचञ्चल रहे। गजराज उनके ऊपर आने ही को था, कि यकायक रुका; मानो राजपूतों के साहस को देख कर विस्मय से स्तम्भित हो गया। अथवा यों कहिये, कि बालक को हिन्दू मुसल्मानों का भेद दिखलाने के लिये खड़ा हो गया। बालक राजपूतों का साहस देख कर मुग्ध होगया और मनही मन उनकी प्रशंसा करता हुआ हाथी को गन्तव्य पथ पर ले चला। राजा बिहारीमल बालकके साहस और दक्षता को देख कर आपस में प्रशंसा करने लगे। बालक अति विचक्षणता के साथ हाथी को अभिलषित पथ पर चलाने लगा। राजपूतगण भी, प्राणों के भय से दूर न जाकर, हाथी के पीछे-पीछे चलने लगे। हाथी क्रम से एक मनोहर पटमण्डप के द्वार पर पहुँचा। बालक ने अंकुश से उसको बैठाया और आप कूद कर नीचे आगया। उसने सब से पहले वृद्ध राजा को आदर से अभिवादन करके, उनको अपने पीछे-पीछे आने का इशारा करके, शिविर में प्रवेश किया। राजा जब पटमण्डप में घुसे, उस समय उनको ज्ञात हुआ कि यही बालक नवीन सम्राट् है। यह जान कर उनके आनन्द और

विस्मय की सीमा न रही। राजा सम्राट् से बातें करके, उनकी सहृदयता और प्रतिभा को देख कर मुग्ध हो गये। सम्राट् में यह एक असाधारण शक्ति थी, कि जो कोई उनके पास जाता था, वह उनके व्यवहार से मोहित हो जाता था। शीघ्रही सम्राट् और राजा एक दूसरे के प्रति अनुरागी हो गये। सम्राट् ने वृद्ध राजा के प्रति ऐसा सम्मान और सौजन्यता प्रकाशित की, कि वह आत्मविक्रीत होकर घर को लौटे।

इस घटना के पीछे पाँच वर्ष व्यतीत हो गये। बैरमखाँ का पतन हो गया। राज्यभार सम्राट् ने अपने हाथ में ले लिया, तथापि वह राजा और राजपूतों के साहस को भूल न सके। राजपूतगण भी सम्राट् की अमायिकता और दक्षता को न भूले। सम्राट् इस समय, मुईनुद्दीन चिश्ती के पवित्र समाधि-मन्दिर के दर्शनों की कामना से, अजमेर को जा रहे थे। जब वह अम्बर प्रदेश के पास पहुँचे, तो राजा बिहारी-मल से मिलने के लिये व्याकुल होकर उनको निमन्त्रण दिया। राजा अपने पुत्र-पौत्र के साथ मिलने को आये। सम्राट् उन लोगों की बात-चीत और तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय पाकर, उन लोगों के सद्व्यवहार से मुग्ध हो गये। दोनों पक्ष परस्पर के प्रणय में आबद्ध हो गये। वृद्ध राजा ने अपनी ही इच्छा से सम्राट् की वश्यता स्वीकार की। सम्राट् ने उनकी सम्प्रीति लाभ करने और हिन्दू-मुसलमानों का सम्मिलन सम्पादन करने के लिये, राजा से राज-तनया को

शादी अपने साथ कर देने की प्रार्थना की। राजाने उस प्रस्ताव को सानन्द स्वीकार किया। इस राजबाला का नाम जोधाबाई था। इसी परिणय का परिणाम जहाँगीर था।

राजा बिहारीमल का पुत्र राजा भगवानदास और पौत्र राजा मानसिंह इस समयसे सम्राट्से मिल गये, और सुविशाल मुग़ल-साम्राज्य के स्थापन करने में अपनी-अपनी असाधारण शक्ति लगाने लगे।

राजा भगवानदास अत्यन्त साहसी पुरुष थे। अन्तिम काल में नाना युद्धों में लिप्त होकर, महावीरत्व प्रदर्शन करके, उन्होंने अक्षय ख्याति पाई थी। सम्राट् को उनसे बड़ा प्रेम था और उनका बहुत विश्वास करते थे। वीरत्व-बल से हिन्दुओं में सबसे महा सम्मानसूचक पताका और डङ्का उनको ही मिला। यह सम्मानप्राप्त व्यक्ति जब राजपथ पर निकलता था, तो तुरई भेरी डङ्का उसके आगे-आगे बजता जाता था; और उसके कीर्त्ति-कलाप का कीर्त्तन होता जाता था; पताका उसके गौरव की घोषणा करती थी। मुग़ल-दरबार में ऐसा सम्मान बहुत कम मनुष्यों को मिलता था। वह क्रम से अति गौरवके पञ्ज-हज़ारी सेनापति के पद पर नियुक्त हुए। यह पद केवल गौरव-सूचकमात्र होता था। भगवानदास ने आवश्यकतानुसार बहुत बड़ी-बड़ी सेनाओं का सेनापतित्व किया था। साम्राज्य के प्रधान पुरुषगण यह पञ्ज-हज़ारी पद पर्यन्त पा सके थे। उससे अधिक सेना का सेनापतित्व कुमारगण को मिलता

था। राजा भगवानदास पीछे काबुल और पञ्जाब के शासन-कर्त्ता नियुक्त हुए थे। सम्राट् ने उनको अति गौरव की "अमीरुल उमरा" नामक उपाधि से अलंकृत किया था। हिन्दू राजाओं में, सब से पहले, उन्होंने ही मुसलमान सम्राट् के साथ अपनी भगिनी का विवाह किया था। उनके पीछे, महा शक्तिशाली राजस्थान के प्रायः सबही प्रबल नृपतिगण ने उनके दृष्टान्त का अनुसरण किया। अँगरेज़ लेखकगण उनके उदारमत की बड़ी प्रशंसा करते हैं। हम लोगों को उनके वीरत्व के फिर भी कई बार दर्शन मिलेंगे।

राजा मानसिंह मुग़ल-साम्राज्य के अति उज्ज्वल नक्षत्र थे, और सम्राट् की सभा के अतुलनीय रत्न थे। वह राजा भग-वानदासके भतीजे और उनके दत्तक पुत्र थे। इनकासा विचक्षण सेनापति मुग़ल-पक्ष में दूसरा नहीं था। अँगरेज़ ऐतिहासिकगण ने लिखा है, कि अकबर ने जो विस्तृत भूभाग मुग़ल-साम्राज्य में मिलाया था; उसमें से आधा मानसिंह के बाहुबल से विजय हुआ था। उन्होंने हिन्दूकुश से ब्रह्मपुत्र पर्यन्त अपना असाधारण वीरत्व प्रदर्शन किया था। मुग़ल-साम्राज्य के स्थापन में अपनी अतुलनीय शक्ति और प्रतिभा लगाई थी। क्रमसे वह पञ्जाब, काबुल, बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के शासनकर्त्ताओं के पदों पर रहे थे। उन्होंने वर्त्तमान राजमहल नगर बसाया था और बिहार में सुप्रसिद्ध रोहतासगढ़ नामक दुर्गका संस्कार करके, उसमें बहुत सी अट्टा-

लिकायें और मन्दिर बनवाये थे। सम्राट् उनसे बड़ा स्नेह रखते थे और उनका विश्वास भी करते थे। उनको 'फ़र्ज़न्द' की उपाधि देकर, सम्राट्‌ने बङ्गविजय होने पर महागौरव की "हफ़्त हज़ारी पदवी" देकर, उनको सेनाका सेनापति बनाया था। इससे पहले राजकुमारों के अतिरिक्त किसी भी हिन्दू मुसलमान को यह यह पदवी नहीं मिली थी। उन्होंने बहुतसे अभियानों में मुग़लों की विपुल वाहिनी का प्रधान सेनापतित्व किया था।

उनके पीछे राजा टोडरमल उल्लेख-योग्य हैं। उन्होंने अयोध्या प्रदेश में एक क्षत्री वंश में जन्मग्रहण किया था। वह दरिद्र की सन्तान होने पर भी, गुणों के बल से अक्षय कीर्त्ति छोड़ गये हैं। उन्होंने पहले सामान्य कार्य में प्रवेश करके, शेरशाह के समय में, पञ्जाब में "नया रोहतास' नामक एक सुदृढ़ दुर्ग बनवा कर प्रसिद्धि पाई थी। गुणग्राही अकबर उन में विविध गुणों का समावेश देख कर मुग्ध हुए थे। वह जैसेही महा साहसी थे, वैसेही असाधारण राजनीतिविद् भी थे। हम को गुजरात, बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और अफ़-ग़ानिस्तान इत्यादि स्थानों में उनका वीरत्व और तीक्ष्णबुद्धि देखने को मिलेगी। वह क्रमसे 'पञ्जहज़ारी' सेनापति और विभिन्न समयों में बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के शासनकर्त्ता रहे। उन्होंने सुविस्तृत मुग़ल-साम्राज्य के सर्व्वोच्च दीवानी पद को अलंकृत किया। महापण्डित अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"साधुता, विचक्षणता और कार्यदक्षता में राजा टोडरमल

भारत में अद्वितीय थे। वह सम्पूर्णरूप से लोभ-रहित थे।" अँगरेज़ ऐतिहासिकगण ने लिखा है,—"वह एक असाधारण राज्य-सचिव थे। उन्होंने ऐसी दूरदर्शिता के साथ सम्राट् का कार्य सम्पादन किया है, राजस्व-सम्बन्ध में ऐसे नियम बर्त्ते हैं, राजनीति और शासननीति में ऐसी अभिज्ञता दिखलाई है, कि वह मुसल्मानी इतिहास में अमर, अद्वितीय राजनीतिज्ञ सचिव हुए हैं। जर्मन राजकुमार काउण्ट आव नोहर ने लिखा है,—"उन्होंने कर-सम्बन्धी ऐसी नियमावली बनाई है, कि उस के द्वारा अपने लिये और अपने सम्राट् के लिये उन्होंने अक्षय यश सञ्चय कर लिया है। सोभी यहाँ तक, कि आजकल के बहुत से यूरोप के राज्यों के लिये वह आदर्श हो सकती है।" गुणविमुग्ध सम्राट् ने स्वयं उनके घर जाकर उनका सम्मान बढ़ाया था।

सम्राट् के राज्याभिषेक के कुछही दिन पीछे, महेशदास नामक एक अति दरिद्र ब्राह्मण-कवि उनके दरबार में आया। सम्राट् गुण के बड़े पक्षपाती थे। ब्राह्मण में बहुतसे गुण देख कर सम्राट् मुग्ध होगये। उसको 'कविराय' की उपाधि से विभूषित करके, दरबार के कविरूप में ग्रहण किया। वह दिन पर दिन अपना पाण्डित्य, उदारहृदय और सत्साहस दिखला कर सम्राट् को आकृष्ट करने लगा। शीघ्र ही दोनों दोनों के प्रणय में आवद्ध होगये। सम्राट् ने उसको सम्मान-सूचक 'दोहज़ारी' सेनापति और 'राजा बीरबल' उपाधि से अलंकृत

करके नगरकोट का राज्य उसको प्रदान किया। आजकल के समय में, अकबर की भाँति किसी भी राजा ने गुण का इतना आदर और उत्साह-वर्द्धन नहीं किया होगा। कविवर ने इतिहास में राजा बीरबल के नाम से ही ख्याति पाई है। वह जैसे ही मिष्टभाषी थे, वैसे ही उत्कृष्ट कवि और सङ्गीताध्यापक भी थे। ब्लाकमेन साहब लिखते हैं,—"उनकी छोटी-छोटी कवितायें और हास्योद्दीपक पद्य अब भी भारतवासी कहा करते हैं।" उनके मधुर स्वभाव और मधुर आलाप से सभी विमुग्ध हो जाते थे। सम्राट् उनके सहवाससे बड़े प्रसन्न रहते थे, और उन्हें सदैव अपने पास रखते थे। फ़तेहपुर-सीकरी में, सम्राट् के अन्तःपुर से लगा हुआ, उनका दोतल्ला महल अब भी बना हुआ है। अकबर के समान पृथ्वी के एक सर्वप्रधान सम्राट् ने एक दीन-हीन ब्राह्मण को बन्धुभावसे ग्रहण करके अपने महत्त्व का परिचय दिया था। सम्राट् इस दरिद्र ब्राह्मण से कितना प्रेम करते थे, वह आगे चल कर ज्ञात होगा। राजा बीरबल असामान्य गुणों के बल से सम्राट् के दरबार में एक उज्ज्वल रत्न गिने जाते थे। सम्राट् हिन्दू मुसल्मानों को एक करने की इच्छासे, हिन्दू-धर्मको अभिनव वेश से सुसज्जित करके, उसको "ईश्वर का धर्म" बतलाते थे। राजा बीरबल ने उसके उद्देश्य और उपकारिता को देखकर, अति आनन्द के साथ, उस धर्म को ग्रहण किया था। वह अभिनव हिन्दू-धर्म का विषय पीछे वर्णन किया जायगा।

राय पत्रदास पहले सम्राट् के फ़ील-ख़ाने का हिसाब रखते थे। चित्तौड़ के आक्रमणके समय, उन्होंने असाधारण वीरत्व प्रकाशित करके ख्याति पाई थी। पीछे उन्होंने धीरे-धीरे बङ्गाल, बिहार और काबुलके दीवानी-पद को अलंकृत किया। क्रमसे सम्राट् ने उनको 'पञ्च-हज़ारी' सेनापति करके "राजा विक्रमाजीत" उपाधि प्रदान की। उन्होंने नाना रणस्थलों में उपस्थित होकर, असीम साहस प्रदर्शन करके, सम्राट् का कार्य सम्पादन किया था।

रामदास नामक एक दरिद्र राजपूत सम्राट् का कर्मचारी था। वह ऐसी साधुता से राजकार्य करता था, कि उसकी विश्वस्तता कहावत के रूपमें परिणत हो गई थी। क्रमसे वह राजस्व-विभाग में राजा टोडरमल का सहकारी नियुक्त हुआ। उसने बहुतसा धन संग्रह करके, आगरा नगरमें, एक मनोहर वासभवन बनवाया था; परन्तु वहाँ वह बहुत कम रहता था। वह सदैव बल्लम हाथ में लिये, अपनी २०० राजपूत सेना के साथ, राजपुरी की रक्षा में नियुक्त रहता था। वह दाता था; अपना बहुतसा धन दीन-दरिद्र, संगीतज्ञ और कविगणमें व्यय कर देता था। सम्राट् ने उसको पाँच सौ सेनाका सेनापति पद और कश्मीर का एक मनोहर उद्यान प्रदान किया था। एक बार उसके मकान पर जाकर उसका सम्मान बढ़ाया था।

सुप्रसिद्ध संगीताध्यापक तानसेन बुन्देलखण्ड के अधि-पति राजा रामचन्द्र बघेला के दरबार को अलंकृत कर रहे

थे। एक बार इस राजाने, उनके संगीत-माधुर्य पर मुग्ध होकर, उन्हें एक करोड़ रुपया उपहार में दिया था। सम्राट् गुणी लोगों के ऐसे पक्षपाती थे, कि बहुत व्यय और यत्न से भारत के दूर-देशोंसे भी गुणी लोगों को बुलाते थे, और उनको प्रभूत अर्थ-सहायता और निष्कर भूमि दान करते थे। सम्राट् ने अपने राजत्व के सातवें वर्षमें, इस सङ्गीताध्यापक का यश सुन कर उसको अपने यहाँ बुलाने के लिये, एक प्रधान कर्मचारी को दूत-रूपमें, राजा रामचन्द्र के दरबार में भेजा। राजा सम्राट् के अनुरोध की उपेक्षा करनेका साहसी न हुआ, और बहुत से उपहार के साथ तानसेन को सम्राट् के पास भेज दिया। तानसेन के दरबार में पहुँचते ही सम्राट् ने बड़े सौहार्द और सम्मान से उनको ग्रहण किया। तानसेन ने पहले दिन ही अपनी निपुणता और असाधारण मधुर संगीत से सम्राट् को ऐसा मुग्ध किया, कि उन्होंने दो लाख रुपया पुरस्कारमें दिया। तबसे वह दरबारके उज्ज्वल रत्नोंमें परिगणित होने लगे। उनके बहुतसे सङ्गीतों में पूर्वोक्त राजा रामचन्द्र और अकबर के नाम का उल्लेख है। सम्राट् के प्रधान अमात्य अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"तानसेन सा सङ्गीतज्ञ सहस्र वर्ष में भी भारत में नहीं जन्मा।" उनकी असाधारण सङ्गीत-ख्याति आज भी समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हो रही है।"

राजस्थान के बहुतसे हिन्दू-राजाओंने प्राणपण से सम्राट्

के अनेक कार्य सम्पादन किये थे; उनका वर्णन पीछेसे किया जायगा। हिन्दू-राजाओं ने साधारणतः अपनी-अपनी हिन्दू-सेना लेकर संग्राम किया है। परन्तु जब वह प्रधान सेनापति के पद पर हुए, तब उन्होंने हिन्दू-मुसल्मान सभी सम्प्रदायोंके सैनिक और सेनापतियोंको परिचालन किया है। हिन्दू लोगोंने कभी भी सम्राट् के विश्वास और प्रेमका अपव्यवहार नहीं किया। वह लोग सम्राट्को आत्मीय समझते थे, और साम्राज्यको अपना साम्राज्य समझते थे। सम्राट्ने भी हिन्दुओंको अपना आत्मीय ही समझा था और उनके मङ्गल के लिये सब तरह के उपाय अवलम्बन किये थे।

नये और पुराने आगरे के बीच में होकर जमुना नदी बह रही है। इस पुराने आगरेमें, शेख़ मुबारक नामक एक अति उदारहृदय महापण्डित रहते थे। वह पहले सुन्नी थे, पीछे उन्होंने शिया-मत ग्रहण कर लिया था। उन्होंने प्राचीन दर्शनोंका अच्छी तरह अध्ययन किया था, और सब ही विषयों की चिन्तना स्वाधीन और पक्षपात-विहीन होकर करते थे। उसका परिणाम यह हुआ, कि वह सब धर्मों को एक भाव से देखते थे और उनका हृदय अत्यन्त उदार था। उन्होंने कुरानके बहुतसे अंशोंका पाठ करके और तुलना करके लिखा है,—"हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों की तरह कुरान में भी कोई-कोई अंश पीछे से जोड़े गये हैं।" उन्होंने अपने घर पर एक विद्यालय खोल रक्खा था। उसमें छात्रगण को विद्या-दान

किया करते थे, और दीन-दरिद्र की तरह अपने दिन काटते थे। सन् १५४७ में, अबुलफ़ैज़ (फ़ैज़ी) और १५५१ में, अबुलफ़ज़ल नामक दो पुत्र शेख़ मुबारकके उत्पन्न हुए। यदि ये दोनों पुत्र जन्म ग्रहण न करते, तो शेख़ मुबारक का नाम विस्मृति के सागर में लुप्त हो जाता। वह अपने हृदयकी उदारता पुत्रोंके हृदयमें पहुँचाकर, अपने पाण्डित्य द्वारा पुत्रों को सुशिक्षित करते थे।

शिया-मतावलम्बी बैरमख़ाँ के पतन के पीछे, जब सुन्नियों ने राज्य में सर्वप्रधान क्षमता पायी, उस समय उनके शीर्ष-स्थान पर अबदुल्ला अन्सारी विराज रहा था। इससे पहले, सम्राट् हुमायूँ से उसने "मुसल्मान धर्म में सर्वप्रधान" उपाधि पाकर, अहङ्कारसे स्फीत होकर, जो लोग प्रचलित मुसल्मान धर्म के विरुद्ध कोई काम करतेथे, उनको वह अपनी ही क्षमता से शासन करने लगा। ऐसे अपराधों के लिये कुछ मुसल्-मानों को उसने प्राणदण्ड भी दिया। इस समय वह शेख़ मुबारक की प्रशंसनीय उदारता पर दोषारोपण करके, उनको दण्डित करने के लिये बद्धपरिकर हो गया। एक दिन, एक अन्धेरी रात में, एक व्यक्तिने शेख़ मुबारकके निस्तब्ध घर में पहुँच कर शत्रुगण का षड्यन्त्र प्रकाश किया। मुबारक ने कहा,—"मेरा शत्रु क्षमताशाली अवश्य है, परन्तु ऊपर करु-णामय ईश्वर विद्यमान है, नीचे एक न्यायवान् सम्राट् पृथ्वी का शासन करता है। भय किसका है? यदि परमेश्वर को

मेरा ध्वंस करना अभीष्ट नहीं है, तो शत्रुगण षड्यन्त्र करके क्या कर सकते हैं ? और यदि ईश्वर ही मेरे प्राणोंके ग्रहण करने को अभिलाषी हुआ है, तो मैं सानन्द इस क्षणभङ्गुर शरीर को उसके अर्पण कर दूँगा।" परन्तु पुत्रों का हृदय इन बातों से किस प्रकार आश्वस्त होता ? फ़ैज़ी और अबुल-फ़ज़ल पिता को लेकर उसी अन्धेरी रातमें घर से निकल दिये। वह अन्धकार में चुपचाप शङ्कितचित्त से मनुष्य-समागम-शून्य पथों पर जाने लगे। वह जिस बन्धुके पास आश्रय के लिये जाते, वही साहसहीन हो जाता और आश्रय देने से इनकार कर देता। ऐसी असहाय अवस्था में, छद्म-वेश में वह एक से दूसरे के द्वार पर दुःख और क्लेश सहते हुए घूमने लगे।

इधर अबदुल्ला अनसारी शेख़ मुबारकको वन्दी करने के लिये बहुत से प्रहरी भेजने लगा। उस समय भारत में मनुष्य-जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं था। जब वह मुबारक को न पा सका; तो क्रोधान्ध होकर उनका उपासना-गृह तोड़ कर, अन्यान्य वस्तुओं को विनष्ट करके, घर की दुरवस्था करके, तीसरे पुत्र को वन्दी करके लेगया। सम्राट् यह संवाद पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और कहा,—"एक पण्डित और मनुष्य पर क्यों इतना अत्याचार किया गया है ? इस उत्पीड़न का उद्देश्य क्या है ? उस घर पर क्यों अत्याचार किया गया है ? उसके पुत्र को क्यों वन्दी किया है ?" उन्होंने तत्क्षणात्

मुबारक के पुत्र को स्वाधीनता प्रदान करके, उसे अपने घर जाने को अनुमति दे दी।

मौलवी लोग सम्राट् की ऐसी उदारता और करुणा देख कर मुग्ध नहीं हुए, वरन् अप्रसन्न होकर कहने लगे,—"ऐसा होने से धर्म लोप हो जायगा; स्वेच्छाचार से देश पूर्ण हो जायगा।" इधर मुबारक अपने दोनों पुत्रों के साथ छद्मवेश में बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमते हुए, सम्राट् के धात्री-पुत्र अज़ीज़ कोका की शरण पहुँचे। उसने सम्राट् को सारा हाल कह सुनाया। सम्राट् ने उनको बुलाया और उनको निरापद उनके घर भेज दिया। सुन्नी लोग दुरभिसन्धि-साधन में असमर्थ हुए।

फ़ैज़ीने अरबी, फ़ारसी और चिकित्सा-शास्त्र अध्ययन करके, संस्कृत-शिक्षा में मनोनिवेश किया और शीघ्रही अमानुषिक परिश्रम से हिन्दू-साहित्य और दर्शन में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। मुसल्मानों में सब से पहले उसीने संस्कृत-भाषा और हिन्दू-शास्त्र का अध्ययन किया था। थोड़े ही दिनोंमें, उसके कवित्व की यशश्चन्द्रिका चारों ओर आलोकित हो गई। सम्राट् जिस समय चित्तौड़-अवरोध में व्यस्त थे, जिसका वर्णन आगे के अध्याय में आवेगा, उसी समय वह सम्राट् के पास पहुँचा। सम्राट् गुणों के ऐसे पक्षपाती थे, और इतना उत्साह प्रदान करते थे, कि गुणके सम्मान-प्रदर्शन में तनिक भी देर न करते थे। उक्त कविवर को देखने

को इच्छा से सम्राट् ने आगरे के शासनकर्त्ता को आदेश भेजा, कि इस सेनावास में ही उसको भेज दो।

सम्राट् का आदेश पहुँचते ही, मौलवी लोग आनन्द से अधीर होगये। उन्होंने समझा, कि अब सम्राट् को ज्ञानोदय हुआ है और पूर्वभाव परिवर्त्तित होगया है। अब फ़ैज़ीको उदारता को उचित शास्ति उसको मिलेगी। उन लोगों ने एक दल सेना ले जाकर, अचानक मुबारक के घर को घेर लिया और भीतर घुसकर उसको अपमानित और उत्पीड़ित करके, फ़ैज़ी को वन्दी कर के, घोड़े की पीठ पर लाद कर, शीघ्रता से चित्तौड़ के सेनावास में भेज दिया। परन्तु वहाँ पहुँच कर वह लोग बड़े निराश और विस्मित हुए। उन्होंने देखा, कि अज़ीज़ कोका ने यथोचित सम्मान से कविवर को लिया और सम्राट् के पास लेगया। यह देख कर, मौलवी लोग क्षुस-मन से चले आये। सम्राट् ने फ़ैज़ी से बातचीत करके, उसके गुणों का परिचय पाकर, मुग्ध होकर, उसका बहुत सम्मान किया और सौहार्द्द प्रकाशित किया। इस समय से फ़ैज़ी सम्राट् का अनुरागी और सहचर होगया, और शीघ्रही दर-बार के उज्ज्वल रत्नों में से एक गिना जाने लगा। वह जैसा ही महाप्राज्ञ था, वैसा ही उदार भी था। वह अपनी उदारता द्वारा सम्राट् की उदारता का समर्थन करता था। वह कविवर खुसरो से दूसरे नम्बर का भारतवर्ष का मुसल्मान कवि था। उसने बहुत से काव्य और बहुत सी कवितायें

बनाई थीं। सम्राट् ने उसको "कविराज" की पदवी से विभूषित किया था।

उसका छोटा भाई अबुलफ़ज़ल विविध विषयों का अध्ययन करके अनायासही महापण्डित होगया। उसने दर्शन-शास्त्रमें विशेष अभिज्ञता प्राप्त की थी। सम्राट् उसके गुणों से अवगत होकर, उसको दरबार में उपस्थित होने के लिये बारम्बार निमन्त्रण करने लगे। अबुलफ़ज़ल बारम्बार उपेक्षा करने लगा। शेषमें, फ़ैज़ीने उसको विविध रूपसे समझाकर उसका मत-परिवर्त्तन किया और सन् १५७४ ई० में उसको सम्राट् के पास लाया। सम्राट् ने पहले दिन ही उसके साथ ऐसा सौजन्य और स्नेह प्रदर्शन किया, कि अध्ययन-प्रिय, निर्जन-प्रिय, चिन्ताशील युवक सम्राट् का अनुरागी हो गया; पहली राह छोड़ कर, राजनीति-क्षेत्र में विचरण करने का अभ्यस्त होगया। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"मेरा यही सङ्कल्प था, कि अपने जीवन को निर्जन वास में अतिवाहित करूँगा। मेरे चित्तमें शान्ति नहीं थी। मैं मङ्गोलिया और लेबनेन के उदासीन सम्प्रदाय के मनुष्यों से मिलने और उनके साथ रहनेको लालायित हो रहा था। तिब्बत जाकर वहाँके बौद्ध-धर्म-गुरु लामाके दर्शन करने, पोर्चुगाल के ईसाई-धर्म-प्रचारकों के उपदेश सुनने, पारसी-धर्म के पुरोहितों से कथोपकथन करने और उनके धर्मग्रन्थों के मर्म से अवगत होने की मेरी उत्कट अभिलाषा थी। मैं स्वदेश के

नामी पण्डितों के पाण्डित्य से हताश हो गया था। मेरे बड़े भाई और बन्धुगण ने सम्राट् के पास जाने को बहुत अनुरोध किया। वह लोग समझते थे, कि अकबर मेरा पथ-प्रदर्शक हो सकता है। परन्तु हाय, मैंने उनके कहने का वृथा ही प्रतिवाद किया! क्योंकि अब मैंने सम्राट् को पाकर शान्तिलाभ किया है। निर्जन में बैठ कर, उनका ध्यान करने से बड़ा सुख मिलता है। सम्राट् मेरे कर्मचक्रके पथप्रदर्शक हैं। उन्होंने मुझको सिखलाया है, कि धर्म भिन्न होनेपर भी, उसको सत्यकी दृढ़ नींव पर स्थापित करने से सब ही एक दूसरे के समान हो सकते हैं। मैं सम्राट् के पास जाने को सहमत हो गया। परन्तु सम्राट् को उपहार में क्या देता? मैं दरिद्र और अर्थहीन था। कुरानके एक श्लोककी व्याख्या करके वही सम्राट् को उपहार में दी। उन्होंने उसको बड़े सन्तोष से ग्रहण करके मुझसे बड़ा सौहार्द प्रकाशित किया।" तब से अबुलफ़ज़ल सम्राट् का सहचर हुआ और शीघ्र ही साम्राज्य का अति उज्ज्वल अलङ्कार गिना गया। सम्राट् उसको अपने प्राणों से भी अधिक चाहते थे। उसके अगाध ज्ञान को देख कर मुग्ध होते थे। अबुलफ़ज़ल अपने असाधारण गुणोंके बलसे, सामान्य अवस्था से, क्रम से पञ्चहज़ारी सेनापति के पद पर पहुँचा, और सुविशाल मुग़ल-साम्राज्य का सर्वप्रधान अमात्य-पद अलंकृत किया। वह जैसा साहसी था, वैसाही परोपकारी भी था। मुसलमानों में ऐसा गद्य-

लेखक, भारतमें, दूसरा उत्पन्न नहीं हुआ। उस समयका मध्य एशियाका प्रबल नरपति अब्दुल्ला कहता है,—"मैं अकबर के अस्त्र से उतना नहीं डरता, जितना अबुलफ़ज़ल की लेखनी से।" उसके 'अकबरनामा' और 'आईन अकबरी' सुबृहत् और उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। यदि वह इस इतिहास-सरोज में अकबर-मकरन्द को यत्नपूर्वक संरक्षित न करता, तो आज इस मनोहर अकबर-चरित का विश्वास कौन करता? उसने हिन्दू-शास्त्रोंको भी अच्छी तरह अध्ययन किया था और हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंसे ही ज्ञान पाया था। उसने 'आईन अकबरी' नामक फ़ारसी ग्रन्थको इस आशासे लिखा था, कि यदि मुसल्मान लोग हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंको पढ़ेंगे, तो उन लोगोंमें मुसल्मानोंकी श्रद्धा और भक्ति होगी—हिन्दू-मुसल्मानोंकी सम्प्रीति-वाटिकामें अच्छे-अच्छे मनोहर फूल फूलेंगे। उसमें उसने हिन्दुओंके धर्म, न्याय, दर्शन, पुराण, वेद, वेदान्त, साहित्य, सङ्गीत, आचार, अनुष्ठान इत्यादि सभी ज्ञातव्य विषय विस्तृत-रूपसे लिपिबद्ध किये थे।

अकबर और अबुलफ़ज़ल दोनों ही ने जन्मभूमिको गौरवान्वित करनेकी चेष्टा की। अबुलफ़ज़लका अगाध ज्ञान, युक्ति और उदारता आदि गुण, अकबरके इन गुणोंसे नीचे ही स्थान पानेके योग्य थे। यदि अकबर पूर्णचन्द्र था, तो अबुलफ़ज़ल अत्युज्ज्वल शुक्र नक्षत्र था। यह भारत का सौभाग्य था, कि अकबर और अबुलफ़ज़ल दोनों ने एक साथ ही भारत के आकाशको आलोकित किया।

हिन्दूलोगों ने अकबर से जो स्नेह पाया था, उसका कारण उनका गुण ही था। गुणसे सब ही आकृष्ट और मुग्ध होते हैं। भारतके गौरव के दिनोंमें, ग्रीक मेगेस्थनीज़ और चीन-परिव्राजकगणने हिन्दुओंके जो मनोहर चित्र अङ्कित किये हैं, वह यथास्थान प्रदर्शित हुए हैं। उसके पीछे भी, हिन्दू-गण विदेशी और विधर्मियों से प्रशंसा पाने में समर्थ हुए हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम भागमें, अलबेरूनीने भारत-भ्रमण करके लिखा है,—"असंख्य देवता केवल मूर्ख जनसाधारण के लिये हैं। शिक्षित हिन्दुओंका विश्वास है कि ईश्वर एक है, अनादि है, अनन्त है और सर्व्वशक्तिमान् है। वह जीवन्त है, सम्पूर्ण ज्ञान का आधार है, विश्वका स्रष्टा और पालनकर्त्ता है।" तेरहवीं शताब्दीमें, मार्कोपोलोने भारतके दक्षिण-प्रान्तमें ब्राह्मण-मण्डलीमें विचरण करके लिखा है,—"वह लोग कभी किसी कारणसे मिथ्याभाषण नहीं करते हैं। सत्य बोलनेसे यदि उनको प्राणदण्ड भी हो, तथापि वह सत्य बोल कर मृत्यु को आलिङ्गन करते हैं।" सोलहवीं शताब्दी में अबुलफ़ज़ल ने हिन्दुस्तान और हिन्दू अधिवासिगण पर विमुग्ध होकर लिखा है,—"मैं भारत की आश्चर्यकारक उर्व्वरता और उज्ज्वल नीला-काश की शोभा वर्णन करूँ, कि हिन्दुओंके स्थिर सङ्कल्प और परोपकारिता का चित्र प्रदर्शन करूँ? उनका हृदय-मुग्धकार सौन्दर्य्य वर्णन करूँ, कि विशुद्ध पवित्रता का यशोगान करूँ? उनकी वीरगाथा कीर्त्तन करूँ, कि उनके ज्ञान-समुद्र का

विवरण लिपिबद्ध करूँ ? वह लोग धार्मिक, अमायिक, अकपट, परोपकारी और प्रफुल्लचित्त हैं। वह लोग ज्ञान-पिपासु, विलास-विमुख,न्यायपरायण, सन्तुष्टचित्त, परिश्रमी, कार्यदक्ष, राजभक्त, सत्यवादी और विश्वासी हैं। उन लोगों की प्रकृति का माहात्म्य विपद्-समय में और भी उज्ज्वल भावसे प्रकाशित होता है। उनके सैनिगण रणस्थल से भागना जानते ही नहीं। जब उन लोगों को युद्ध के परिणाम में शङ्का होती है, तब वह लोग मृत्यु की अपेक्षा पलायन को अधिक भयङ्कर समझकर, घोड़ोंसे उतर कर, असीम साहससे आत्माहुति करते हैं। कोई-कोई ऐसी अवस्था में, घोड़े को पलायन-शक्ति-रहित करके असीम साहससे युद्ध करते हैं। कोई कैसा ही दुरूह विषय क्यों न हो, वह लोग अल्प समय में ही उस पर अधिकार करके शिक्षक को भी अतिक्रम करने में समर्थ होते हैं। ईश्वरको प्रीति लाभ करने के लिये, वह लोग शरीर और आत्मा दोनों हीको व्यय कर देते हैं और आजीवन साधना करते हैं। ईश्वर "एकमेवाद्वितीयं" यही उनका दृढ़ विश्वास है। वह ईश्वर की पूजा करते हैं, और उसको समुदय शक्ति का मूल समझते हैं। उनकी बराबर धार्मिक और आत्मसंयमी पुरुष पृथ्वीपर और किसी ठौर कदाचित् ही मिलेंगे। उन लोगों में दास-प्रथा नहीं है। यदि कोई मनुष्य विपद् में पड़कर उन से सहायता माँगे, तो प्रार्थनाकारी के नितान्त अपरिचित होनेपर भी, वह लोग उसकी सहायता

तत्चणात् करते हैं और उसके लिये सम्पत्ति, यश, और जीवन सब ही के नष्ट होने पर भी पश्चात्पद नहीं होते।" सम्राट् की सभा में जो पवित्र ब्राह्मण आया करते थे, उनका अगाध ज्ञान और अति पवित्र धर्म-जीवन दर्शन करके, अबुल फ़ज़लका समसामयिक बदाऊनी, हिन्दुओं का निन्दक होने पर भी, यह लिखने पर वाध्य हुआ है,—"ये ब्राह्मण लोग अपने धर्मग्रन्थ, धर्मतत्त्व और नीतिशास्त्र में ऐसे पण्डित हैं, भविष्यत्-दृष्टि इन्होंने ऐसी प्राप्त कर ली है, धर्म-सम्बन्धमें ऐसे उन्नत होगये हैं, मनुष्य-जीवन की सम्पूर्णता को इतना पा चुके हैं, कि और सभी धर्मों के सम्प्रदायोंके शीर्षस्थानीय व्यक्तियोंको भी अतिक्रम कर गये हैं।"

उन्नीसवीं शताब्दीके, मदरास के शासनकर्त्ता सर टामस-मुनरो साहब ने लिखा है,—"बहुत लोग भारतवर्ष को सुसभ्य बनाना चाहते हैं, परन्तु मेरी समझमें इसका अर्थ नहीं आता है। राज्यशासन-सम्बन्ध में तो वह अवश्य पश्चात्पद हैं; परन्तु उत्तम कृषिप्रणाली, अतुलनीय शिल्प, विद्यालय, दया, आतिथ्य, स्त्री-जातिके प्रति सम्मान इत्यादि यदि सभ्यता के लक्षण हों; तो हिन्दू लोग यूरोप की सभ्य जातियों की अपेक्षा किसी अंश में निकृष्ट नहीं हैं।" बिशप हिवर साहबने भी इसी प्रकार हिन्दुओं की प्रशंसा की है। मेजर जनरल स्लोमैन साहबने लिखा है,—"हिन्दुओंके बराबर पृथ्वी पर कोई जाति पितासे न इतना स्नेह करती है, और न सम्मान करती है,

न आज्ञापालन करती है। हिन्दू लोग अपनी जननी से बढ़ कर पिता की जननी का सम्मान करते हैं। मैं भारत के कृषक-सम्प्रदाय से बड़ा प्रेम रखता हूँ। मैं जिन-जिन उत्कृष्ट व्यक्तियों को जानता हूँ, उन में से कई एक इसी सम्प्रदाय में हैं। मैं ऐसी-ऐसी सैकड़ों घटनायें देख चुका हूँ, कि मिथ्या बोलने से यदि उनकी सम्पत्ति, स्वाधीनता और यहाँ तक कि जीवन पर्य्यन्त बचता हो, तथापि वह झूठ नहीं बोलते हैं।" मैलेसन साहब ने लिखा है,—"मुग़ल ऐतिहासिकगण ने ठीक ही लिखा है, कि राजपूतगण सम्राट् के सिंहासन के अवलम्बन और अलङ्कार थे।" हाय, वही हिन्दुओं का गौरव-रवि राहु-ग्रास से न जाने कहाँ गया!

नवाँ अध्याय ।

चित्तौड़ और राजस्थान ।

A monarch should be ever intent on conquest, otherwise his neighbours rise in arms against him.

—Akbar.

दूरदर्शी सम्राट् ने जिस उद्यान से कुसुम चयन करके अपने सिंहासन को अलंकृत किया था; जिस उद्यान के कुसुमों की माला गूँथ कर, गले में पहन कर, सौन्दर्य्य और सुगन्ध से स्वयं तृप्त और समस्त पृथिवी पर गौरवान्वित होने में समर्थ हुए थे; भारत का वह उद्यान, वीरत्व का लीलाक्षेत्र, राजस्थान था। मेवाड़ उसका सर्वप्रधान राज्य था। चित्तौड़ उसका सर्वप्रधान दुर्ग और राजधानी थी। उसके अधीश्वरगण "महाराणा" की उपाधि से विभूषित होकर, सम्मान में राजस्थान के शीर्षस्थान पर बैठते थे।

दिल्लीश्वर अलाउद्दीन ने सुप्रसिद्ध पद्मिनी के रूप पर लुब्ध होकर, सब से पहले स्वाधीनता की लीलाभूमि, इसी चित्तौड़ को अधिकार में करके, प्रायः तीस हज़ार राजपूतों को निहत किया था (१३०३ ई०)। उसके पीछे चित्तौड़ फिर स्वाधीनता से समृद्धिशाली और गौरवान्वित हो गया। इसी चित्तौड़ के अधिपति महाराणा संग्रामसिंह ने बाबर को भारत में आने के लिये निमन्त्रण देकर, जो अग्नि प्रज्वलित की थी, उस में वह आप ही जल गये। उनके पुत्र महाराणा विक्रमजीतसिंह के समय में, गुजरात के अधिपति बहादुरशाह के आक्रमण करने पर, राजमाता राणी कर्णवती ने राखी भेज कर सम्राट् हुमायूँ से सहायता माँगी थी। राजस्थान में, भेजने वाले की अवस्थानुसार, रेशम का डोरा अथवा मणि-मुक्ता लगा हुआ सुवर्णवलय राखी के रूप में भेजने की प्रथा है। राजपूत-ललनागण इस राखी द्वारा राखी पाने वाले को पवित्र भ्रातृत्व-सम्बन्ध में आबद्ध करके, भ्राता को कर्त्तव्य-कार्य के सम्पादन करने के लिये बुलाती हैं। यह 'राखी-बन्द भाई' राखी भेजने वाली को सहोदरा मानकर, आत्मप्राण विसर्ज्जन करके भी, प्रिय भगिनी के प्रिय कार्य को साधन करते हैं। हुमायूँ ने राजस्थान की सर्वप्रधान रमणी से राखी पाकर, उसके साथ अधिकतर पवित्र भ्रातृत्व-सम्बन्ध में आबद्ध होकर, आनन्द से लिख दिया,—"प्रिय भगिनी! आपने जो सहायता चाही है, सो निश्चय ही पाओगी; यह तो क्या, यदि नया

जीता हुआ रत्नभार दुर्ग भी चाहतीं तो वह भी मिल जाता।" परन्तु वह किस प्रकार सहायता करता? मुसल्मानों और हिन्दुओं से लड़ाई चल रही थी; वह मुसल्मान होकर किस प्रकार हिन्दू का पक्षावलम्बन करता? इस कारण जब तक चित्तौड़ का पतन नहीं हुआ, वह उसकी सहायता को नहीं गया। बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। राजपूतगण ने युद्ध करते-करते रणक्षेत्र में आत्मप्राण विसर्जन कर दिये और रमणीगण ने रानी कर्णवती को अग्रणी करके ज्वलन्त चिता में आत्मसमर्पण कर दिया।

जिस समय सम्राट् अकबर मालवा प्रदेशके विजय करनेमें प्रवृत्त थे, उस समय राणा संग्रामसिंह के पुत्र राणा उदय-सिंह ने वहाँ के अधिपति बाज़बहादुर की सहायता की और जौनपुर के विद्रोहियों को भी प्रकाश्यरूप से सहाय करने में कुण्ठित नहीं हुए; परन्तु सम्राट् ने उनके साथ मित्रता स्थापन करने की इच्छा से प्रस्ताव किया, किन्तु उन्होंने उससे इनकार कर दिया। इस समय चित्तौड़ में आत्मद्रोह का संवाद पाकर, सम्राट् उसको अधिकार में लाने को उत्साहित हुए।

बनास नदी के पूर्वी किनारे पर, ५०० फ़ीट ऊँचा एक वृहत् पर्वत-खण्ड है। उससे तीन मील दूर तक और पहाड़ नहीं है। चारों ओर समतल भूमि उसको घेरे हुए है। पर्वत के तीन ओर चढ़ने को कोई राह नहीं है। केवल दक्षिण की ओर से ही मनुष्य चढ़ने में समर्थ हो सकता है;

परन्तु उसको भी दुर्ग बनाने वालों ने कौशल से दुरारोह बना दिया है। इसी ओर एकमात्र दुरारोह पथ बना कर, सुदृढ़ और सुरक्षित आठ द्वारों में होकर जाने की राह निकाली है। वहाँ पर एक मनोहर उपत्यका है, और उसके ऊपर प्राचीर से परिवेष्टित सुप्रसिद्ध चित्तौड़ का दुर्ग है। उसके भीतर एक और छोटा दुर्ग है। वह दुर्ग बहुतसे महल, पक्के जलाशय और झरनों इत्यादि से भरा हुआ है। उसके पश्चिमी भाग में राजप्रासाद और बहुतसे देवमन्दिर हैं। इन सबके अतिरिक्त, महाराणा कुम्भका विजयस्तम्भ, जो प्राय १२० फ़ीट ऊँचा है, इन सब की शोभा बढ़ा रहा है।

जिस दिन मुग़ल-सेनाने चित्तौड़ के पर्वत के नीचे शिविर स्थापन किये, उसी दिन मानों समस्त राजस्थान पर काले-काले बादलोंने आकर अन्धकार कर दिया। शीघ्रही आँधी का चलना और पानी का बरसना आरम्भ होगया। मानों राजपूतानेकी राज-लक्ष्मी, स्वाधीनता से वञ्चित होने की भावना करके उन्मादिनी की तरह, बिखरे हुए बालों से वदनमण्डल को ढाँके हुए, अश्रुधारा वर्षण करने लगी। आज चित्तौड़ की रक्षा कौन करेगा? महाराणा उदयसिंह भीरु और कापुरुष हैं। वह प्राण बचा कर पहले ही अर्वली पर्वत पर भाग गये। जिन महाराणाओंने स्वदेश की स्वाधीनता-रक्षा के लिये आनन्द से आत्मप्राण उत्सर्ग कर दिये, जिन्होंने चित्तौड़ की मङ्गल-कामना के लिये, चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी की भूख मिटाने

के लिये, प्राणों से भी अधिक प्रिय पुत्रों का शोणित दान कर दिया, वह इस समय कवि की कल्पनामात्र में रह गये। उसी वंश में, इस समय एक नराधम ने जन्मग्रहण किया है। उसी सिंहासन पर इस समय एक राजपूत-कुल-कलङ्क अधिष्ठित है, जो स्वाधीनता के लिये रक्तपात करने को स्वीकृत नहीं हुआ, युद्ध करने को दण्डायमान नहीं हुआ। स्वदेश की विपद् के समय, उसने केवल आत्मप्राण और आत्मसुख का ध्यान किया। सम्मानज्ञान उसको आकृष्ट न कर सका। गौरव की आशा उसको मुग्ध करने में समर्थ न हो सकी। कर्त्तव्य-ज्ञान उसके हृदय में उदय नहीं हुआ। उसने केवल आराम, विश्राम और विलासिता को ही समझा। हाय! धात्रीकुल-रत्न पन्ना* ने क्यों ऐसे राजपूतकुलकलङ्क की रक्षा करने के लिये, उसको फलों और पत्तों में दबा कर, घातक की तीक्ष्ण-धारकी तलवारके आगे अपने प्यारे पुत्र को डाल दिया था? क्यों स्वयं खड़ी रह कर, अपने पुत्र को कुमार उदयसिंह बतला कर, आत्मज के जीवन के बदले में इस राजपूत-कुलाङ्गार की रक्षा की थी? धात्री ने उस समय कितनी आशायें की थीं! उसने आशा की थी, कि उसकी जैसी दुःखिनी की सन्तान की अपेक्षा,

* पन्नाने कैसे अपने इकलौते, आँखोंके तारे, प्राणाधिक प्रिय पुत्रकी बलि देकर महाराणा उदयसिंह के प्राण बचाये थे,—जिन्हें यह मर्मस्पर्शी वृत्तान्त जानना हो उन्हें हमारा **'पन्ना'** नाटक पढ़ना चाहिये। नाटक देखने ही योग्य है। दाम ।) डाक महसूल ≶)

उसको जैसी दासीके पुत्र की अपेक्षा, महाराणाके वंशधर द्वारा स्वदेश का बहुत कुछ मङ्गल-साधन होगा। वह सब आशायें आज विफल होगईं। उदयसिंह आज सब से पहले भाग गया! तो अब चित्तौड़ की रक्षा कौन करेगा? वीरभूमिमें वीरों का अभाव नहीं होता है। एक बार हाथ-पैरों की ज़ञ्जीर खोल दो, फिर देखो कि वह लोग सत्य ही कापुरुष हैं कि नहीं, सत्य ही वीर-अवतार नेपोलियन को अतिक्रम करने में समर्थ हैं कि नहीं?

सम्राट् ने चित्तौड़ के पर्वत की प्रदक्षिणा कर के, उसकी अवस्था से अवगत होकर, अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त करके, अवरोध का कार्य आरम्भ किया। सम्राट् ने स्वयं एक स्थान का कार्यभार अपने ऊपर लिया। राजा पत्रदास इत्यादि उनके सहकारी नियुक्त हुए; किन्तु सम्राट् सब कार्यप्रणाली का उद्भावन, परिचालन और पर्यवेक्षण स्वयं करने लगे। राजा भगवानदास, राजा टोडरमल, राजा पत्रदास इत्यादि हिन्दूगण बहुत सी हिन्दू-सेना लेकर चित्तौड़ के पतन में आँखें बन्द करके प्रवृत्त हुए।

बड़े-बड़े ढोल बनवाये गये। गोला लगने से नष्ट न होजायँ, इसलिये उनके भीतर मिट्टी भर दी गई; ऊपर भैंस के चमड़े मढ़े गये। उनकी आड़ में रह कर, क्रमसे उनको लुढ़काते हुए, सुरङ्ग खोदनेवाले सुरङ्ग खोद-खोद कर दुर्ग के समीप होने लगे। सुरङ्ग का ऊपरी भाग खुला हुआ और इतना विस्तृत

था, कि उसके भीतर दस अश्वारोही एक साथ जा सकते थे। इस सुरङ्ग खोदने के काममें पाँच हज़ार मनुष्य लगाये गये थे। ऐतिहासिक एल्फ़िन्सटन साहब ने लिखा है, कि नव्य युरोप में जिस प्रकार से आजकल खनन-कार्य होता है, वही प्रणाली अकबर ने भी अवलम्बन की थी। परन्तु क्या दुर्ग के भीतर की सेना नीरव और निस्पन्द थी? वह लोग, महावीर जयमल और पुत्ता के नेतृत्वाधीन रहकर, महापराक्रम से मुग़ल-सेना को नष्ट करने लगे। केवल सुरङ्ग खोदने वाले मनुष्यों में से ही प्रायः दो सौ मनुष्य प्रतिदिन मरने लगे। सुरङ्ग खोदनेवालों की मृतक-संख्या देखकर करुणहृदय सम्राट् ने बलपूर्व्वक किसी को भी इस काम में नियुक्त नहीं किया। वह अकातर होकर अर्थ वितरण करने लगे। उस अर्थलोभ से बहुत से मनुष्य जीवनपण करके इस विपद्सङ्कुल कामको करने लगे।

महात्मा अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"अविराम परिश्रम और अध्यवसाय से अवरोध का काम होने लगा। अविराम आक्रमण द्वारा दुर्ग की सेना को बाधा पहुँचाई जाने लगी। असीम साहस और आत्मोत्सर्ग के सङ्कल्प से जो समुदय शूरकार्य हो सकते हैं, मुग़ल-सेना वह सब सम्पन्न करने लगी; तथापि नरलोक के अधिवासियों के इस अनन्त आकाश को पार करके शीर्षस्थित स्वर्गारोहणकी चेष्टा की भाँति, उनके सारे यत्न और सारा परिश्रम व्यर्थ होने लगा। शत्रु के समीपवर्त्ती होकर वह साहसी सेना अकारण ही जीवन विसर्जन न करे, इसलिये

सम्राट् बारम्बार आदेश निकालने लगे; तथापि मुग़ल-सेना अदम्य साहस से अधीर होकर, सम्राट् के आदेशों को उल्लङ्घन करके, भिन्न-भिन्न स्थानों पर आक्रमण करने लगी और दल के दल पञ्चत्व को प्राप्त होने लगे। उनलोगों की गोलियाँ और तीक्ष्ण शर दुर्ग की प्राचीर से लग-लग कर व्यर्थ होने लगे; दूसरी ओर दुर्ग से जो गोलियाँ और तीर आते थे, वह प्रति बार मनुष्य और घोड़ों को नष्ट करके कृतकार्यता लाभ करने लगे।"

तथापि सम्राट् निराश नहीं हुए, विपद्‌से धैर्यहीन नहीं हुए; वरं जहाँपर विपद् अधिक और कृतकार्यता की सम्भावना कम देखते थे, उसी ठौर पर अधिक सतर्कताके साथ, अधिक अध्यवसाय के साथ, अधिक परिश्रम के साथ, स्वयं कार्यपरिचालन में प्रवृत्त होजाते थे। पुरुषसिंह के यही लक्षण हैं। वह हम भारतवासियों की तरह, बहुत चिन्ता कर चुकने पर, बहुत चेष्टा करने पर, एक-एक पद आगे बढ़कर, एक क्षणभर पीछे, एक पलक मारते में, हज़ार पद पीछे नहीं हटे। सम्राट् अकबर सच्चे वीर थे, कापुरुष नहीं थे। वह सदैव मरने को प्रस्तुत रहते थे; कापुरुषों की तरह बचना नहीं चाहते थे। वह सैनिकगण के साथ विपद् का अंश वहन करके, विपद् के बीचमें खड़े रहकर, सैनिकों को उत्साहित करके, वीरत्व प्रदान करते थे। जिस स्थान पर भीत को साहस प्रदान करने की आवश्यकता होती, थके हुए को उत्साहित करने की आवश्यकता होती, विपद्‌ग्रस्तको धैर्यावलम्बन के उपदेश

की दरकार होती, उसी स्थान पर वह आ खड़े होते थे। एक बार दुर्ग के एक स्थान से अविराम गोला-गोली मुग़ल-सेनामें पड़कर असंख्य सेना को निहत करने लगी। सम्राट् यह संवाद पाते ही उस विपद् के मध्यमें पहुँच गये। वह उसके प्रतिकार की चिन्ता कर ही रहे थे, कि एक गोला उनके अति निकट आकर गिरा और उसने बीस सैनिकों को निहत किया। और एक समय, सम्राट् और एक सेनापति इकट्ठे खड़े हुए काम का पर्यवेक्षण कर रहे थे; अकस्मात् विपक्षियों की गोली से सेनापति आहत हुआ। एक दिन एक राजपूत सैनिक दुर्ग की दीवार पर खड़ा हुआ गोलियों से मुग़ल-सेना को नष्ट करने लगा। सम्राट् इससे अवगत होकर उसके पास पहुँचे और अव्यर्थ सन्धान से ऐसी गोली मारी, कि उसको प्राचीर के नीचे गिरा दिया। राजा टोडरमल, राजा पत्रदास, राजा भगवानदास इत्यादि हिन्दूगण असाधारण परिश्रम से कार्य सम्पादन करने लगे। राजा टोडरमल ने एक दफ़े अवकाश न मिलने के कारण, एक दिन और दो रात अनाहार ही युद्धकार्य परिचालन किया।

तीन सप्ताह के अविराम परिश्रम से सुरङ्ग तय्यार होगई। उसके दोनों ओर, दुर्ग-प्राचीर के नीचे, दो बड़े-बड़े खड्डोंके तैयार होने पर उनमें बारूद भरी गई। दोनों बारूदागारों को एक साथ ही विदीर्ण करनेके लिये, सम्राट् ने एक फलीते द्वारा आग लगा देने का आदेश दिया; परन्तु कर्मचारी ने सम्राट् के आशय को न समझ कर दो फलीते अलग-अलग लगाये। निर्दिष्ट समय पर

एक सुरङ्ग भीषण शब्द करके फटगई और उसके साथ ही दुर्ग की प्राचीर का कुछ भाग टूट गया। उसके टूटते ही अति साहसी राजपूत और मुग़ल-सेना ने उस राह से दुर्ग पर आक्रमण किया। अति साहसी जयमल और पुत्ता ७००० सेना सहित दुर्गरक्षा में प्रवृत्त हो गये। भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। राजपूतगण स्वदेशरक्षा के लिये अतुलनीय वीरत्व प्रदर्शन करने लगे। सोलह वर्ष का बालक पुत्ता साहस और पराक्रम में अति साहसी पुरुषोंको भी अतिक्रम करने लगा। राजपूत-ललनागण स्वदेश की विपद् के समय में, प्रियतम का कपड़ा पकड़ कर, रो-रो कर व्याकुल नहीं होतीं और न उनको अपने अञ्चलके नीचे छिपाकर निरापद करने के लिये तत्पर होती हैं। वह शौर्य-वीर्य से दृप्त और रण की अभ्यस्त होती हैं। वह स्वामी को उत्साहित और उद्दीप्त करके, उसके साथ रणक्षेत्र में विचरण करतीं और शत्रुका संहार करती हैं। वह पराजित और पलायित कापुरुष स्वामीको ग्रहण नहीं करतीं; यहाँ तक कि, उसे घरमें भी नहीं घुसने देतीं। इसीलिये राजस्थान राजलक्ष्मी का लीलाचल है। आज पुत्ता की स्त्री और माता हाथमें बर्छी और तलवार लिये भीम पराक्रम से युद्ध कर रही थीं—भीषण आक्रमणसे मुग़ल-सेना को खण्ड-खण्ड कर रही थीं। मुग़ल-सेना की क्या शक्ति थी, कि इस भग्न प्राचीर में होकर दुर्गके भीतर घुसती? उसकी क्या सामर्थ्य थी, जो एक पद भी

आगे बढ़ती ? वह लोग दलके दल आने लगे और राजपूत-पराक्रम के आगे अदृश्य होने लगे; तथापि अकबर द्वारा परिचालित सेना ने साहस नहीं छोड़ा, उत्साहविहीन नहीं हुई, आक्रमण करने से कुण्ठित नहीं हुई। वह लोग कभी एक पद पीछे हट जाते थे और कभी महासमुद्र की उत्तालतरङ्गों की तरह अधिक वेग और अधिक पराक्रमसे राजपूत-सेनाके ऊपर आक्रमण करते थे। वीररमणी पुत्ता की स्त्री युद्ध करते-करते पञ्चत्व को प्राप्त होगई। इसी समय प्रलय का सा शब्द करके, सारे प्रदेश को कम्पित करके, दूसरा बारूदागार भी विदीर्ण हुआ और उसके साथ ही बहुत सी मुग़ल और राजपूत-सेना का क्षय हो गया। यह भयङ्कर शब्द सौ मील तक कर्णगोचर हुआ; मानों उत्पीड़ित राजस्थानने समस्त सन्तानको जागरित करने के लिये भीषण आर्त्त नाद किया; परन्तु समुदय राजपूत-जाति उस भीषण शब्द से जागरित नहीं हुई। समस्त राजपूत-जाति एक मन, एक प्राण होकर चित्तौड़की सहायता के लिये नहीं दौड़ी; अर्थात् माता के क्रन्दन से भारत-सन्तान विचलित नहीं हुई।

आज १५६८ ई० का मार्च महीना है। गर्मी की रात आ गई है। धरणीने इस समय काले रङ्गका वस्त्र परिधान कर लिया है। चारों ओर नीरवता और निस्तब्धता छाई हुई है। केवल झींगर सङ्गीतालाप कर रहे हैं; जिनके कारण खद्योतकुल व्याकुल होकर प्रज्वलित हो रहे हैं और इधर-उधर, ऊपर-नीचे,

उठते-बैठते हैं। समस्त जीव-जन्तु निद्रा की उस समय गोदमें अचेत पड़े हुए हैं। केवल जगत् के श्रेष्ठ जीव आत्मद्रोह में अब भी निमग्न हैं। सम्राट् सेना लेकर शिविर से बाहर हुए। भीम पराक्रम से फिर दुर्ग पर आक्रमण किया। राजपूतगण फिर उनको बाधा देने में प्रवृत्त हुए। सम्राट् एक ऊँचे मञ्च पर बैठकर, शत्रुगणकी कार्यावली देखने और अपनी सेना का परिचालन करने लगे। उन्होंने देखा, कि विपक्षियों में एक व्यक्ति ज़िरह पहने हुए बड़े साहस से सैन्य-परिचालन कर रहा है। इसी समय अकबरने अपनी प्रिय बन्दूक़ 'संग्राम' को छोड़ दिया। बन्दूक़की भीषण शब्दसे समग्र दुर्गमें हाहा-कार मच गया। शीघ्रही समुदय राजपूत-सेना अदृश्य होगई। दुर्ग-प्राचीर अरक्षित भाव से छोड़ दी गई। युद्ध-कोला-हलमय महादुर्गमें भीषण नीरवता छा गई। मुग़ल-सेना इस आकस्मिक परिवर्त्तन से भयभीत हो गई। किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर दुर्ग के भीतर घुसने में भयभीत होने लगी। इसी समय समुदय दुर्ग को एक भीषण अग्नि ने जलाकर आलो-कित कर दिया। मुग़ल सेना अधिकतर विस्मयाविष्ट और अधिकतर शङ्कित हुई। सम्राट् ने विस्मय से प्रिय सुहृद् राजा भगवानदास से इसका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया,— "सावधान हो जाइये! राजपूतगण ने इस समय जहरव्रत किया है।"

जहरव्रत बड़ा भयङ्कर आत्मोत्सर्ग व्रत है। यह केवल

हिन्दुओंमें ही सम्भव हैं। पृथ्वीके बहुत से ग्रंथों के बहुत से वीरोंकी वीरगाथायें पढ़ीं हैं; परन्तु ऐसे भीषण, लोमहर्षण व्रत का ज़िक्र और कहीं भी नहीं पढ़ा। बोध होता है, कि भारत-वर्ष के अतिरिक्त और कहीं, कवि की कल्पना में भी, ऐसे भय-ङ्कर व्रत की सृष्टि सम्भव नहीं है। जो जाति साहस में अतुलनीय है, सम्मानज्ञान में उद्दीपित है, स्वाधीनता-रक्षा में दृढ़संकल्प है, केवल उसी जाति में इस भीषण व्रत का होना सम्भव है। जिस समय अकबर की बन्दूक़से राजपूत-कुलरवि जयमल निहत हुआ, उस समय राजपूतोंने समझ लिया कि अब हमारे जीतने की आशा नहीं है—अब स्वाधीनता-रक्षाका और उपाय नहीं है। यह समझकर उन्होंने निश्चय किया, कि पराजित जीवन से क्या लाभ है? स्वाधीनता-विहीन जीवन वहन करने में क्या सुख है? उस समय उन्होंने आत्मोत्सर्गके लिये, महाव्रतका भीषण उद्यापन किया। भीषण अग्निकुण्डों की एक श्रेणी प्रज्वलित की गई। अग्निकी लोलजिह्वा गगन-स्पर्श करने लगी और उसीमें राजपूत-बालाओं के दल के दल कूद-कूदकर गिरने लगी। आत्मविसर्जन के लिये कोई भी पराङ्मुख न हुई—अपने पास खड़ी हुईकी ओर दृक्पात तक न किया—किसीकी मायासे एक क्षण-भरके लिये भी अपेक्षा न की। इधर स्नेहबन्धनविमुक्त, आशाभयविरहित राजपूतगण जीवनकी ममता त्यागकर पीले वस्त्र परिधान किये, ताम्बूलसे अधर रक्तवर्ण किये, शत्रु का संहार करके प्राणोंकी ज्वाला

मिटानेके लिये उद्यत होगये और इस चेष्टामें आत्मप्राण विसर्जन करनेके लिये दृढ़संकल्प होगये। धन्य साहस! धन्य आत्मोत्सर्ग व्रत! हाय! क्या यह वही देश है?

मुग़ल-सेना महाविपद् आई हुई समझकर सतर्क, सुसज्जित और जागरित होगई। दुर्ग-प्राचीर शतधा विदीर्ण होगई है। प्राणी का वहाँ शब्द भी सुनाई नहीं देता। शब्द तक सुनाई नहीं देता, परन्तु फिर भी अति साहसी मुग़ल-सेना आगे बढ़ने का साहस नहीं करती—विपुल-मुग़ल-वाहिनी दुर्गाधिकार के लिये आगे नहीं बढ़ती! क्रमसे उस रजनी का अन्त हुआ। नया दिन नया दृश्य लेकर चित्तौड़में पहुँचा। फिर रात हुई, परन्तु दुर्गकी नीरवता दूर न हुई। एक सैनिक भी दृष्टिगोचर न हुआ। उसी रात के अन्तिम पहर में, सम्राट् ने सैनिकोंको आगे बढ़नेका आदेश दिया। स्वयं एक हाथी पर सवार होकर, अपनी सेना के महाविपद् के अंश को वहन करने के लिये आगे बढ़े। प्राण पुलकित नहीं हैं, हृदय शंका-विहीन नहीं है; तथापि मुग़ल-सेना अति सावधानतासे बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी। क्रमसे दुर्गमें पहुँच गई, भीतर को बढ़ने लगी; तथापि कोई नहीं आया, किसीने बाधा नहीं दी, किसीके साथ साक्षात् नहीं हुआ। क्रमसे उनलोगों ने नगरमें प्रवेश किया। ज्योंही मुग़ल-सेना नगर में घुसी, त्योंही राजपूतोंने टीड़ियों की तरह निकल कर चारों ओर से मुग़ल-सेना पर भीम पराक्रमसे आक्रमण किया और

भीषण हत्याकाण्ड आरम्भ कर दिया। साहस से उत्साहित, आशाभयविरहित, महापराक्रमशाली राजपूत-सेनाने उन्माद-वेगसे मुग़ल-सेना पर आक्रमण किया, और दलके दल विपक्षियोंके ध्वंस करने लगी। उन लोगों ने कोई श्रेणी ग्रथित नहीं की, न एकता से आक्रमण किया, न किसी की सहायता ही चाही; और किसी प्रकार भीत, पराजित अथवा पश्चात्पद भी न हुए। केवल मार-मार करके, शेषमें थक कर बहुसंख्यक विपक्षियों के हाथों से प्राण दिये। राणा के राज-प्रासाद के सम्मुख, महादेव के मन्दिर के समीप और रामपुरा नामक दुर्गद्वार पर, भयङ्कर हत्याकाण्ड का अनुष्ठान हुआ। मृत और मुमूर्षु लोगों से राजपथ बन्द हो गये। देखने से प्रतीत होता था, कि यह लोग रक्त वस्त्र ओढ़े पड़े हैं। मुग़ल-पक्ष के बहुत से युद्धकुशल हाथी क़िलेमें पहुँच गये थे। एक महापराक्रमी राजपूतने भीमबलसे एक हाथी की सूँड़ तीक्ष्ण धारकी छुरीसे विद्ध कर दी और वीर-दर्पसे बोला—"हम इस प्रकार सम्राट् का सम्मान करते हैं।" एक स्थान पर महा-साहसी पुत्ता महाविक्रमसे मुग़ल-सेनाको नष्ट कर रहा था। विपक्षी ने उसको नष्ट करने में समर्थ न होकर, उसके ऊपर एक हाथी को बढ़ा दिया। पुत्ता क्या भागने वाला था? क्या वह पीछे हटता? पुत्ता मत्तमातङ्ग को पराभूत करने के लिये उसके ऊपर झपटा। हाथी ने उसको सूँड़से पकड़ कर, पैरके नीचे लाकर कुचल डाला। सम्राट् जिस समय

गोविन्दश्याम के मन्दिर के पास पहुँचे, उस समय उस हाथी ने उस बालक को अपनी सूँड़ में पकड़ कर ऊपर को उठाया। उस समय ऐसा मालूम हुआ, मानों महापराक्रम का पक्षपाती हाथी मूर्त्तिमान् पराक्रम को सम्राट् को दिखला रहा हो। ऐसे पराक्रम के सामने मुग़ल-सेना की क्या सामर्थ्य थी जो खड़ी रहती? उसके दलके दल प्राण त्यागने लगे। जैसे ही वह धूल के कणों की भाँति अदृश्य होने लगी, वैसेही उनके स्थान में नई सेना उपस्थित होने लगी। सम्राट् स्वयं उसका परिचालन करने लगे। और कोई हिन्दूनरपति चित्तौड़ की सहायता के लिये एक पद भी आगे न बढ़ा। उनको ज्ञात नहीं था, कि उनके भी दुर्दिन निकट आरहे हैं। क्रमसे रातपूतों का पराक्रम-रवि अस्त होगया और चित्तौड़ श्मशान में परिणत होगया। रजनी के शेष प्रहर से दूसरे दिन सन्ध्या पर्यन्त यह भीषण युद्ध चलता रहा। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"इस संग्राम में ८ हज़ार राजपूत-सेना और ३० हज़ार नागरिक लिप्त हुए थे, जिनमें से अधिकांश पञ्चत्व को प्राप्त होगये। सम्राट् के पक्ष की कितनी सेना मारी गई, इसकी कोई स्थिरता नहीं है।" हिन्दुओंने स्वदेश के लिये इस प्रकार अलौकिक वीरत्व प्रकाशित किया था! अब क्या फिर उसके दर्शन होंगे? वीरत्व की लीलाभूमि चितौड़ आज श्मशान है, यही पुण्यतीर्थ आज परित्यक्त है! आज वह कण्टक-वनसे समाच्छन्न होकर भारतके वन-कण्टकके बीच अनादृत

अवस्थामें पड़ी हुई है! उसका कौन सम्मान करे! कौन इस तीर्थका माहात्म्य उपलब्ध करे?

सम्राट् उसी दिन शिविर को लौट आये। वह मेवाड़ के शासन-संरक्षण को यथोचित व्यवस्था करके, अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्तीकी समाधि की ओर को चले। साथमें कुछ अनुचर थे, शरीर में सामान्य परिच्छद और हाथ में छड़ी थी। सम्राट् कन्धे से जलपात्र लटकाये, फ़कीर के वेश में नग्नपद जा रहे थे। राह में दरिद्रोंको धन दान करते, पीड़ितोंकी सेवा करते, शोकार्त्तों को प्रबोध देते हुए जारहे थे। सम्राट्ने आज पवित्र आश्रम को जानेके लिये, पवित्र फ़कीर का वेश धारण किया था। उनको दृढ़ विश्वास था, कि सत्पुरुषों के आशीर्वाद सेही वह ऐसे दुरूह कार्य के सम्पादन करने में समर्थ हुए हैं।

दूसरे वर्ष सन् १५६८ ई०में,अम्बर-राजबाला जोधाबाईने एक पुत्र प्रसव किया। सम्राट्के इस ज्येष्ठ पुत्रका नाम सलीम था। पुत्रलाभ से पिता-माताके आनन्द की सीमा न रही। इसके उपलक्ष में दिल्ली और आगरे में बहुत महोत्सव हुए।

सम्राट् इस वर्ष जयपुर प्रदेशमें सुप्रसिद्ध रणथम्भोर दुर्ग का आक्रमण करने को चले। वह दुर्ग भी एक दुरारोह पर्वतके शीर्षदेश में बना था। दुर्ग का अधिपति राय सूर्यहर मुग़लों के आक्रमण का उपहास करने लगा। उस दुर्ग के पास ही एक उच्च दुरारोह पर्वत और था। दुर्ग का अधिपति

उस पर्वत के गुरुत्व को समझने में समर्थ नहीं हुआ, वहाँ अपनी सेना भी नहीं रक्खी। सम्राट् ने बहुत परिश्रम से इस पर्वत के ऊपर बड़ी-बड़ी तोपें चढ़ा दीं और उनके गोले रत्नभार दुर्ग में पहुँचाने लगे। जब यह अवस्था हुई, तब दुर्ग-स्वामी की समझ में परिणाम आया। उसने अपने दोनों पुत्रों को सम्राट् के पास भेज कर सन्धि करनी चाही। सम्राट् ने दोनों कुमारों को बड़े स्नेह से ग्रहण किया और सम्मान-सूचक दो सिरोपाव उनको दिये। सम्राट् का एक कर्मचारी दोनों कुमारों को सिरोपाव से सुसज्जित करने के लिये एक दूसरे शिविर में ले गया। कुमारों के एक भृत्य ने समझा, कि कुमारों के साथ कोई अन्याय-कार्य होगा, इसीलिये वह स्थानान्तरित किये गये हैं। यह ध्यान आते ही, भृत्य ने तलवार हाथ में लेकर सम्राट् के शिविर में प्रवेश किया और बहुत से व्यक्तियों को निहत किया। शेष में, वह भी मारा गया। सम्राट् ने समझ लिया, कि भृत्यके इस दुष्कार्य्य के लिये कुमार अपराधी नहीं हो सकते; अतः उनसे कुछ न कह कर, उन्हें नववेश से सुसज्जित करके, उनको उनके पिताके पास वापिस भेज दिया। पिता का हृदय यह व्यवहार देख कर पानी-पानी होगया। वह स्वयं सम्राट् को देखने के लिये व्याकुल हो उठा। सम्राट् ने यह संवाद पाकर, एक प्रधान अमात्यको दुर्ग में भेज कर, राजाके प्रति बड़ा सौहार्द और सम्मान प्रदर्शन करके, उसको अपने पास बुलवा

लिया। शिविर में पहुँचने पर, सम्राट् ने उसको बड़े आदर-सत्कार से ग्रहण किया। राय सूर्यहर सम्राट् के सद्व्यवहार के आगे पराजित हुआ। दो हज़ारी सेनापति का पद और चुनार दुर्ग का शासनभार उसको दिया गया। उसके दोनों पुत्र पदोचित राजकार्य में नियुक्त हुए। सम्राट् ने इस प्रकार एक शत्रु को मित्र में परिणत कर लिया। राय सूर्यहर ने विशेष दक्षता और साहस के साथ सम्राट् के अनेक कार्य सम्पादन किये हैं।

यह काम समाप्त करके, सम्राट् ने बुन्देलखण्ड के कालिञ्जर दुर्ग का अवरोध किया। एक दिन के अवरोध में ही, दुर्गेश राजा रामचन्द्र बघेला ने अपने दोनों पुत्र सम्राट् के शिविर में भेज दिये। इतने ही समय में, सम्राट् अपने चरित्र-गौरव से सभी का विश्वास उत्पादन करने में समर्थ हो गये थे; नहीं तो कोई भी राजा अपने प्राणों की अपेक्षा प्रिय पुत्रों को विपक्षी के शिविर में भेजने का साहसी नहीं हो सकता था। सम्राट् ने बड़े स्नेह से दोनों पुत्रों को लिया, और एक प्रधान अमात्यको भेजकर, राजा के प्रति सम्मान प्रदर्शन करके उसको अपने शिविर में बुला लिया। सम्राट् ने उसको बड़े आदर से ग्रहण करके, दो हज़ारी सेनापति का पद प्रदान किया। इस राजा ने भी पीछे से महावीरत्व प्रदर्शन करके, मुग़ल-साम्राज्य स्थापन करने में सहायता दी।

चित्तौड़ का पतन हो चुका। अब सम्राट् की प्रतिकूलता

करने में कौन साहसी हो सकता था ? जोधपुर और बीकानेर के राजाओंने सम्राट् की वश्यता स्वीकार कर ली। बीकानेर के राजा रायसिंह को चार हज़ारी सेनापति का पद प्राप्त हुआ। राजा रायसिंह ने पीछे गुजरात, पञ्जाब, बङ्गाल, बलूचिस्तान, सिन्ध और मेवाड़ में अति साहस और वीरत्व से सम्राट् का कार्य सम्पादन किया।

सन् १५७० ई० में, सम्राट् के मुराद नामक एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। जैसे-जैसे सम्राट् का राज्य दिन पर दिन वृद्धि पाता गया, पुत्र-कन्या भी उसी प्रकार जन्मग्रहण करते गये, सुख-सौभाग्य भी वृद्धि पाता गया।

राजस्थान में मुग़ल-वैजयन्ती उड़ने लगी और समस्त राजस्थान ने सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर ली। राजस्थान में बहु-शक्तिशाली हिन्दू राजाओंके होने पर भी, सब ने एकत्र होकर प्रबल युक्तराज्य स्थापन करनेका प्रयास नहीं किया; साधारण विपद् के समय में, सब ने मिलकर हिन्दूगौरव की रक्षा करने का कुछ भी उपाय नहीं किया; वरं एक राजपूत राजा मुसल्मानों से मिलकर अन्य राजपूत राजाओं के सर्व-नाश की चेष्टा करता था; इसी कारण एक-एक करके सब ही का पतन हो गया। हिन्दुओं के दोष से ही, हिन्दू-गौरव-रवि सदैव के लिये अस्त हो गया।

परन्तु सम्राट्ने हिन्दुओंको सम्मिलित करके, उनको सौहार्द में आबद्ध करने के लिये, विविध प्रकार से प्रयास किया।

सुप्रसिद्ध टाड साहब ने लिखा है;—"अकबर की उच्च आशा से राजपूतों के शरीर को जो चति पहुँची थी, शेष में वह उसको आरोग्य करने में समर्थ हुआ एवं लाखों मनुष्यों से उसने ऐसी प्रशंसा पाई, जैसी उसकी जाति के दूसरे व्यक्तिने कभी नहीं पाई। उसने अपनी गुणावली की सहायता से राजपूतों को वश्यता में आनयन किया। राजपूतों की लोहे की ज़ञ्जीर को उसने सोने की बना दिया।"

ह्वीलर साहब ने लिखा है,—"राजस्थान के अन्यान्य राजाओं पर चित्तौड़ के महाराणा का जो प्राधान्य था, अकबर ने केवल उसी को आत्मसात् किया। उसने उनके राज्यों में हस्तक्षेप नहीं किया। सम्राट् ने उन सब को और उनकी सेनाओंको अपने कार्यसम्पादन में नियुक्त करके, उनको अमीरों के पद और वेतन प्रदान किये।"

सम्राट् जानते थे, कि चित्तौड़-दुर्गाधिकार उनकी एक अति उज्ज्वल कीर्त्ति है। इसी एक काम के कारण उनका नाम वीराग्रगण्य मनुष्यों में लिखा जावेगा; तथापि उन्होंने चित्तौड़ के महाराणा कुम्भ के सुप्रसिद्ध जयस्तम्भ के पास अपना कीर्त्तिस्तम्भ स्थापन नहीं किया; अथवा आत्मगरिमा प्रकाश करने के लिये, दिल्ली या आगरे में कोई विजयस्तम्भ निर्माण नहीं किया। चित्तौड़ के पर्वत के पास, सम्राट् के सेनावास के मध्य में, जो शुभ्र प्रस्तरनिर्मित और अलङ्कृत २५ फ़ीट ऊँचा एक आलोकस्तम्भ, रातको मस्तक पर वृहत् दीपक लेकर,

मुग़ल-सेना का पथप्रदर्शन करता था, केवल वही दण्डायमान रहा। उसके ऊपर जो वृहत् दीपक था, वह अब नहीं है। किसान लोग उस वनसमाच्छन्न स्तम्भ को 'अकबर का दिया' कह कर अब भी पुकारते हैं।

इसके विपरीत हिन्दुओं के चित्त आकर्षण करने को, महावीर जयमल और पुत्ता के स्मृति-चिह्न स्थापन करके के लिये सम्राट् व्यग्र होगये। वह प्रबल शत्रु के प्रति प्रभूत सम्मान प्रदर्शन करने के लिये अग्रसर हुए। उन्होंने महानगरी आगरा राजधानी के दुर्ग में, सिंहद्वार पर, प्रस्तर-निर्मित दो वृहत् हाथियों के ऊपर महावीर जयमल और पुत्ता की वीरत्वव्यञ्जक मनोहर मूर्त्तियाँ महासमारोह से स्थापन कीं। कहीं किसी देश में, किसी राजा ने शत्रु के प्रति ऐसा सम्मान प्रदर्शन किया है?

इसके पीछे, ये दिल्लीके दुर्ग-द्वार पर स्थापित हुईं। फ़रासीसी बर्नियर साहब ने सत्रहवीं शताब्दी के मध्यभाग में उनके दर्शन करके लिखा है,—"ये दो वृहत् हाथी और उनके ऊपर दो महावीरों की मूर्त्तियाँ ऐसी सुन्दर हैं और मेरे चित्त में उन्होंने ऐसी भक्ति और विस्मय उत्पन्न किया है, कि जिसका वर्णन मैं कर नहीं सकता हूँ।" अठारहवीं शताब्दी के शेष भाग में, महाराष्ट्रगण ने दिल्ली पर अधिकार करके, इन दो हाथियों पर अपना क्रोध और बर्ब्बरता प्रदर्शन की। उस समय सब को विश्वास था, कि उन लोगोंने उनको खण्ड-खण्ड

करके यमुना में फेंक दिया है; परन्तु सन् १८५७-५८ में, प्रसिद्ध सिपाही-युद्ध के पीछे, अँगरेज़ों ने जब दिल्ली पर फिर अधिकार किया, उस समय एक हाथी १५ फ़ीट नीचे भूमि से खोद कर निकाला गया। वह इस समय भी, दिल्ली के सर्व-साधारण विहार-उद्यान में, महावत को पीठ पर लिये हुए विराजमान है। हाथी काले पत्थर का और महावत लौहित-वर्ण पत्थर का है। हाथी की आकृति और वर्ण देख कर वह सजीव ज्ञात होता है। मैंने देखा, कि हाथी की वेदिकाके ऊपर अँगरेज़ी भाषा में लिखा है, कि सम्राट् शाहजहाँ इसको ग्वालियर से लाया था। यह एक बड़े भ्रम की बात है। परन्तु वह जयमल और पुत्ता की मूर्त्तियाँ कहाँ हैं? इस हतभाग्य देश में उनका क्या काम! इसी से वह अदृश्य होगईं।

जयमल और पुत्ताने स्वकार्य-साधन में असमर्थ होने पर भी, अपनी जन्मभूमि के लिये प्राण दिये, स्वदेश-सेवा के लिये सब कुछ देदिया। इसी कारण समग्र राजस्थान में उनका नाम घर-घर गौरव के साथ उच्चारण किया जाता है, और समग्र भारत में, विभिन्न भाषाओं में, सम्मान के साथ कीर्त्तित होता है। इससे बढ़कर, क्षणभङ्गुर मनुष्य के लिये, सौभाग्य का विषय और क्या हो सकता है?

दसवाँ अध्याय।

गुजरात और मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका।

Commending obedience to the dictates of reason and reproving a slavish following of others need the aid of no arguments. If imitation were commendable, the prophets would have followed their predecessors.
—Akbar.

सौभाग्यवान् दुरवस्था में पतित होकर जिस प्रकार अन्य नाम ग्रहण करके, प्रच्छन्नभाव से, कालातिपात करता है; सौराष्ट्र प्रदेश भी उसी प्रकार अतुल सुख-सम्पदा को समय-समुद्र में विसर्जन करके, गुजरात नाम ग्रहण करके, दीन-हीन भाव से अवस्थान कर रहा है। यहाँ पर एकदिन यादव और यदुवंशियों का लीलाक्षेत्र था। यहीं पर एकदिन वल्लभीवंश गौरव से प्रताप विस्तार कर रहा था। चीन-परिव्राजक हुये-

नसंग, सातवीं शताब्दी में, इस देश की शक्ति, ऐश्वर्य्य और उन्नति के दर्शन कर के मुग्ध हो गया था। मुहम्मद ग़ोरी ने ११९३ ई० में, दिल्ली पर अधिकार करके, भारत में मुसल्मान-साम्राज्य विस्तार करने का दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था ; फिर भी प्रायः १५० वर्ष पर्यन्त हिन्दुओं की शक्ति और गौरव संरक्षित रहा। परन्तु जब मुसल्मानों ने उसके पास ही की सब रियासतों को धीरे-धीरे ग्रास करना आरम्भ कर दिया, उस समय गुजरात का हिन्दू राजा, पार्श्ववर्त्ती राजाओं से न मिलकर,मालवा से संग्राम करने लगा। जब गुजरात इस प्रकार शक्तिशून्य होगया, तो मुसल्मानों ने उस पर अधिकार कर लिया (१२९७ ई०)। इस समय से इसकी दुःख-दुर्दशा आरम्भ हुई। एकबार हुमायूँ ने इसके पठान-अधिपतिको परा-जय करके यह देश अधिकार में कर लिया था। इसके पीछे वह फिर पठान राजाओं के हाथ पड़कर आत्मकलह में प्रवृत्त हो गया। वर्णित समय में, अराजकता का स्रोत वहाँ बड़े वेग से बह रहा था। फ़रिश्ता ने लिखा है,—"इस समय इस देश का राजा मुज़फ़्फ़र तृतीय नाममात्र की राज-क्षमता का अधिकारी था। उसके कर्मचारी अत्यन्त अत्याचारी थे। अविराम आत्मद्रोह और युद्ध से गुजरातवासीगण उत्पीड़ित हो रहे थे। इसी कारण वह लोग अकबर की ओर देख रहे थे और सोच रहे थे, कि वही उनका बहुविधि के छोटे-छोटे उत्पीड़कों के हाथ से उद्धार करेगा। यह अत्याचारी लोग

शकुनी की तरह स्वदेश का उदर भक्षण कर रहे थे।" अली मुहम्मद ने गुजरात की उस समय की अवस्था वर्णन करने के छल से भारतवासियों का चित्र इस प्रकार अङ्कित किया है,—
"विज्ञ और बहुदर्शीगण अवगत हैं, कि पृथ्वी के आरम्भ-काल से जो साम्राज्य चले आते हैं, उनके अभिजातगण जब-जब आत्मकलह में प्रवृत होते हैं और विद्रोही जनसाधारण ज्योंही उनलोगों की सहायता करते हैं, त्योंही साम्राज्य का पतन हो जाता है। परन्तु परमेश्वर को धन्यवाद देना चाहिये, कि प्रजा इस प्रकार गर्हित कार्य करके कभी लाभवान् न हो सकी, वरन् और भी अधिक क्षतिग्रस्त हुई; उसके आत्मद्रोह को निवारण करने के लिये कोई प्रबल व्यक्ति आया और उसने आधिपत्य कर लिया। इसी प्रकार गुजरात के राजा और अभिजात वंश का शेष हो गया। विधाता की यही इच्छा थी, कि इस साम्राज्य का पतन होवे; इसीसे राज्य के प्रधान पुरुषगण पवित्र कर्त्तव्य-कर्मको भूलकर आत्मद्रोहमें प्रवृत्त हुए, बन्धुता का बहाना करके घोर शत्रुता साधन करने में लिप्त हो गये। उनलोगों के दुष्कार्य का आज यह परिणाम हुआ—वह लोग न जाने कहाँ गये और तैमूरवंश के सुप्रसिद्ध वंशधर अकबर को इस सुविस्तृत सुन्दर देश का आधिपत्य मिला।"

राजा मुज़फ्फ़र तृतीय के सर्वप्रधान अमात्य के पद पर एत्मादखाँ नियुक्त था। वह पहले हिन्दू था; पीछे उसने मुसल्मान-

धर्म ग्रहण किया था। वह उस समय राजक्षमता का परिचालन कर रहा था। जब वह किसी भाँति आत्मद्रोह और अराजकता को निवारण न कर सका, तो अन्तमें उसने उस प्रदेश पर अधिकार करने के लिये सम्राट् अकबर को बुलाया। सम्राट् पिता के अधिकृत प्रदेश को फिर स्वराज्यभुक्त करनेके लिय उत्साहित होगये। गुजरात का अभियान उनकी एक और उज्ज्वल कीर्त्ति इतिहास में छोड़ गया है। सन् १५७२ ई० के सितम्बर मासमें, सम्राट् फ़तेहपुर-सीकरी से सेना सहित यात्रा करके, अजमेरमें मुईनुद्दीन चिश्ती के समाधि-मन्दिरमें पहुँचे। वहाँ प्रार्थना करके और आगे बढ़े। आगरे से गुजरात जाने के पथ पर शत्रु अपनी सेना इकट्ठी न कर सके, और राजधानी से आक्रान्त प्रदेश में अनायासही सेना और युद्ध की सामग्री भेजी जासके इसलिये सम्राट् ने राह में रायराम और रायसिंह के अधीन सहस्र अश्वारोही सेना संस्थापन की और आप आगे बढ़ने लगे। कुछ ही दूर आगे बढ़कर सुख-संवाद मिला, कि उनके एक और पुत्र भूमिष्ठ हुआ है। यह कुमार दानियाल के नामसे प्रसिद्ध हुआ। सम्राट्ने गुजरात में प्रवेश करके सम्वाद पाया, कि वहाँ का राजा भाग गया है, सम्राट् ने उसी समय उसके सन्धान के लिये चारों ओर मनुष्य भेजे। उनलोगों को एक अनाज के खेत के पास राजकीय छत्र और एक चन्द्रहार मिला। उसी खेत में अनुसन्धान करने पर गुजरात-राज भी मिलगये सम्राट् ने उनको महासम्मान से ग्रहण किया। राजा ने

अपना राज्य सम्राट् के हाथ में समर्पण कर दिया। सम्राट् ने उनको भरण-पोषण के लिये विपुल धन प्रदान करके दरबार के सदस्य पद-पर नियुक्त किया। इसके बाद वह आगरे आये।

सम्राट् जिस समय गुजरात के अधीश्वर हुए, उस समय एत्मादखाँ उनसे साक्षात् करने के लिये आया। सम्राट् ने उसके प्रति सम्मान प्रदर्शन करने के लिये कुछ प्रधान अमात्यों को आगे भेज दिया। वहलोग राह में एत्मादखाँ को सादर ग्रहण करके सम्राट् के शिविर के पास ले आये। सम्राट्ने तत्-क्षणात् पटमण्डपसे निकलकर अभ्यागतका हाथो पर ही अभि-वादन किया। वहाँके बहुतसे सम्भ्रान्त पुरुष सम्राट् के समीप आकर वश्यता स्वीकार करने लगे। सम्राट् भी सबसे अमायिक व्यवहार करके उनको सौहार्द्द में आबद्ध करने लगे। उनका उद्देश्य गठन करना था, भङ्ग करना नहीं; सम्प्रीति स्थापन करना था; वैर उत्पादन करना नहीं। इसीसे प्रबल सम्राट् होने पर भी वह सबके साथ सद्व्यवहार करनेमें कुण्ठित नहीं होते थे; इसीसे अहंकार भी उनके पास नहीं आता था। वह सबही को हास्यविस्फारित मुख से ग्रहण करके, सहृदय भाव से बात-चीत करके मुग्ध करते थे; मानो वह मनुष्यवशी-करण मन्त्रके दीक्षित थे।

वहाँ से चलकर सम्राट गुजरात की राजधानी अहमदा-बाद में आये। उनके यशःसौरभ से समस्त भारत परिव्याप्त होगया था। दलके दल मनुष्य उनके दर्शनों की लालसा से

आते थे। उन्होंने सम्राट् के मुख से यह सुन कर "कि मैंने तुमको अराजकता और अत्याचार के हाथ से उद्धार किया है,—"बहुत आनन्द प्रकाश किया। यहाँ वह पाश्चात्य भारत के सम्राट् कहला कर विघोषित हुए।

सम्राट्ने अभीतक समुद्र का दर्शन नहीं किया था। उसके देखने के लिये उत्सुक होकर वह खम्बात नगरी में पहुँचे। इस समय उसका सौन्दर्य और ऐश्वर्य तिरोहित होगया है; वर्णित समय में, वह अत्यन्त समृद्धिशाली थी और भारत के प्रधान वाणिज्य की ठौर थी। बहुत से वणिक फ़ारस, दमिश्क और एशिया-माइनर इत्यादि दूरदेशों से समुद्रपथ होकर वहाँ आते थे। सम्राट् एक नौका पर आरोहण करके, समुद्र में कुछ दूरतक जाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने वहाँ यूरोपके जहाज़ देखकर, अपने यहाँ भी वैसेही जहाज़ बनवाने का सङ्कल्प किया।

उस समय भी गुजरात में शान्ति स्थापित नहीं हुई थी। पठान-वंशीय मिर्ज़ालोग अनेक अंशों में अपने प्रभुत्व द्वारा शत्रुताचरण कर रहे थे। सम्राट् राजा भगवानदास और मानसिंह के साथ दो सहस्र सेन लेकर उधर को बढ़े। वह इतनी शीघ्रता से बढ़ रहे थे, कि सेना उनके साथ चलने में समर्थ न हो सकी। वह कुछ सहचरों के साथ जब महेन्द्री नदी के किनारे पहुँचे, तो एक ब्राह्मण से उनको संवाद मिला, कि मिर्ज़ा लोग बहुत सी सेना लिये हुए नदी के उस पार

एक नगर में ठहरे हुए हैं। उस समय सम्राट् के पास केवल ४० अश्वारोही थे। शेष सेना के लिये अधीर होकर वह प्रतीक्षा करने लगे। रातको ४० सैनिक और आगये। उनको ही लेकर सम्राट् आगे बढ़ने लगे। राजा मानसिंह ने युद्ध के समय सेना के अग्रभाग में अपने चलनेके लिये प्रार्थना की। सम्राट् ने कहा,—"आज हमारे पास इतनी सेना नहीं है, कि उसके विभाग किये जायँ। आज हम सबको एकत्रित रहकर प्राणपण से युद्ध करना होगा।" मानसिंह ने उत्तर दिया— "सम्राट् के प्रति अनुराग प्रदर्शन करने के लिये, यदि दो एक पद भी आगे बढ़ने की आज्ञा मिल जावे तो बड़ा अनुग्रह हो।" सम्राट् ने हँसकर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। सम्राट् सेना सहित निरापद उस पार होगये और नगर में होकर उस पार पहुँच गये। सम्मुखवर्त्ती प्रान्त पर शत्रु-सेना युद्ध के लिये खड़ी थी। सम्राट् के पास केवल १०० मनुष्य थे, किसी-किसी ने १५६ लिखे हैं। विपक्षियों की सेना एक सहस्र थी। तो क्या आज सम्राट् पश्चात्पद होंगे? क्या कापुरुषता प्रदर्शन करेंगे? वह शत्रु की संख्या देखकर विचलित नहीं हुए। कर्त्तव्य निर्धारण करने में विलम्ब नहीं किया। उन्होंने घोड़े को एड़ लगाकर उद्दीप्त किया और क्षण-भर में ही शत्रुओं के मध्यमें जा पड़े और तलवार द्वारा उनको नष्ट करने लगे। उनका साहस देखकर शत्रुगण विस्मित और भयभीत हो गये। क्षुद्र मुग़ल-सेना ने सम्राट् को देखा

देखो भीम पराक्रम से विपक्षी सेना पर आक्रमण किया। सबही अमानुषिक वीरत्व प्रकाशित करने लगे। सभी प्राणपण से युद्ध करने लगे; परन्तु विपक्षी न तो किसी प्रकार हटे, न पराजित हुए, न पश्चात्पद हुए। उन लोगोंने सम्राट् की सेना की संख्या देखकर साहसका अवलम्बन किया। एकदम से सम्राट-सेना पर, संख्या देखकर, आक्रमण कर दिया। वर्षाके जलस्रोत में सूखे हुए पत्ते की भाँति मुग़ल-सेना बहने लगी। सम्राट् ने पासही एक अप्रशस्त पथ अवलोकन किया। उसके दोनों किनारों पर निविड़ कण्टक-वन था। सम्राट् उसका गुरुत्व समझ कर, उस पथ को अधिकार में करके खड़े होगये। उनकी एक ओर राजा भगवानदास और दूसरी ओर राजा मानसिंह खड़े हुए। तीनों ही घोड़ों पर सवार थे। उस पथ पर होकर, तीन से अधिक सैनिक एक साथ आगे नहीं निकल सकते थे; सुतरां विपक्षियों को सेना सहित उनके ऊपर आक्रमण करने का सुभीता नहीं था। शत्रुगणने उस पथ को रोक लिया और उनमें से अति साहसी, अति बलवान्, तीन व्यक्ति अश्वारोही सम्राट् को मार डालने के लिये अग्रसर हुए। इसी समय राजा भगवानदास ने अपने बल्लम से एक व्यक्ति को छेद कर भूमि पर गिरा दिया। सम्राट् और राजा मानसिंह ने भी क्षणभर में दूसरे दोनों व्यक्तियों को मार गिराया और आत्मरक्षा-पद्धति को त्यागकर, घोड़ों को आगे बढ़ा कर, अति साहस और वीरदर्प से शत्रु

पर आक्रमण किया। वह लोग सम्राट् की इस अवदान-परम्परा को देख कर विस्मित और भयभीत होगये। इधर मुग़ल-सेना अपने सम्राट् के वीरत्व और विपद् को देखकर सम्राट् की सहायता को बढ़ी और विपक्षी के ऊपर आक्रमण करके उसके विनाश में प्रवृत्त होगई। किसकी शक्ति थी, कि उसके सामने खड़ा होता? किसको साध्य था, कि उसके पराक्रम को प्रतिहत करता? शत्रुगण भीतविह्वल होकर भागे। सम्राट् के साथ बहुत सेना नहीं थी, इससे वह उनका पीछा न कर सके। यह युद्ध इतिहास में 'शरनल युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

सम्राट् ने साहसी सहचरों को प्रचुर पुरस्कार दिया। राजा भगवानदास को महासम्मान-चिह्न पताका और डङ्का प्राप्त हुआ। इसके पहले अति सम्भ्रान्त मुसल्मानों के अतिरिक्त और किसी हिन्दू को यह सम्मान-चिह्न नहीं मिला था। सम्राट् को हिन्दू-मुसल्मान का कुछ पार्थक्य नहीं था। वह गुण देख कर ही पुरस्कृत करते थे।

सम्राट् ने और आगे बढ़ कर विद्रोहियों के प्रधान स्थान सूरत के दुर्ग को अवरोध किया। इससे पहले ही यूरोपीय जातियाँ भारत में आगई थीं और उत्पीड़न आरम्भ कर दिया था। निज़ामुद्दीन अहमद ने लिखा है,—"यूरोपवासी मुसल्मानों को क्षति पहुँचाते थे। उनके आक्रमण निवारण करने के लिये सूरत में दुर्ग बनाया था। उन्होंने यह समझ कर कि दुर्ग बन जाने पर हम अत्याचार न कर सकेंगे, जहाज़ों में बैठ-

बैठ कर बहुत बार दुर्ग-निर्माण करने में बाधायें डाली थीं, परन्तु कृतकार्य नहीं हुए।" इस दुर्ग के दो ओर समुद्र था और दो ओर खाई थी। खाई ४० हाथ चौड़ी और बहुत गहरी थी। वह सदैव समुद्र-जल से भरी रहती थी। खाई पार करके, दो प्राचीरों में होकर, दुर्ग के भीतर जाना होता था। दुर्ग की प्राचीर १० हाथ चौड़ी और ४० हाथ ऊँची थी। वह प्राचीर ईंट और पत्थरों की बनी हुई थी और पत्थर एक दूसरे से लोहे से जड़े हुए थे। सूरत नगर यूरोपीयगण का वाणिज्यस्थान था। वहाँ बहुत से यूरोपवासी वास करते थे। बहुत से पोर्चुगीज़ यह संवाद पाकर कि सम्राट् ने इस नगरी को अवरोध किया है, उनको देखने के लिये गोवा से वहाँ आये। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"सम्भवतः वह लोग अवरुद्ध लोगोंको सहायता के लिये और सूरत-दुर्ग पर अधिकारी करने को आये होंगे; किन्तु सम्राट् का सैन्यबल और उनकी अवरोध-पद्धति देखकर, उन्होंने पूर्व सङ्कल्प को परित्याग कर, दूत कहकर अपना परिचय दिया और बहुत सी द्रव्य-सामग्री सम्राट् को प्रीतिलाभ के लिये प्रदान की।" यूरोपीय जाति से सम्राट् का प्रथम साक्षात् यहीं हुआ। उन्होंने पोर्चुगीज़ों को बड़े आदर से लिया। यूरोप और अन्यान्य देशों की शासन-पद्धति, रीति-नीति और अवस्था इत्यादि बहुत से विषयों पर बहुत सी बातचीत हुई। सम्राट् नये मनुष्यों को पाते ही, जो शिक्षा उनसे प्राप्त हो सकती

थी ले लेते थे। वह विविध कार्यों में सदैव लिप्त रहने पर भी, सदैवही ज्ञान-सम्पादनमें प्रवृत्त रहते थे। पोर्चुगीज़ोंको उन्होंने बहुतसा प्रीति-उपहार देकर बड़े सौहार्द से विदा किया। सम्राट्ने एक महीना १७ दिन अवरोध करने बाद, सूरत-दुर्ग पर अधिकार किया; मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकाको गुजरातका शासनकर्त्ता नियुक्त करके, उसके शासन-संरक्षण-सम्बन्धमें विविध व्यवस्था करके, नौ महीने पीछे इस अभियान को शेष करके आगरे लौटे।

कुछ दिन पीछे संवाद आया, कि विद्रोहियोंने बल-सञ्चय करके फिर अहमदाबाद अवरोध किया है। सम्राट्ने तत्क्षणात् बहुतसी सेनाके साथ राजा भगवानदासको गुजरात भेजा और कह दिया,—"आप चलिये, और भी बहुतसे राजकार्य होने पर भी, मैं सबसे पहले शत्रुका सामना करूँगा।" पीछे अपने कार्य सम्पादन करके, सम्राट् ऊँट पर सवार होकर चले। इस समय वर्षाकाल आ गया था, तथापि वह रात-दिन चलते और प्रायः प्रति दिवस ८० मील पथ अतिवाहित करते थे। तीसरे दिन अजमेर पहुँच कर, मुईनुद्दीन चिश्ती की समाधि पर प्रार्थना करके, घोड़े पर सवार होकर चले। आगरेसे चलनेके नवें दिन सम्राट् अहमदाबाद पहुँचे। ऐतिहासिक निज़ामुद्दीनने लिखा है,—"उस समय विद्रोहीगण निश्चिन्त चित्तसे शिविरमें सो रहे थे। निद्रित शत्रु पर आक्रमण करना अकर्त्तव्य समझ कर सम्राट्ने बहुतसी तुरई बज-

वाईं। शत्रुगण जिस समय जागकर सज्जित हुए, उस समय सम्राट्ने उनपर आक्रमण किया।" ऐसा उदार और सत्याभिमानी, सम्भव है कि, यूरोपमें भी न जन्मा हो। विपक्षी लोग सम्राट्के पराक्रमसे पराजित होकर भागने लगे। उनके नायक कोई हत और कोई वन्दी हुए। मुग़ल-सेना शत्रुके अनुसरणमें प्रवृत्त हुई। सम्राट् केवलमात्र २०० सैनिकोंके साथ एक नीचे पर्वत पर बैठकर विश्राम करने लगे। यह संवाद पाकर, विपक्षकी सेना उनपर आक्रमण करनेको धावित हुई; सम्राट्के साथकी सेना विपक्षी सेना की संख्याको देखकर भीत-विह्वल होकर भागनेको उद्यत हुई। किन्तु सम्राट् उनको उत्साहित करके बोले,—"क्या मेरी सेना पलायन करेगी! यह कभी न होगा। शत्रुपर आक्रमण करो, हमही जयलाभ करेंगे।" इसी समय रणवाद्य बजने लगा और सभी विपक्षी सेनापर आक्रमणके लिये सज्जित और श्रेणीबद्ध होकर खड़े हो गये। विपक्षी कतिपय सैनिकोंका ऐसा वीरभाव देखकर विस्मित हो गये। उन्होंने समझा, कि अवश्यही पर्वतके नीचे बहुतसी सेना होगी। यह ध्यान आतेही, वह लोग पूर्व सङ्कल्प त्यागकर प्राणोंके लिये व्याकुल हो उठे, पीछे हटे और भागने लगे; परन्तु सम्राट् पीछा छोड़नेवाले मनुष्य नहीं थे। वह अतुल साहस पर निर्भर होकर, अपनी क्षुद्र सेना लेकर विपक्षियोंको उचित शास्ति देनेके लिये धावित हुए और कुछ दूर जाकर लौट आये। विपद् कभी सम्राट्को विचलित न कर

सकी, साहसने कभी उनको न छोड़ा। सम्राट् ने रणक्षेत्र-मेंही उपासना करके, ईश्वरके निकट कृतज्ञता प्रकाश की। गुजरात-विद्रोहके दमन करनेके ४३ दिन पीछे, वह फिर आगरे पहुँचे।

सन् १५७४—७५ में, गुजरातमें भयङ्कर दुर्भिक्ष और मरी उपस्थित हुई। अधिवासीगण देश छोड़-छोड़कर भागने लगे। यह दुर्भिक्ष छै महीने तक रहा। सम्राट् दुर्भिक्षपीड़ितोंकी सहायतामें कभी कुण्ठित नहीं हुए, अपरिसीम अर्थ-व्यय करके भी कातर नहीं हुए।

मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका कुछ दिन पीछे स्थानान्तरित हुआ। गुजरातमें विद्रोहियोंने फिरसे अपनी पताका उड़ाई—फिरसे भीषण मूर्त्ति धारण कर ली—खम्बात नगरीका दुर्ग अवरोध कर लिया। सम्राट्ने विद्रोह-दमन करनेके लिये टोडरमल को भेजा। राजा टोडरमलके आनेका संवाद पाकर, विद्रोही भयभीत होकर अवरोध छोड़ कर भाग गये। शेषमें, राजाके साहस और बुद्धि-कौशलसे विद्रोही एक-एक करके पराजित हुए और गुजरातमें फिर शान्ति स्थापित हो गई।

कुछ दिन पीछे, गुजरात का पहला अधिपति मुज़फ़्फ़र तृतीय आगरेसे भागकर स्वदेश पहुँचा और विद्रोहियों से मिलकर स्वराज्यके पुनरुद्धारके लिये प्रयासी हुआ। इस बार सम्राट्ने मिर्ज़ा अब्दुर्रहीमको गुजरात भेजा। उसने अह-

मदाबादके पास महावीरत्व प्रदर्शन करके, शत्रुओंको परा-जित करके, विजयी-वेशमें अहमदाबादमें प्रवेश किया। उसने सब लोगोंका अपराध क्षमा करके, सम्राट्‌का घोषणापत्र प्रचारित कर दिया। जिन लोगोंने विद्रोही होकर बहुतसी सेनाका जीवन नष्ट किया था, बहुतसा अर्थ नाश किया था, उनको भी क्षमा कर दिया। सबही सम्राट्‌की सहृदय शासन-नीतिसे उनकी ओर आकृष्ट होने लगे। फिरसे गुजरातने शान्त-भाव धारण कर लिया। सम्राट्‌ने अब्दुर्रहीमको आगरे बुला लिया और उसको "ख़ानख़ाना" की उपाधि, पञ्चहज़ारी सेना-पति-पद, एक उत्कृष्ट घोड़ा, एक मनोहर परिच्छद और एक बहुमूल्य रत्न-जटित तलवार प्रदान की। जिन लोगोंने इस युद्धमें अत्यन्त साहस प्रदर्शन किया था, सम्राट्‌ने उनको पुरस्कृत किया।

मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका फिर गुजरातका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ। वह मुज़फ़्फ़र तृतीयको बन्दी कर सकता था, परन्तु हतभाग्य आत्महत्या करके दुरवस्थासे परित्राण पा गया। मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका बड़ा विचक्षण व्यक्ति था। वह गुणोंके बलसे, सामान्य अवस्थासे, साम्राज्यके अति उज्ज्वल रत्नोंमें परिगणित होगया था। वह सम्राट्‌का धात्री-पुत्र था। सम्राट् उससे बड़ा प्रेम करते थे। इसी कारण वह अनेक समय सम्राट्‌के प्रति अवज्ञा भी कर बैठता था, परन्तु सम्राट् न उससे क्रुद्ध होते थे और न उसे दण्ड देते थे। वह कहते थे,—"मेरे

और अज़ीज़के बीच दूधकी नदी बह रही है; मैं उसको अति-क्रम नहीं कर सकता।" उसने बिहार और गुजरात इत्यादि स्थानोंके युद्धोंमें महावीरत्व प्रदर्शन किया था। सम्राट्ने उसको "ख़ानि आज़म" की उपाधि प्रदान की और अन्तमें वह साम्राज्यका सर्व-प्रधान अमात्य नियुक्त हुआ। सम्राट्ने उसकी पुत्रियोंके साथ अपने पुत्र कुमार मुराद और पौत्र ख़ुसरोका विवाह किया, जिसके हेतु उसको एक लाख रुपया प्रदान किया। उसने सम्राट्-प्रवर्त्तित नया धर्म ग्रहण किया था। इतिहास पर अज़ीज़को विशेष अधिकार था। वह अति सुन्दर कविता रचना कर सकता था। उसकी एक हास्योद्दीपक कविताका मर्म यह है,—"भद्र पुरुषको चार स्त्रियाँ रखना अति आवश्यक है। एक इस देशकी—मधुर आलापके लिये; एक ख़ुरासानकी—गृहकार्यके लिये; एक हिन्दू—सन्तानके लालन-पालनके लिये और एक तुर्किस्तान की—मार खानेके लिये; जिससे और स्त्रियोंको शिक्षा-लाभ हो।"

सम्राट्के शासनगुणसे गुजरातने अत्यन्त उन्नति लाभ की। वह मुग़ल-साम्राज्यके एक उत्कृष्ट अंशमें परिगणित हो गया। उसकी राजधानी अहमदाबाद उस समय अति मनो-हर और समृद्धिशाली थी। उसके चारों ओर १२ फ़ीट ऊँची प्राचीर थी। नगरमें प्रवेश करने के लिये १८ द्वार थे। समु-न्नत और सुन्दर जुमामसजिद; अनिन्द्य, शुभ्र संगमरमर

और हाथीदाँतकी कारीगरीका बना हुआ उपासनालय ; मनुष्यकृत मनोहर निर्झरिणी ; विस्मयोत्पादक समाधि-मन्दिर ; जैनियोंके पवित्र देवालय ; मनोहर सुन्दर पुष्पोद्यान और सरोवर इत्यादि अब तक विद्यमान रह कर पिछले गौरवका परिचय देते हैं। वहाँ एक सुवृहत् पुस्तकालय था, उसको सम्राट्ने अपने पुस्तकालयमें मिला लिया। अब भी वह नगर प्रधान वाणिज्यका स्थान है। वहाँका सोने और चाँदी के तारका काम, ताम्बे-पीतलके बर्तन बहुत दूर-दूर तक जाते हैं। महाराष्ट्रोंके आक्रमणसे यह नगर श्रीभ्रष्ट होजानेपर भी, भारतवर्षके एक प्रधान नगरोंमेंसे है।

उस समय के आचार-व्यवहार भी इस समय विस्मयकर हैं। सम्राट्ने फ़ैज़ीको दूत-रूपमें दक्षिणको भेजा था। उसने वहाँ से सम्राट्को लिखा,—"सम्राट्के भृत्यके पदोचित भावसे शिविर शृङ्खलाबद्ध किया गया। बीचमें सम्राट्का सिंहासन था। उसके ऊपर सुनहरे कामके बिछौनेके ऊपर, सुनहरे कामकी मखमलकी गद्दी बिछाकर, सिंहासन के ऊपर सम्राट् की तलवार, पत्र और वितरण किये जाने वाले परिच्छद स्थापन किये गये। उसके चारों ओर सब लोग हाथ जोड़ कर खड़े हुए। इसी समय सुविस्तृत खाण्डवप्रदेशका राजा अलीखाँ आया। वह शिविरसे थोड़ी दूर पर उतर पड़ा और आगे बढ़नेके लिये इस दाससे अनुमति माँगी। वहाँसे अपने भृत्योंके साथ नङ्गे पैरों, बड़े विनीत-

भावसे आगे बढ़ने लगा और सिंहासनको देखकर दूरसेही अभिवादन करने लगा। जब सिंहासनके निकट पहुँचा, तो खड़े होकर दासकी अनुमति लेकर, तीन बार सिंहासन को अभिवादन किया। उस समय इस दासने राजाको कुछ और आगे बुलाकर, सम्राट्का पत्र दोनों हाथोंसे उठाकर उसको प्रदान किया और कहा,—'ईश्वरके प्रतिनिधि सम्राट्ने अत्यन्त करुणा करके आपके ऊपर दो अनुग्रह किये हैं। उनमें से एक यह है।' उसने उस पत्रको तीन बार अभिवादन करके अपने मस्तक पर स्थापन किया। पीछे दासने कहा,—'सम्राट् का दूसरा अनुग्रह यह है कि उन्होंने आपको यह सम्मानसूचक परिच्छद प्रदान की है।' यह सुनकर उसने फिर अभिवादन किया; उस परिच्छदको चुम्बन करके पुनः अभिवादन किया; उसके पीछे सम्राट्की तलवारका अभिवादन किया। जितनी बार सम्राट्का नामोल्लेख हुआ, उतनीही बार उसने मस्तक अवनत करके अभिवादन किया। दासने उसको बैठनेकी आज्ञा नहीं दी, इसपर उसने अति विनीतभावसे कहा,—'बहुत वर्षों से यह वासना हृदयमें थी, कि महाशयके सम्मुख उपवेशन करूँ।' यह सुनकर दासने उसको अपने पास बैठनेकी आज्ञा दी। वह अति सम्मान प्रदर्शन करके दासके पास बैठ गया। मैंने यह समझ कर, कि सम्राट्के दासका बहुत देरतक उससे वार्तालाप करना असम्मान-सूचक होगा, इसलिये, शीघ्रही दरबार भङ्ग करनेकी अभिलाष प्रकट की। उसने इसके उत्तरमें

कहा—'इस साक्षात्‌लाभसे अभी तक तृप्ति-लाभ नहीं हुआ है! सन्ध्यापर्यन्त यहाँ रहनेकी अनुमति प्रदान कीजिये।' उस समय मैंने उसको १५ घण्टे ठहरनेकी अनुमति देदी। शेषमें, इत्रपान वितरण हो चुकनेपर, मैंने कहा,—'आइये, हम सब लोग मिलकर सम्राट्‌के दीर्घ जीवन और समृद्धिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करें।' प्रार्थना हो चुकने पर सभा भङ्ग हुई। उसने सम्राट्‌की लगाम चुम्बन करके, उसको अपने कन्धोंपर स्थापन करके, उसका अभिवादन करके प्रस्थान किया। इस दासके एक भृत्यने गणना की थी, कि उसने २५ बार मस्तक अवनत करके अभिवादन किया था।"

एक समय एक मुसल्मान मन्सबदार सम्राट्‌से अपने युद्ध-जयका वर्णन कर रहा था। वह पुनः-पुनः 'हम' प्रयोग करके अपने वीरत्वको शतमुखसे कीर्त्तन करने लगा। सम्राट् के सामने 'हम' का प्रयोग अत्यन्त असम्मानकर है। इसलिये जितने अमीर-उमरा वहाँ बैठे थे शङ्कित होने लगे, कि सम्राट् क्रुद्ध होकर वक्ताको दण्डित करेंगे। एक अमीरने उसको सावधान करनेके लिये कहा,—"तुमने जयलाभ किया है, इसका कारण यह है कि सम्राट्‌का सौभाग्य तुम्हारे साथ रहा है।" मन्सबदार इस बातसे अप्रसन्न होकर बोला,—"तुम असत्य क्यों कहते हो? हमने बन्धुओंके साथ इस तलवारके बलसे जयलाभ किया है।" सम्राट् हँसते-हँसते अधीर हो गये और मन्सबदारकी प्रशंसा करके उसे बहुतसा पुरस्कार दिया।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा और गौड़ ।

Although knowledge in itself is regarded as the summit of perfection, yet unless displayed in action it bears not the impress of worth; indeed it may be considered worse than ignorance.—AKBER.

क्या यह वही उद्यान है जिसकी सुन्दरता पर आकृष्ट होकर दूर-देशों से लोग आते थे ? वर्त्तमान वनकण्टक देख कर कौन कहेगा, कि यहाँ एक दिन मनोहर उद्यान था ; इसके भी गौरव के दिन थे ? तथापि अनुसन्धान करने से ज्ञात होगा, कि संगमरमर की अनिन्दित प्रतिमायें, विस्मृति की लतागुल्म के नीचे, इधर-उधर भग्नावस्थामें पड़ी हुई, उद्यान की अतीत शोभा और सम्पदा की साक्ष्य प्रदान कर रही हैं ।

कुरुक्षेत्र में कौरव-पाण्डवों का जो भीषण संग्राम हुआ था,

उसके फलाफल से दूरवर्त्ती बङ्गवासियों का कुछ भी संस्रव नहीं था ; फिर भी वह लोग बाहुबल से अधीर होकर, बाहुबल की परीक्षा के लिये, इस युद्ध में उपस्थित हुए थे। बङ्गाली शत्रुको शिक्षा देने के लिये कश्मीर भी गये थे। बङ्गाल के राजकुमार विजयसिंह, ईसा से छै सौ वर्ष पहले, बङ्गाली जहाज़ पर चढ़ कर लंका को गये थे और उसको विजय करके वहाँ बङ्गाली राजवंश प्रतिष्ठित किया था। उनके नाम से ही लंका ने सिंहल नाम ग्रहण किया था। कोई-कोई अनुमान करते हैं, कि बाली और जावा द्वीप में भी बङ्गालियों की वैजयन्ती उड़ी थी। हण्टर साहब ने लिखा है,—"बङ्गाली लोग बौद्ध-युगमें पूर्व और पश्चिम दोनों ही ओर अपने जहाज़ चलाया करते थे। भारत महासागर के द्वीपपुञ्ज में उन लोगों के उपनिवेश स्थापित थे।" महाकवि कालिदासके समय में भी बङ्गाली लोग नौका-युद्ध में प्रसिद्ध थे। बङ्गालियों के जहाज़ अति प्राचीनकाल से भारत महासागर में विचरण करते रहे हैं।

सातवीं शताब्दी में, चीन परिव्राजक हुयेन-संग ने बङ्गाल में भ्रमण करके लिखा है,—"बङ्गभूमि कतिपय स्वाधीन राज्यों में विभक्त है। उत्तरीय बङ्गाल के राज्यमें बहुत से जलाशय, पुष्पित उद्यान और मनोहर प्रासाद हैं। पश्चिमी बङ्गराज्य के अधिवासी अमायिक, साधु और ज्ञान-पिपासु हैं। दक्षिणी बङ्गाल अथवा तमोलुक-राज्य समुद्र पर्य्यन्त फैला हुआ है। उसको राज-

धानी समुद्र-तीर पर अवस्थित है। इसके अधिवासी धनी हैं। यहाँ पर बहुमूल्य द्रव्य-सामग्री और मणि-मुक्ता संगृहीत होते हैं। पूर्वी बङ्गालके अधिवासी बलिष्ठ, ज्ञानपिपासु और ज्ञाना-हरण में अत्यन्त श्रमशील हैं। कामरूप राज्य भी खूब विस्तृत है। आसाम, मनीपुर, कछार, मैमनसिंह और श्रीहट्ट उसके अन्तर्गत हैं। नदी और उच्च जलाधारों से नहरों द्वारा पानी नगर में प्रवाहित होता है। यहाँ के मनुष्य सरल और साधु प्रकृति के हैं। इस देश का अधिष्ठाता ब्राह्मण है।"

नवींसे ग्यारहवीं शताब्दी तक बौद्धधर्मावलम्बी पालवंशने बङ्गाल में राजत्व किया था। उस समय बङ्गाल उन्नति के उच्च शिखर पर चढ़ा हुआ था। राजा देवपाल के समय में, बङ्गाली-गण दिग्विजय के लिये निकले और कामरूप और उड़ीसा विजय किया। हिमालय से विन्ध्याचल तक समस्त आर्यावर्तमें विजय-वैजयन्ती उड़ाई। उनके युद्ध का घोड़ा काम्बोज प्रदेशमें भी उपनीत हुआ था। काम्बोज प्रदेश पारस्य देश के उत्तर-पूर्व में है। उन्हीं बङ्गालियों ने उड़ीसामें बङ्गाली राजवंश प्रतिष्ठित किया था। उसी गङ्गा-वंश ने वहाँ से प्रबल प्रताप विस्तार किया था।

एक दिन ऐसा था, कि यही बङ्गाली लोग चिरजीवन अवि-वाहित रहकर, सुख-ऐश्वर्य से उदासीन होकर बौद्ध-प्रचारकों का पवित्र कार्य ग्रहण करके, हिमालय को अतिक्रम करके, तिब्बत, चीन और मंगोलिया में जाते थे; अगाध पाण्डित्य, परोप-कारव्रत और पवित्रता के कारण इन सब देशों के सर्वसाधारण

से महापूजा प्राप्त करते थे। बङ्गाली लोग सदैव से ही ऐसे भीरु और कापुरुष नहीं थे, अध्यवसायहीन और उत्साह-विहीन नहीं थे।

बङ्गाल के राजा बल्लाल सेन ने वङ्गदेश में बहुत से जाति-विभाग करके बङ्गालियोंका महा अनिष्ट साधन किया था। उन्होंने अपनी वैद्य जाति और अपने पुरोहित-सम्प्रदाय में कौलिन्य-प्रथा नहीं चलाई, इस कारण किसी-किसी लेखक ने उनकी शुभ इच्छा पर अति गम्भीर सन्देह प्रकाश किया है। यदि वह कौलिन्य-प्रथा की उपकारिता पर मुग्ध होते, तो वह सब से पहले उसको अपनी ही जाति और अपने ही सम्प्रदाय में प्रचलित करते। उनके वंशधर लाक्ष्मणेय के समय में, पठान-सेनापति बख़्तियार ख़िलजीने, सन् ११९८ ई० में, गौड़ और नवद्वीप पर अधिकार किया। उस समय लाक्ष्मणेय सपरिवार विक्रमपूर को चला गया, जहाँ उसके वंशने १२० वर्ष पर्यन्त राजत्व किया। पश्चिमी बङ्गाल के इस प्रकार मुसल्मानों के हाथ पड़ चुकने पर भी, पूर्व बङ्गालने उसके पीछे १२० वर्ष तक स्वाधीनता-रक्षा की।

पश्चिमी बङ्गाल के पठानों की वश्यता स्वीकार करने पर भी, वहाँ के बहुत से हिन्दू ज़मीन्दार बहुत क्षमता के अधीश्वर थे। तैमूर के आक्रमण के पीछे, पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में, राजा गणेश पठानराज को पदच्युत करके बङ्गाल के सिंहा-सन पर बैठा। उसके वंशने मुसल्मानी धर्म को ग्रहण

करके ४० वर्ष पर्यन्त राजत्व किया। पठानों के अवसान और मुग़लों के अभ्युदय के समय, बङ्गाल द्वादश भौमिक द्वारा शासित होता था। वह लोग अत्यन्त चमताशाली थे। उनके पास सेना थी, जहाज़ थे। वहाँ की प्रजा बिना रोकटोक अस्त्र रखती थी। वह लोग ज़मीन्दार का आदेश पाते ही, ढाल-तलवार इत्यादि लेकर युद्ध के लिये उपस्थित हो सकते थे। बङ्गालके लठैत उस समय साहस के लिये प्रसिद्ध थे। वह लोग सुदूर दिल्ली और आगरे जाकर, सम्राट् अकबर को भीषणक्रीड़ा दिखला कर मुग्ध करते थे। वह लोग बाल्यकाल से ही लाठी के खेल में अभ्यस्त होते थे, इस कारण उनका शरीर बलिष्ठ होता था और उनमें साहस भी होता था। मैंने अपने बाल्यकाल में बहुत से दीर्घकाय और अतुल साहसी लठैत और उनकी क्रीड़ा देखी है। अब वह सब दृश्य विरल है। भौमिकगण के ऊपर पठानों का राजत्व होने पर भी पश्चिम में—विष्णुपुर और पञ्चकोट में; दक्षिण में—सुन्दरवन के निकटवर्त्ती प्रदेश में; पूर्व में—आसाम, चट्टग्राम, नोवाखोली और टिपरा तक; एवं उत्तर में कूचबिहार तक मुसल्मानों की चमता नहीं थी। उस समय कूचबिहार और टिपरा राज्य नाममात्र को भी पर्यावसित नहीं हुए थे। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"अकबर के समय में भी, टिपरा राज्य में दो लाख पैदल और एक हज़ार हाथियों की सेना; और कूचबिहार राज्य में एक लाख पैदल और एक हज़ार गज-सेना थी। कामरूप उसके अधीन था। रङ्गपुर के

अन्तर्गत लीलाघाट पर्यंत कूचबिहार का राज्य विस्तृत था। आसाम उस समय अति समृद्धिशाली हिन्दू-राज्य था। अराकान भी एक पृथक् राज्य था और चट्टग्राम बन्दर उसके अधीन था।"

सत्रहवीं शताब्दी में, फ़रासीसी बर्नियर साहब ने बङ्गाल को देख कर लिखा है,—"आधुनिक लेखकगण ने मिस्र-देश को ही पृथ्वी पर सर्वापेक्षा उर्व्वर वर्णन किया है; परन्तु मेरे मत से बङ्गदेश ने मिस्र को भी अतिक्रम किया है। मनुष्य के सर्व प्रकार के जीवनोपाय यहाँ प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होते हैं। यहाँ सूत और रेशम के वस्त्र इतने अधिक परिमाण में प्रस्तुत होते हैं, कि उनको देखकर मुझे बड़ा विस्मय होता है। हालैण्डवासी उनको यूरोप और जापान भेजते हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत सा सामान दूर-देशों को भेजा जाता है।" उस समय बङ्गाल की शीतलपाटी अत्यन्त प्रसिद्ध थी। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"वह रेशमी वस्त्र सी प्रतीत होती है।" एक समय, बङ्गाल में हीरा भी उत्पन्न होता था।

बिहार और मगध का अतीत गौरव पहले ही वर्णित हो चुका है। बङ्गाल और बिहार के पठानों के सामने मस्तक अवनत कर चुकने के पीछे, उड़ीसा प्रायः ४०० वर्ष तक अपने बाहुबल से हिन्दू-शक्ति की रक्षा करता रहा। अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय पर्यन्त, वह शक्तिशाली हिन्दू-राज्य

था। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है, कि वहाँ १२९ दुर्ग थे। बङ्गाल और बिहार के पठान-राजा केवल बाहुबल से राज्यशासन करते थे। किसी ने कभी भी सत्कार्य द्वारा प्रजा के चित्त-रञ्जन का प्रयास नहीं किया। प्रजा भी कदाचित् ही किसी के लिये आँसू बहाती होगी। इसी कारण जो कर्मचारी जिस समय क्षमताशाली होता, वही राजकीय क्षमता प्राप्त करने में भी समर्थ हो जाता था। राजा के अभ्युदय और पतन से प्रजा सदैव उदासीन रहती थी। इसी कारण सुलेमान नामक व्यक्ति कर्मचारी के पद से बङ्गाल-बिहारके सिंहासन पर बैठने में समर्थ हुआ था। उसके सेनापति स्वनामख्यात कालापहाड़ने, सन् १५६० ई० में, सबसे पहले उड़ीसा मुसल्मानों के अधीन किया; पुरी और जगन्नाथ के मन्दिर को लूट कर बहुत सी मूर्त्तियाँ जला दीं। सुलेमान इस प्रकार बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का नव्वाब होने पर भी, सम्राट् अकबर से शत्रुताचरण करने का साहसी न होकर, उसकी वश्यता और प्राधान्य स्वीकार करके राजत्व करता था। सम्राट् जिस समय गुजरात में व्यस्त हो रहे थे, उसी समय नव्वाब सुलेमान कालके गाल में पतित हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र दाऊद, जो बड़ा शराबी और इन्द्रियपरायण था, सिंहासन पर बैठा और उसने अपनी क्षमता से अधीर होकर मुग़ल-साम्राज्य पर आक्रमण किया। उस समय बङ्गाली लोग युद्ध में अनभ्यस्त नहीं थे—साहस-प्रदर्शन में पश्चात्पद नहीं होते

थे। उस समय के बङ्गाल को यदि किसी ने देखा होता तो वह साश्चर्य्य कहता कि क्या यह वही बङ्गाल है? ष्टुअर्ट साहब ने बङ्गाल के इतिहास में लिखा है,—"उस समय बङ्गाल में ४० हज़ार अश्वारोही सेना, एक लाख ४० हज़ार पैदल सेना, २० हज़ार तोपें, ३६०० लड़ाई के हाथी और सैकड़ों जलयुद्धोपयोगी वृहत् जहाज़ थे।" उस समय हिन्दू-मुसल्मान बङ्गाली ही सेना में भर्त्ती होते थे। उस समय वह लोग युद्ध करना जानते थे।"

इस समय ख़ानख़ाना मुनिमख़ाँ जौनपुर के शासनकर्त्ता थे। वह सम्राट् के आदेश से युद्ध के लिये प्रस्तुत हो रहे थे। सम्राट् ने उनके कार्य-परिदर्शन और सहायता के लिये तीक्ष्णबुद्धि और समरकुशल राजा टोडरमल को भेजा। बङ्गाल के अभियान में वृद्ध मुनिमख़ाँ सेनापति और राजा टोडरमल उनके सहकारी नियुक्त हुए; किन्तु इस अभियान का समुदय कार्यभार राजा के ही हाथ में रहा। सम्राट् के आदेश से मुग़ल-सेना ने अग्रसर होकर पटना अवरोध किया।

इधर सम्राट् अजमेर के समाधिमन्दिर में उपासना करके बङ्गविजय में उत्साहित हुए। वर्षाकाल आगया था, गङ्गा और यमुना जल से प्लावित हो रही थीं। सम्राट् ने जलपथ से आगरे से यात्रा की। बदाऊनी ने लिखा है,—"असंख्य नौका नदीवक्ष को आवृत करके अग्रसर हुईं। सन्ध्या को सब एक ठौर पर इकट्ठी हो जाती थीं। उस समय सम्राट् ज्ञान

के अन्वेषण में प्रवृत्त हो जाते थे, विज्ञान और पद्य की आलोचना करते थे, बहुत से विषयों की आवृत्ति करते थे।" सम्राट् ने पटना में उपस्थित होकर, शत्रु के गोले-गोलियोंके नीचे खड़े होकर विपक्षकी अवस्थान-प्रणाली देखी और पटनाको किस प्रकार अधिकारमें लावें, यह भी स्थिर किया। युद्ध में लिप्त होने से पहले नवाब दाऊद को सम्राट् ने लिखा,—"संग्राम में बहुत से जीवन नष्ट न करके, तुम मुझसे द्वन्द्वयुद्ध करो; यदि इसका तुमको साहस न हो, तो दोनों पक्षोंके दो मनोनीत व्यक्तियों द्वारा फ़ैसला कर लो; यदि पठान-पक्षमें ऐसा कोई वीर न हो, तो दोनों पक्षोंके दो मत्त-मातङ्गों के युद्ध-द्वारा उपस्थित विवाद की मीमांसा करलो।" नवाब इनमेंसे किसी भी प्रस्ताव पर सम्मत न हुआ। सम्राट् सैनिकगणकी जीवन-रक्षाके लिये, द्वन्द्वयुद्ध की विपद्में पड़ने के अभिलाषी हुए थे! इससे भी सम्राट्का महत्त्व प्रकाशित होता है।

पटना और हाजीपुर के बीच में जाह्नवी बह रही है। पटनाके तीन ओर से अवरुद्ध होनेके कारण, नवाब हाजीपुरसे जलपथ द्वारा सेना और विविध प्रकार की सहायता संग्रह करता था। सम्राट्ने नवाबको उससे वञ्चित करनेके लिये, सबसे पहले हाजीपुर पर अधिकार करनेका सङ्कल्प किया। उन्होंने बड़ी-बड़ी नौकायें सैन्य से पूर्ण करके, हाजीपुर पर आक्रमण करनेके लिये पटना से भेजीं। सम्राट् पटनाके पास

बैठकर दूरबीन से अपनी सेना का आक्रमण और परिणाम देखने लगे। उभय पक्षमें भयङ्कर जलयुद्ध आरम्भ हुआ। सम्राट्ने जब देखा कि दोनों ही पक्ष अत्यन्त क्लान्त होगये हैं, तो उन्होंने तीन बहुत बड़ी-बड़ी नौकायें सैनिकोंसे भर कर फिर भेज दीं। मुग़ल-सेनाने उस समय नवीन उत्साह और अदम्य तेजसे विपक्षी पर आक्रमण किया, और जलयुद्ध में जयलाभ करके हाजीपुर पर अधिकार कर लिया।

रातको संवाद आया, कि हाजीपुर का पतन होगया। सुनते ही नवाब एक द्रुतगामी किश्तीपर सवार होकर अन्धकारमें निकल भागा। जाह्नवी बङ्गाल के कलङ्क को अपने वक्ष पर धारण करके, बङ्गाल की ओर को ले चली। विपुल धनरत्न पटना में छूट गया। नवाब का पलायन प्रचारित होगया। सैनिक और सेनापति, सचिव और स्वजनगण सभी अपने-अपने प्राण लेकर भागने लगे। बङ्गाल की विपुल-वाहिनी प्राणों की ममता से चारों ओर को धावित हुई। अधिनायक के अदृश्य होजाने से सबहीका कर्त्तव्य-कर्म मानों शेष होगया। स्वदेशहितैषिता मानों एक नवाब के लिये ही उद्दीप्त हुई थी!

प्रभात को सम्राट्ने मनोहर वेश-भूषा परिधान करके, विजयी वेशमें, महासमारोह से पटना में प्रवेश किया। उसी समय उन्होंने दुष्ट प्रकृति वालों का अपराध क्षमा करके, घोषणापत्र प्रचारित कर दिया। वहाँ चार घण्टे ठहर कर,

नागरिकगणके धन और प्राणोंकी रक्षा के विविध उपाय अवल-म्बन करके, अपनी सेनाका कर्त्तव्य निर्धारण करके, कुछ थोड़े से साहसी अश्वारोही सहचर साथ लेकर, वह नगरी से बाहर निकले और घोड़े पर सवार होकर बङ्गाल के नवाब के अनुसरणमें प्रवृत्त हुए। वर्षाके जलसे नदीने भीषणाकार धारण कर लिया था; चारों ओर जल ही जल था; तथापि सम्राट् स्वयं धावित हुए और पुनपुन नदी में घोड़ा डाल दिया; नदीको पार करके, वायुवेगसे घोड़ेको परिचालन करके, ६० मील पथ अतिवाहित करके, दरियापूर में पहुँचे; तथापि नवाब को वहाँ न पाया, और न कुछ संवाद ही मिला। पठान-सेना भागते समय बहुत से स्वर्णालङ्कार, मूल्य-वान् रत्नजटित तलवारें, स्वर्णमण्डित पगड़ियाँ और बहुत से बहुमूल्य द्रव्य राजपथ पर डाल गई थी। वह सब मुग़ल-सेना को मिले। सम्राट् को पटनामें नवाब का प्रचुर धन-रत्न प्राप्त हुआ। इस समय, इस अनुसरण-कार्य में उसके ४०० हाथी अपने अधिकारमें करके, सम्राट् आनन्दसे दरियापुरसे पटना को लौट आये।

सम्राट् ने बङ्गाल और बिहार के शासनकर्त्ता-पद पर ख़ान-ख़ाना मुनिमख़ाँ को नियुक्त करके, उनके अधीन राजा टोडरमल तथा और-और सेनापतियोंके हाथोंमें अवशिष्ट युद्ध-भार अर्पण करके दिल्ली की यात्रा की। इस समय से सम्राट् धन-सम्बन्धी आलोचना और आन्दोलन में प्रवृत्त हुए; भारत

के विभिन्न धर्मों के सामञ्जस्य को सम्पादन करके, एक नया धर्म चलानेके प्रयासी हुए ।

सम्राट्के सेनापति क्रमसे मुँगेर, भागलपुर और गौड़पर अधिकार करके शत्रु की खोजमें उड़ीसा की ओर को चले। मुग़ल-सेना वर्त्तमान मेदिनीपूर ज़िलेको पार करने लगी। बङ्गाली सेना उसकी गति रोध करनेके लिये उड़ीसा से बढ़ने लगी। एक विस्तृत प्रान्तमें भीषण युद्ध हुआ । बङ्गाली लोग महापराक्रमसे युद्ध करने और असीम साहस प्रदर्शन करने लगे। उन लोगोंके वीरत्व से बहुदर्शी मुग़ल-सेना पराजित होने लगी। मुग़लोंके साहसी सैनिक और सेनापति निहत होने लगे। क्रमसे मुनिमखाँने आहत होकर रणक्षेत्र से पलायन किया। मुग़ल-सेनाका अग्र और मध्यभाग पराजित और लाञ्छित होकर पलायनोद्यत होगया। बङ्गालियों के बाहुबल से मुग़ल-सेना आज छत्रभङ्ग होगई। राजा टोडर-मल मुग़ल-सेना के बायें बाज़ू को परिचालन कर रहे थे। उन्होंने मुग़ल-सेनाकी दुरवस्था देखकर बड़ी व्याकुलता अनुभव की। उन्होंने प्रकृत वीर की भाँति, घोड़ेकी पीठपर खड़े होकर, अपने कण्ठस्वर को रणक्षेत्रके भीषण कोलाहलसे ऊपर करके, वज्रगम्भीर स्वरसे कहा,—"सैन्यगण! भय नहीं है। प्रधान सेनापति भाग गया है तो क्या भय है? अनेक सेनापति पञ्चत्व को प्राप्त होगये हैं तो क्या क्षति हुई है? यह साम्राज्य तो हमलोगोंका ही है, हम ही विप-

क्षियोंका विनाश करेंगे।" इस प्रकार सैन्यगणको उत्साहित करके, वीरमदसे उन्मत्त होकर, असीम साहस और अदम्य तेजसे, अपनी राजपूत-सेनाको श्रेणीबद्ध करके, विपक्ष की सेना पर आक्रमण किया। मुग़लोंने भी इस आक्रमणमें योग दिया। किस को साध्य था, कि राजा टोडरमलके पराक्रमको प्रतिहत करता ? किसमें शक्ति थी कि उनके सामने खड़ा होता ? जयोल्लसित छत्रभङ्ग बङ्गाली सेना इस समय बेकाम होकर भागने लगी। नवाब, सम्भव है कि, पहले ही भाग गया हो। बङ्गालियोंने इस रणक्षेत्रमें ऐसा पराक्रम दिखलाया और इतनी अधिक मुग़ल-सेना निहत की, कि वह रणस्थल 'मुग़लमारी' के नामसे अबतक प्रसिद्ध है और मुग़लमारी बङ्गालियोंके अतीत पराक्रम का परिचय दे रही है।

नवाब कटकको भाग गया। उसने फिर सेना संग्रह करनेकी चेष्टा नहीं की। बङ्गाली लोग थोड़े ही समय में उत्साह-विहीन होगये ; एकबार अकृतकार्य्य होनेसे ही कर्म्म-क्षेत्रसे अपसृत होगये। नवाब सम्राट्की वश्यता स्वीकार करनेमें सम्मत होगया। राजा टोडरमलने सन्धि-स्थापन करनेमें आपत्ति करके कहा, कि पठान लोग अवसर पातेही फिर सिर उठावेंगे ; परन्तु मुनिमख़ाँने विगत युद्धमें बङ्गालियोंका जो वीरत्व देखा था, जो अभिज्ञता लाभ की थी, उससे वह विपक्षियोंके साथ बाहुबल की परीक्षा करनेमें साहसी नहीं हुए।

उन्होंने राजाकी आपत्तिको अग्राह्य करके सन्धि स्थापन कर ली। राजा टोडरमल भी, मुनिमखाँके प्रति अवज्ञा प्रदर्शन करके, आगरेको चल दिये। इस प्रकार बङ्गाल और बिहार मुग़ल-साम्राज्यभुक्त हुआ। उड़ीसा नवाब दाऊद का रहा। खानखानाने बहुमूल्य रत्न-खचित तलवार नवाब को प्रीति-उपहारमें देकर गौड़की यात्रा की। मुग़ल-सेना इस समय भोगती हुई उड़ीसा से गौड़ पहुँची। गौड़ उस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की सुप्रसिद्ध राजधानी एवं शोभा और सम्पदा की लीलाभूमि थी। खानखाना नगर की शोभा देख कर मुग्ध होगये। शीघ्रही वहाँ ज्वर और महामारीका आविर्भाव हुआ। प्रतिदिन हज़ारों मनुष्य मृत्यु-मुखमें गिरने लगे। हिन्दुओंकी दाहक्रिया करनेवाला और मुसल्मानोंको क़ब्र में दफ़नानेवाला भी कोई नहीं रहा। मृतदेह नदीमें फेंके जाने लगे। दुर्गन्ध के कारण वह महानगरी प्रेतपुरी सी प्रतीत होने लगी। इस भयङ्कर रोगसे मुनिमखाँ इत्यादि बहुत से व्यक्ति पञ्चत्व को प्राप्त होगये। बहुतसे घर जनशून्य होगये। नगरी श्मशानमें परिणत होगई। बदाऊनीने लिखा है,—"बहु सहस्र सेना बङ्ग-देशको भेजी गई थी। उसमेंसे केवल एक सौ मनुष्य लौटनेमें समर्थ हुए। इस प्रकार सन् १५७५ ई० में यह ऐतिहासिक महानगरी उजाड़ होगई।"

मुनिमखाँके मरनेपर पठानोंने फिर सिर उठाया। दाऊद हस्तच्युत प्रदेशोंपर अधिकार करता-करता राजमहल तक

पहुँचा। सम्राट्ने एक मुसल्मानको बङ्गालका शासनकर्त्ता करके, राजा टोडरमल को उसका सहकारी नियुक्त किया। राजमहल के पास भीषण युद्धमें पठान सम्पूर्णरूपसे पराजित हुए। सेनापति कालापहाड़ सांघातिकरूप से आहत होकर भाग गया। राजा टोडरमलने दाऊद को वन्दी किया। शासन-कर्त्ताने उसी रणक्षेत्रमें नवाबका शिरच्छेदन करके पठानों की लीलाका शेष कर दिया (१५७६ ई०)।

सम्राट् की ज्ञान-पिपासा असाधारण थी। उन्होंने सोचा, कि गोवा नगरी के पोर्चुगीज़ोंसे युरोपके अनेक विषयोंकी शिक्षा मिल सकती है। इसके लिये, उन्होंने एक प्रधान कर्म-चारी के साथ बहुत सा धन और शिल्पी गोवा को भेजे। शिल्पी वहाँ से बहुत से विषयोंकी शिक्षा प्राप्त करके लौटे। सम्राट्ने उनकी परीक्षा लेकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और समझा, कि अर्थव्यय सार्थक हुआ है। सम्राट् अर्गन प्रभृति युरोपियन बाजे सुनकर मुग्ध होगये।

किस राजाने सब से पहले गौड़ निर्माण किया था, इसका पता नहीं है। परन्तु उसके गङ्गाके तीरपर होनेसे और वर्त-मानमें बहुतसे भग्न मन्दिरों और हिन्दुओं के चिह्न देखने से प्रमाणित होता है, कि उसे किसी हिन्दू राजाने ही निर्माण किया होगा। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"राजा बल्लालसेनने गौड़-दुर्ग बनवाया था।" हण्टर साहबने लिखा है,—"यह महानगरी पहले लक्ष्मणावती कहलाती थी। बोध होता है,

यहींपर आदिसूर, बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन की राजधानी रही होगी।"

इस महानगरी और उपनगरीका विस्तार प्रायः २० वर्ग मील है। केवल नगर की लम्बाई ७॥ और चौड़ाई १—२ मील है। उसके पश्चिम की ओर गङ्गा और पूर्वमें एक वृहत् झील और महानदी बहती है। गङ्गा और महानदी दोनों नगर के पास ही दक्षिण में मिलगई हैं। सुतरां नगरी के पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर शत्रु के आक्रमण का कोई भय नहीं है। शत्रु एकमात्र उत्तर की ओर, स्थल पथसे, नगरपर आक्रमण कर सकता है। उसके निवारण करने के लिये नगरीके उत्तरमें गङ्गासे महानदी पर्यन्त एक सुदृढ़ और समुन्नत प्राकार है। नगरमें प्रवेश करनेके लिये उसमें एक-मात्र सुरक्षित द्वार है।

इसी प्रकारके पासही, महाराज आदिसूर और बल्लालसेन के परित्यक्त भूलुण्ठित प्रासादोंके ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। वहाँपर सुवृहत् और मनोहर 'सागरदीघी' नामक एक कृत्रिम जलाशय है। उसकी तुलना का बङ्गालमें और कोई सरोवर नहीं है। वह १६०० गज़ लम्बा और ८०० गज़ चौड़ा है। तीरभूमि ईंटोंकी बनी हुई है, पानी स्वच्छ और मधुर है। उसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिण है; इससे भी यही प्रतीत होता है, कि वह किसी हिन्दू नरपति के हाथ का बना है।

पूर्वोक्त प्राकारके दक्षिणमें, गौड़ नगरी प्राचीर और खाई

से परिवेष्टित है। उसके पूर्व्वी पार्श्वमें दो प्राचीर और दो खाई हैं, कहीं पर तीन भी हैं। नगरी के भीतर कितने ही सुन्दर महल और मनोहर पुष्पोद्यान हैं; कितने ही जयस्तम्भ और देवमन्दिर, कितने ही जलाशय और राजपथ हैं। इसके दक्षिणभागमें, भागीरथीके तीर पर, दुर्ग एक मील लम्बा और ६००—८०० गज़ चौड़ा बना है। दुर्ग सुदृढ़ प्राकारसे परिवेष्टित है। उसके भीतर अति सुन्दर अन्तःपुर है। उसके चारों ओर भी ४० फ़ीट ऊँची और ८ फ़ीट चौड़ी प्राचीर है। यह भी मानों दुर्गके भीतर उपदुर्ग है। अन्तःपुर के भीतर बहुतसी प्राचीरें मानों शत्रु के आक्रमण का उपहास करने को बनाई गई हैं। इन सब के भीतर मनोहर राजप्रासाद हैं।

इस नगरी के मुसल्मानों के हाथोंमें पड़नेसे, इसका हिन्दू-कीर्तिकलाप मुसल्मानी कीर्तिकलापमें रूपान्तरित हो गया। नगरी-सुन्दरी ने नवपति के चित्तरञ्जनके लिये, हिन्दू-वेषभूषा परित्याग करके, यावनिक वेशभूषा परिधान करना आरम्भ कर दिया। जो गङ्गा इसकी मेखला की शोभा सम्पादन करती थी, वह भी मानों श्रद्धा छोड़कर पीछे हट गई। जिस प्रकार यह उजाड़ हुई, वह पहले वर्णन कर चुके हैं। इस समय इसके बहुत से महल धूल में लोट रहे हैं और मानवशून्य हैं। जहाँ-तहाँ कोई-कोई अट्टालिका, यवनवेष में सज्जित सुन्दरी के घूँघट के भीतर से, ललाट की सुन्दर सिन्दूर की बिन्दी की भाँति, हिन्दू-चिह्न प्रदर्शन करके, अतीत और

अध:पतित हिन्दू-गौरव का परिचय देती है। बहुत से स्थान वनजङ्गल-समाकीर्ण और हिंसक पशुओंके निरापद वासस्थान होगये हैं। इसका सम्मान करने वाला, इसका गौरव समझने वाला कोई नहीं। इसीसे इसकी सारी उत्कृष्ट अट्टालिकाओं को तोड़कर, उनके द्वारा मुर्शिदाबादके नवाबके प्रासाद निर्मित हुए हैं! आज वह मुर्शिदाबाद कहाँ है! पार्श्ववर्त्ती जनसमूह भी गौड़ नगरीकी अट्टालिकाओं द्वारा बने हुए सुन्दर-सुन्दर महलों में सुशोभित हो गये हैं। बहुत दिनों से हमलोग काँच और काञ्चनका तुल्य आदर करनेके अभ्यस्त हो रहे हैं, नहीं तो ऐसे नि:सम्बल—ऐसे निरुपाय—क्यों होते? बङ्गाल और विहारमें दीर्घकाल तक शान्ति नहीं रही। सम्राट् ने हिन्दुओं पर जो अनुकम्पा प्रदर्शन की थी, उससे मुसल्मान लोग बहुत अप्रसन्न हुए। शेष में, सम्राट् ने सन् १५७८ में, हिन्दू-मुसलमानोंके चिर-सम्मिलनकी लालसासे, ईश्वरधर्म नामक एक किञ्चित् परिवर्त्तित हिन्दू-धर्म प्रवर्त्तित किया; हिन्दू-धर्मको नये वेशमें सज्जित करके मुसल्मानोंके सामने स्थापन किया। मौलवी लोग सम्राट्के उद्देश्यको नहीं समझे। सम्राट् हिन्दू मुसल्मानोंको सम्मिलित करके, दोनोंही के मङ्गल-साधनके प्रयासी हुए—भारतवर्षको महाशक्तिशाली करने के लिये सचेष्ट हुए,—इसको वह लोग नहीं समझे; स्वदेशहितैषिता द्वारा तिलमात्र भी परिचालित न हुए। वह लोग सम्राट् से बहुत ही असन्तुष्ट होकर उनको विधर्मी कहने लगे।

जौनपुर के सर्वप्रधान मौलवी ने घोषणा की, कि सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह करना धर्मसङ्गत और ईश्वरानुमोदित है ।

मुग़लों के आक्रमणों से पराजित और विताड़ित होकर, अनेक पठान लोग भारत के अन्यान्य स्थानोंसे भागकर बङ्गाल और बिहारमें आश्रित हुए थे । बहुतसे मुग़ल भी बङ्गाल और बिहार में आ बसे थे । यहाँ उनलोगों ने बाहुबलसे अथवा अवैधरूप से जागीरें बनाली थीं । सम्राट्ने आदेश प्रचार किया, कि जिन मुसल्मानोंके पास सनदें नहीं हैं, उनको राजस्व और निर्द्दिष्ट संख्यक सेना प्रदान करनी होगी । यह सुन कर वह लोग बहुत क्रुद्ध हुए । स्वार्थ अपने शरीरके दुर्गन्धमय घाव के ऊपर धर्म के चन्दन का लेप करके आस्फालन करने लगा । स्वार्थ-पर मुसल्मान धर्म का बहाना करके विद्रोही होगये । यह कहकर, कि सम्राट् इसलाम-धर्मके विपक्षमें खड़े हुए हैं, विद्रोहपताका उड़ाने लगे (१५७८ ई०) । विद्रोह क्रमसे मुग़ल-सेनापर जयलाभ करके, प्रधान राजपुरुषगणको निहत करके, दिन पर दिन भीषणसे भीषणतर हो उठा । सम्राट् के अनेक मुसल्मान प्रधान कर्मचारी भी इसमें शामिल थे, जिन्होंने सम्राट्को सिंहासनच्युत करके उनके भाई मिर्ज़ा मुहम्मद हकीमको सिंहासन प्रदान करनेका संकल्प कर लिया था । उन्होंने हकीमके पास काबुलको दूत भेजा । हकीम एक दल प्रबल सेनाका लाया और पञ्जाब पर आक्रमण किया, जिसका वर्णन पीछे होगा । गुजरातके मुसल्मान भी विद्रोही हुए,

जिसका वर्णन पहले होचुका है। मेवाड़में भी महाराणा प्रताप-सिंहका उदय हुआ; तथापि सम्राट् भीत नहीं हुए। भारतके मङ्गल के लिये उन्होंने जो कुछ कर्त्तव्य समझा, उसको सम्पादन करनेमें विलम्ब नहीं किया, वह सदैव कहा करते थे,— "यदि ज्ञानके अनुसार कार्य न किया जाय, तो उस ज्ञान का प्रयोजन ही क्या है? ऐसे ज्ञानसे तो मूर्खताही अच्छी है।" वह शिक्षित-सम्प्रदायकी भाँति बहुतसा व्यय करके, बहुत आयास से ज्ञानालोक प्राप्त करके, उसको हृदयके निभृत पाषाण-मन्दिरमें ऐसे भावसे, ऐसे यत्नसे बन्द करके नहीं रखते थे, कि उससे कोई ज़रासी सहायता भी न पा सके, और उस ज्ञान का तिलमात्र भी अस्तित्व में न आ सके। वह महापुरुष थे, इसी से सर्व प्रकार की चिन्ता और भय से रहित होकर कर्त्तव्यपालन करते थे। वह इस समय सौरजगत्के सूर्य की भाँति, साम्राज्यके केन्द्रस्थलमें बैठकर, कार्यावली को सुशृ-ङ्खलित भावसे परिचालन करने लगे; जिससे एक-एक करके सबही कुग्रह अदृश्य होगये।

सम्राट् ने जिस समय राजा टोडरमलको बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा का शासनकर्त्ता नियुक्त किया, उसी समय वह वहाँका विद्रोह दबानेके लिये धावित हुए। वह सेना सहित मुँगेर-दुर्गमें उपनीत हुए। उन्होंने दुर्गका संस्कार करके, बाहर खाई खुदवा कर, सेनाको निरापद किया। जयोल्लसित विद्रोही सेनाने शीघ्रही दुर्ग अवरोध कर लिया। विद्रोहियोंके

मुक़ाबलेमें राजाकी सेना बहुत थोड़ी थी। विशेष करके, राजा के अधीन जो मुसल्मान सैनिक और सेनापति थे, उनके भी विद्रोही होने की सम्भावना थी। इन सब कारणों को ध्यानमें करके, राजा ने सम्मुख-संग्राम-पद्धति को छोड़ दिया और समय-समय पर दुर्गसे अकस्मात् निकल कर विद्रोहियों के दलपर आक्रमण करके, उनको निहत करना आरम्भ किया। सम्राट् के जिस काम से उनके स्वजातिगण अप्रसन्न होकर विद्रोही हो रहे थे, उसी काम से हिन्दू सर्वसाधारण उनके प्रति आकृष्ट और अनुरागी हो गये। इस समय राजा टोडरमल की चेष्टा से बिहार के सब हिन्दू ज़मीन्दारों ने सम्राट् का पक्षावलम्बन किया। वह लोग भी दूसरी ओर से विद्रोहियों पर आकस्मिक आक्रमण करने लगे। अनेक बार उनके आहारकी सामग्री भी लूट लेते थे। विद्रोही लोग विपदापन्न और भयभीत होकर, मुँगेरको छोड़कर, बङ्गाल और बिहारकी ओर भागे। इस प्रकार एक-एक करके आक्रान्त और पराजित होकर शीघ्रही सारे विद्रोही अदृश्य होगये और विद्रोह दब गया। परन्तु पठानोंने क़तलूख़ाँको नेता बना कर, उड़ीसामें फिर विद्रोह मचाया।

इस समय राजा मानसिंह काबुलके शासनकर्त्ता थे। वह अपनी राजपूतसेना की सहायता और दृढ़ हस्त से इस दुर्द्दान्त जाति का शासन और विद्रोहभावापन्न काबुल में शान्ति-रक्षा कर रहे थे। वहाँ के अधिवासी मुसल्मान हैं।

उन्होंने राजा मानसिंह के बदले एक मुसल्मान शासनकर्त्ताके लिये सम्राट् के पास आवेदन-पत्र भेजा। वर्त्तमान समयमें, यदि अधिवासीगण छोटे से छोटे विचारकको भी स्थानान्तरित कराना चाहें तो सुसभ्य अँगरेज़ सरकार भी इसे अगौरवकी बात समझेगी। प्राच्य प्रदेश में भी, जनसाधारण की इच्छा-नुसार शासनप्रथा के परिचालन करने में दोष समझा जाता था; परन्तु वर्णित समय में अशिक्षित, अनक्षर सम्राट् प्रजा की इच्छानुसार राजा मानसिंहसे अद्वितीय व्यक्ति को भी एक प्रदेश के अति गौरवान्वित शासनकर्त्ता के पद से स्थानान्तरित करने में कुण्ठित नहीं हुए। सम्राट् ने राजा को काबुल से बुला कर इधर तो उस देशवासियों का चित्तरञ्जन किया; और दूसरी ओर राजा को क्षुद्र अफ़ग़ानिस्तानके बदले बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के अति विस्तृत भूभाग का अति गौरव-युक्त शासनकर्त्ता-पद प्रदान करके सम्मानित किया। राजाने सेना सहित बङ्गाल में प्रवेश करके वर्त्तमान कलकत्ते के पास शिविर स्थापन किये। उनके पुत्र कुमार जगतसिंह उसी सेनाके एक वृहत् अंश के सेनापति थे। बङ्गालियोंने उन पर आक्रमण करके, सुशिक्षित मुग़ल-सेना को पराजय करके कुमारको बन्दी कर लिया। परन्तु राजा मानसिंह की बुद्धि, वीरत्व और अध्यवसायके सम्मुखीन कौन हो सकता था? उनकी ओर आँख उठाकर कौन देख सकता था? शेष में, उन्होंने पठानों को शान्त करके बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा

मुग़ल-साम्राज्यभुक्त कर लिया और वर्त्तमान राजमहल नगरी को निर्माण करके वहाँ राजधानी स्थापन की।

उस समय के बङ्गाली अपने वीरत्व का विशेष परिचय प्रदान करते थे। उनमें से यशोहर के महाराजा प्रतापादित्य विशेष उल्लेखयोग्य हैं। वह हिन्दूगौरव को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करके हिन्दू मात्र के आदर्श होगये थे; बङ्गाल के मुग़ल-साम्राज्यभुक्त होने पर भी वह वीरत्व-प्रदर्शनमें पश्चात्पद नहीं हुए। महात्मा अबुलफ़ज़लने लिखा है—"सूबा बङ्गाल युद्धके समय में सम्राट् अकबर को ८०११५० पैदल, ११७० हाथी, ४२५० तोपें और४४०० युद्धोपयोगी वृहत् नौकायें प्रदान करता था।" बङ्गाली हिन्दू-मुसल्मानों द्वाराही यह सेना गठित होती थी। उन्होंने लिखा है,—"जब राजपूतोंने राजा रायशाल दरबारीके राज्यपर अधिकार कर लिया, तब मथुरादास नामक उसके बङ्गाली वकीलने अपने साहस और वीरत्व के बलसे नष्टराज्यका अधिकांश उद्धार किया था; महासाहसी और दुर्द्धर्ष राजपूतोंको भी नष्ट किया था। उस दिन सिराजुद्दौलाके समयमें भी बङ्गाली सेना और सेनापतियोंने महावीरत्व प्रदर्शन किया है। उस समय तक भी बङ्गभूमिने कापुरुष प्रसव करना आरम्भ नहीं किया था—उस समय तक भी वह वर्त्तमान उपहासकी विषयीभूत नहीं हुई थी। भगवान् ही जाने, फिर कब यह बङ्गभूमि कापुरुषताके कलङ्कसे मुक्त हो कर वीरप्रसविनी होगी!

बारहवाँ अध्याय।

महाराणा प्रतापसिंह।

Huldighat is the Thermopylæ of Mewar; the field Deweir her Marathon. —Tod.

ग्रीकलोगों ने स्वाधीनता-रक्षाके लिये थर्मापिली और मेराथन में जो अतुलनीय वीरत्व प्रदर्शन किया था, वह वीरत्व-गाथा आज सहस्र रसना और सहस्र भावोंसे कीर्त्तन होकर सभ्य देशों में स्वदेश-प्रेम को उद्दीप्त कर रही है। परन्तु प्रताप की तदनुरूप वीरत्व कहानी भाषा के गहनवन में ही छिपी हुई पड़ी है। उसका सन्धान कौन करे? उसका सम्मान कौन करे? हल्दीघाट मेवाड़का थर्मापिली और देवीर उसका मेराथन है। चलो, एक बार उस पवित्र क्षेत्र के पवित्र अभिनय का दर्शन करें।

चित्तौड़ का पतन हो चुका है, परन्तु मेवाड़ का पराक्रम

अन्तर्हित नहीं हुआ है, वीर अंश अदृश्य नहीं हुआ है। महाराणा उदयसिंह कापुरुष थे, इसी कारण उन्होंने चित्तौड़ पर फिर अधिकार करने का प्रयास नहीं किया, नष्टगौरवके पुनरुद्धारके लिये यत्नवान् नहीं हुए। वह बुद्धिमान् थे, तभी तो सम्मान को विदा करके सुखमय जीवन उपभोग करने लगे। उन्होंने मेवाड़की चिरप्रसिद्ध राजधानी, वीरत्वके पुण्य-तीर्थ, चित्तौड़को शत्रुके हाथमें अर्पण करके, सुदूर अवली पर्वत पर उदयपुर नामक नई राजधानी स्थापन की। वह कलङ्क-मोचनको अग्रसर नहीं हुए, परन्तु मेवाड़का एक अंश शत्रु को समर्पण करके भाग गये; परन्तु फिर भी उनके भाग्यमें सुखभोग नहीं था। जो सम्मान को बेच कर सुखका अन्वेषण करते हैं, वह कदाचित् ही सुख को पाते हैं। चितौड़-पतन के चार वर्ष पीछे ही वह काल के ग्रास होगये।

उनके पुत्र हिन्दूकुल-चूड़ामणि महाराणा प्रतापसिंह सिंहासन पर बैठकर, पूर्वगौरव को लौटाने में बद्धपरिकर हुए; जन्मभूमि के कलङ्क-मोचन के लिये दृढ़प्रतिज्ञ हुए। वीर क्या कभी मातृभूमि की दुर्दशा देख सकते हैं? दूसरे के पदतल में स्वर्गादपि गरीयसी जन्मभूमि की लाञ्छना देखकर स्थिर रह सकते हैं? उनकी जन्मभूमि हस्तच्युत, शत्रुपददलित हो रही है! सम्पदा और सौभाग्य का अभाव न रहने पर भी, वह इस चिन्ता को न छोड़ सके, स्वदेश-उद्धार का सङ्कल्प उनको परित्याग न कर सका। वह सुखैश्वर्य और

सम्मान की शोभा पाकर यह नहीं भूले, कि उनको प्राणा-पेक्षा प्रिय चित्तौड़-भूमि शत्रु के पैरोंके नीचे अवहेलित, अपमानित और लाञ्छित हो रही है । मेवाड़ से मुग़लों को विताड़ित करने के लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे । प्रतिपक्ष का प्रबल प्रताप उनके मनमें स्थान न पासका ; तुलना में वह अति क्षुद्र थे, इसको भी उन्होंने न सोचा । उन्होंने यह भी न सोचा, कि इस महासङ्कल्प की साधना में वर्त्तमान सुखसौभाग्य का अवसान हो सकता है, विषम दुःखदुर्दिन आ सकता है । जिस कामको उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा, सब प्रकार का त्याग स्वीकार करके उसका अनुष्ठान करने को कृतसङ्कल्प होगये । दिन और रात, रात और दिन उनके प्राणों में केवल एक चिन्ता, एक महालक्ष्य जागरित रहने लगा :— 'मन्त्र का साधन अथवा शरीर का पातन' । पुरुष के यही लक्षण हैं, साधक की यही पद्धति है, सच्चे स्वदेशहितैषी ऐसे ही होते हैं ।

मेवाड़ की यह प्राचीन रीति है, कि प्रति अभियान के समय, प्रति सैन्यपरिचालन के समय, सैनिक वाद्य सेना के आगे-आगे रहकर उनके गौरव की घोषणा करता चलता है । प्रतापने कहा, "चित्तौड़ का पतन हो चुका है, सैनिकगण का अब क्या गौरव है ? सैन्यगण जबतक चितौड़ का उद्धार न करें, तबतक उनके आगे रणवाद्य न बजे, तबतक वह बाजा उनके पीछे रहकर उनके कलङ्क का कीर्त्तन करे और अवमानना को उनके हृदय में

जाग्रत रक्खे।" केवल इतना ही नहीं; प्रताप ने प्रतिज्ञा की, कि जबतक चित्तौड़ का उद्धार न कर लेंगे, तबतक वह और उनके वंशधर विलास-सामग्री को स्पर्श भी न करेंगे। वृक्ष के पत्तों के सिवा और कोई चीज़ न खायँगे, घास के अतिरिक्त और वस्तु सोने के लिये ग्रहण न करेंगे, और किसी के शोक में न मूँछ-दाढ़ी के बाल देंगे और न मुण्डन ही करायेंगे। महाराणा केवल प्रतिज्ञा करके ही तृप्त नहीं हुए, उनका कर्त्तव्य केवल बातों ही तक नहीं रहा। वह एक ओर तो कठोर तपस्वी-जीवन अतिवाहित करने लगे और दूसरी ओर चित्तौड़ का उद्धार करके गये हुए गौरव को फिर लौटाने के लिये, अतुलनीय वीरत्व प्रदर्शन करने लगे। उस पराक्रमके आगे, स्वदेशोद्धारके सङ्कल्पके अतिरिक्त कोई स्वार्थपरता अथवा कोई चिन्ता उनके मनमें स्थान न पा सकी। वह पुरुषकार, वह उद्योग, वह साहस ऐसे भावका था; वह महातेज ऐसा स्वर्गीय था, कि सांसारिक कोई चिन्ता उसको मलिन नहीं कर सकती थी, और कोई आकर्षण उसको हीनप्रभ नहीं कर सकता था। यदि समुदय राजपूत-नृपतिगण प्रताप के स्वर्गीय भावसे अनुप्राणित होते, प्रताप की साधना की सहायता में प्रवृत्त होते, तो राजस्थान का—केवल राजस्थान का ही क्यों समग्र भारत का—इतिहास आज अश्रुजल से न लिखना पड़ता। प्रताप से इतना वीरत्व स्फुरण हुआ था, कि उस अकेले ने ही अतीत कालके हिन्दू-इतिहासका मुखोज्ज्वल कर दिया है।

प्रताप जिस समय महासाधनामें प्रवृत्त थे, उस समय राजा मानसिंह शोलापुर प्रदेश को विजय करके दिल्लीको लौट रहे थे। उनके मनमें महाराणा प्रतापसिंहके दर्शनकी लालसा उदित हुई। महाराणागण राजस्थानके शीर्षस्थानीय हैं। राजस्थानमें उनके तुल्य सम्मानभाजन और कोई नहीं है। राजा मानसिंह जिस समय कमलमीर में पहुँचे, उस समय महाराणाने उनको बड़े आदरसे ग्रहण किया। परन्तु आहार के समय एकत्र भोजन करनेमें अस्वीकृत हुए और कहा,—"आप अकबरके साथ वैवाहिक सूत्रमें आबद्ध हो चुके हैं, इससे मेरा आपका खान-पान एक नहीं हो सकता है।" राजा मानसिंहको ये शब्द बहुत ही अपमान-सूचक ज्ञात हुए, सुतरां वह महाराणाको उचित दण्ड देनेकी प्रतिज्ञा करके चल दिये। हाय, इस अभागे देशमें जभी दो महापुरुषोंका अभ्युदय हुआ है, तभी वह दोनों आपसमें संग्राम करनेमें प्रवृत्त हो गये हैं, कदाचित् ही सम्मिलित होकर स्वदेश-सेवामें नियुक्त हुए हैं।

राजा मानसिंह ने उस अवमानना की कथा सम्राट् से कह सुनाई। सम्राट् हिन्दू और मुसल्मानों को सम्मिलित करके, उनको एकता और सौहार्द में आबद्ध करने के प्रयासी हो रहे थे। महाराणा को उस पवित्र कार्य में बाधा देते देखकर उनको बहुत दुःख हुआ। वह समझते थे, कि महाराणा सरीखे प्रबल व्यक्ति और समाजपति के पथ-कण्टक होने से, वह कभी भी अपने काम में कृतकार्य नहीं हो सकते हैं। वह

जानते थे, कि जो राजपूत-नृपतिगण इस समय मेरी साधना में सहायता कर रहे हैं, वह भी पीछे महाराणाकी प्रतिकूलता के कारण शीघ्र ही पश्चात्पद हो जायँगे। इन बातोंको सोच-समझ कर, सम्राट् महाराणाको अपने पक्षमें लानेके लिये विविध प्रकार से चेष्टा करने लगे। उन्होंने वश्यता-सूचक केवलमात्र एक हाथी महाराणासे माँगा, परन्तु महाराणा मुग़लोंकी नाममात्रकी वश्यता स्वीकार करनेमें भी असम्मत हुए।

सम्राट् ने इस समय अनन्योपाय होकर, मेवाड़के अवशिष्ट अंश पर अधिकार करने के लिये सेना भेजी। कुमार सलीम उसके अधिनायक नियुक्त हुए; परन्तु राजा मानसिंह इस समर के सर्वप्रधान सेनापति हुए और कुमार को उनके आदेशानुसार चलने की आज्ञा हुई। मुसल्मानगण हिन्दुओं से इतनी घृणा करते थे, कि हिन्दू को प्रधान सेनापति-पद पर नियुक्त हुआ देखकर, उसके अधीन काम करने में अपना अपमान समझा और बहुतसे मुसल्मान युद्धमें जाने से विरत होगये। सम्राट् की क्षमता के सामने महाराणा की क्षमता बहुत ही सामान्य थी। सम्राट् का एकाधिपत्य और ऐश्वर्य्य समस्त भारतवर्ष में फैला हुआ था; और महाराणा का राज्य क्षुद्र राजस्थान की एक क्षुद्र और अनुर्व्वर भूमि पर ही था। सम्राट् के अर्थ की अवधि नहीं थी, सहायता की संख्या नहीं थी; इधर महाराणा अर्थहीन और सहायहीन थे। अकबर उस समयके सर्वप्रधान सम्राट् थे, उनके साथ शत्रुता-

चरण करने के लिये महाराणा सर्वप्रकार से अनुपयुक्त और असमर्थ थे ; तथापि प्रतापने स्वाधीनता-रक्षा के लिये जो पराक्रम प्रदर्शन किया है, वश्यता स्वीकार के प्रस्ताव को जिस प्रकार बारम्बार टाल बतलाई है, उससे उन्होंने ऐतिहासिक समय के हिन्दूकुल को समुज्ज्वल किया है। जबतक इस हतभाग्य देशमें चन्द्र-सूर्य्य उदय होंगे, तबतक उनका कीर्त्तिकलाप कापुरुषोंके कण्ठोंसे भी सुनाई पड़ता रहेगा।

प्रबल हिन्दू और मुसल्मान-वाहिनी प्रबल प्रताप से राजस्थानको कम्पित करती हुई, पर्वत से आते हुए वर्षाके वेगवान् जलप्रवाह की भाँति अग्रसर हो रही है। उस सैन्यस्रोत को विराम नहीं है। अहंकारी महाबली राजा मानसिंह उसका परिचालन कर रहे हैं। उन्होंने अपमान के कारण प्रतिज्ञा की है, कि मेवाड़को राजस्थान के वक्षदेश से उत्पाटन करके समुद्र में डुबादेंगे, महाराणा के राज्यको श्मशान में परिणत करके प्रतिहिंसा को चरितार्थ करेंगे। जो बाहुबल से बलिष्ठ हैं, प्रतिभा से दृप्त हैं, साहस और वीरत्वमें उत्कृष्ट हैं, जिनकी सहायता पर प्रबल पराक्रमी अकबर है, उनके लिये क्या असाध्य है? उनके सङ्कल्प-साधन में बाधा कैसी? वह शत्रु के सन्धान में ससैन्य आगे बढ़ने लगे। सुन्दर मेवाड़-प्रदेश को पददलित करके धावित हुए। परन्तु वहाँ पहुँच कर जो दृश्य देखा, उससे विस्मित और स्तम्भित हुए। प्रबल प्रतिद्वन्द्वी के महासङ्कल्प, महाशक्ति और साधना-पद्धति

का उनको अनुमान होगया। उन्होंने देखा कि मेवाड़ की सुन्दर समतल भूमिमें प्राणीका शब्द तक नहीं है, चिह्न तक नहीं है। जो ठौर नर-नारियों के हास्य-कोलाहल से परिपूर्ण रहती थी,वही आज नीरव और निस्तब्ध है; सम्पूर्ण रूपसे परित्यक्त है। जो गृह अतुल शोभा विस्तार करके सरोवर-सरोज-समूह की भाँति नयन-मन को परिहृत करते थे, आज वही शोभाहीन, अस्तित्व-विहीन होगये हैं। जो मैदान, जो खेत, एक दिन सुन्दर शस्य-श्यामल शोभा विकीर्ण करते थे, जो कृषक और पशुओं से आनन्दमय थे, आज वही अकर्षित पड़े हुए हैं, वहाँ मनुष्य का चिह्न तक नहीं है। जो प्रदेश स्वाधीनता-सेवित प्रफुल्ल नर-नारियों के हास्य-कुतूहल से आमोदित रहते थे, वे आज वनजङ्गल-समाच्छन्न हो रहे हैं। मरुभूमि ने भीषण रूप धारण कर लिया है। बोध होता है, कि मेवाड़-वासीगण महाराणा के आदेश से समतल स्थान को छोड़ कर दुर्गम पर्वत के आश्रय में चले गये हैं। बोध होता है, कि समतल भूमिमें युद्ध करने का सुभीता अन्तर्हित हो चुका है, चतुर प्रताप उन पर पहाड़ी प्रदेश में आक्रमण करेंगे। राजा मानसिंह ने इस समय सब बातों की विवेचना करके, सेना इकट्ठी करके, अति धीरे-धीरे, अति सतर्कता और अति विचक्षणता के साथ सैन्य परिचालन करके, हिन्दू-मुसल्मान सेना सहित अर्वली पर्वत में प्रवेश किया। राह में किसी ने आक्रमण नहीं किया, किसी

ने बाधा नहीं दी, किसी से साक्षात् भी नहीं हुआ। क्रम से मुग़लवाहिनी उस पर्वतके पश्चिमी पादमूल पर अर्थात् प्रातः-स्मरणीय हलदीघाट पर पहुँची।

रजनी शेष हो चुकी है। पक्षियों ने महाकोलाहल मचा कर प्रभात को जगा दिया है। क्रम से सूर्योदय हुआ। प्रभात मानों स्वच्छ शिशिर-जलसे स्नान करके, नारङ्गी रङ्गका पटुआ वस्त्र पहन कर, ललाट में रक्त चन्दन का सुगोल तिलक लगा कर, चारों ओर श्वेत और रक्त चन्दन एवं रोली और विभूति की रेखायें धारण करके, सुगन्ध निश्वास-अनिल से चारों दिशाओं को आमोदित करता हुआ, हिन्दुओं के वीरत्वको दर्शना-कांक्षासे आकाश-कक्षमें आया। इसी समय पर्वतको कम्पित करते हुए, चारों दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए, महाराणा प्रताप सिंह-विक्रमसे अकस्मात् विपक्षियों पर टूट पड़े। उनकी राजपूत और भील सेना महापराक्रम से शत्रु-संहार में प्रवृत्त हुई। भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। प्रताप उच्चैःश्रवा-तुल्य चेतक नामक उत्कृष्ट नीलाश्व पर आरोहण करके, रणक्षेत्रमें सर्वत्र उपस्थित होकर, अपने सैनिकों को रणमद से उन्मत्त करके, शत्रुसंहार करने लगे। उनके सामने मुग़लसेना वायु-विताड़ित सूखे पत्ते की भाँति चारों ओर उड़ने लगी। मत्तमातङ्ग-आन्दोलित क्षुद्र सरोवर के जल की भाँति मुग़लसेना विध्वस्त और विपर्यस्त होने लगी। महाराणा राजा मानसिंह की समर-लालसा चरितार्थ करने के लिये, राजा को समरक्षेत्रमें,

शत्रुमण्डलमें, अन्वेषण करने लगे। शत्रु-सेनामें जहाँ पर राजा मानसिंहका होना अनुमान करते, वहीं पर महाराणा प्रतापसिंह महापराक्रमसे आक्रमण करते थे; किन्तु मानसिंह कहाँ? चतुरचूड़ामणि, विपुल मुग़लवाहिनी के मध्यस्थल में, हाथी की पीठ पर बैठे हुए, सेना परिचालन कर रहे थे; उनके चारों ओर हिन्दू-मुसल्मान-सेना और सेनापतिगण विपक्ष के विनाशमें नियुक्त थे। प्रतापसिंहने देखा, कि सम्मुखवर्ती विपक्ष सैन्यसमुद्र को अतिक्रम करके, उसकी उत्ताल आक्रमण-तरङ्गों में जीवित रहकर, उस स्थान पर पहुँचना मनुष्य के लिये असम्भव है। पासही शत्रु-सेनामें उन्होंने कुमार सलीम को देखा। कुमार को देखते ही महाराणा की प्रतिहिंसा प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने घोड़े के एड़ लगाई और मुहूर्त्त-भरमें शत्रु-सैन्यको भेद कर, वज्राग्नि की भाँति सलीम के हाथी पर आक्रमण किया। चेतक ने कूद कर अगले दो पैर उठाकर गजराज के मस्तक पर स्थापन कर दिये। प्रतापसिंह ने पलक मारते ही तीक्ष्णधार बल्लम से महावत को विद्ध करके भूतलशायी कर दिया। गजराज इस अपूर्व आक्रमण से भी अधिक घोड़े की टापों के वज्राघात से भीतविह्वल होकर आर्त-नाद करता हुआ भागा और पैरों के नीचे बहुत सी मुग़लसेना को कुचल डाला। यह दुरवस्था देखकर, बहुतसी मुग़लसेना प्रतापसिंह की विनाश-कामना से इकट्ठी हो गई; चारों ओर से उनके ऊपर आक्रमण करके, सर्व प्रकारके अस्त्र निक्षेप करने

लगी। परन्तु किसको साध्य था, कि प्रताप की पराजय करता? वह अत्युच्च अश्व पर सवार होकर, तलवार से दोनों ओर की सेना का संहार करने लगे। चेतक वीरमद से आस्फालन करता हुआ, वायु के ववण्डर की भाँति घूमता हुआ, उत्साह से अधीर होकर, विपक्षियों को पदतलसे विनष्ट करने लगा। प्रतापसिंह की सेना उनकी विपद् के गुरुत्व को समझकर उनकी सहायता के लिये इकट्ठी हुई और प्राणों की ममता को छोड़कर प्रभु की प्राणरक्षा की चेष्टा करने लगी। इस स्थानपर भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। मुग़ल-सेना ने प्रतापसिंह की विनाश-कामना से अपनी सब शक्ति यहीं पर लगा दी। राजपूतगण प्रभु की प्राणरक्षा के लिये विपक्षियों पर आक्रमण करके दल के दल पञ्चत्व को प्राप्त होने लगे। क्रमसे महाराणा सात बार आहत हुए। उनकी परिच्छद रक्तरञ्जित होगई, तथापि वह पराक्रम-प्रदर्शन में पश्चात्पद नहीं हुए, शत्रु-संहार में विरत और साहसहीन नहीं हुए। एक वृद्ध ज़मीन्दार ने सोचा, कि केवल वीरत्व प्रकाशित करके इस शत्रु-समुद्र से महाराणा का उद्धार करना सम्भव नहीं है। यह ध्यान आते ही, उसने आत्मोत्सर्ग प्रदान करके प्रभु की प्राणरक्षा का सङ्कल्प किया। ज़मीन्दार सेनापति ने राजछत्र अपने शिर पर रख लिया और प्रताप-सिंहके पासही मुग़लसेनाको संहार करना आरम्भ कर दिया। विपक्षी प्रतारित हुए और अभीष्ट सिद्ध हो गया। मुग़लसेना

उस व्यक्ति को महाराणा समझ कर, महाराणा को छोड़कर, उसके ऊपर झपट पड़ी और अत्यन्त भीषण संग्राम के पीछे वह मारा गया। इस अवसर पर, प्रतापसिंह अपनी सेनामें लौट आये। राजस्थान के इतिहास में ऐसे आत्मोत्सर्ग-महाव्रतों की संख्या नहीं है। परन्तु इनके होते हुए भी राजपूत-गण को जयलाभ नहीं हुआ। प्रतापसिंह के अमानुषिक पराक्रम का भी कुछ फल नहीं हुआ। बहुत सी मुग़ल-सेना के नष्ट हो जाने पर भी उसका ह्रास नहीं हुआ, न आक्रमण का विराम हुआ, न पराक्रम शिथिल हुआ। राजा मानसिंह ने असंख्य सेना, बन्दूक और तोप इत्यादि की सहायता से स्वजाति को पराजित किया; वह राणा की अधिकांश सेना को नष्ट करने में समर्थ हुए। केवलमात्र आठ हज़ार सेना ने भाग कर प्राण बचाये (१५७६ ई०)। महाराणा अति विषण्ण मन से चेतक पर सवार होकर प्रस्थान करने लगे। उनके साथ न कोई शरीर-रक्षक है, न कोई सहचर है; आज अकेले ही प्रस्थान कर रहे हैं। दो मुग़ल सैनिकोंने वायुगति से अपने घोड़े उनके निहत करने को उनके पीछे डाले। राणा से कलह करके, उनका सर्वनाश करने के लिये, उनका भाई शक्तसिंह मुग़लों से मिल गया, और आज इस युद्धमें अपनी शक्ति दिखलाकर मेवाड़ का सर्वनाश करने का प्रयासी हुआ। उसने जब देखा कि भाई अकेला पलायन कर रहा है और दो मुग़ल उसका अनुसरण कर रहे हैं, तो उसका भ्रातृ-स्नेह उमड़ उठा; उसने

शीघ्र ही राणा को बन्दी करने का बहाना करके उनका पीछा किया। चेतक प्रभु को पीठ पर लिये विद्युत्-वेग से पर्वत पर चढ़ा चला जा रहा था। खाई-खन्दक, नाला-सोता इत्यादि जो राह में आता था, उसको पार करता हुआ उड़ा चला जारहा था। इसी समय पीछे से सुपरिचित कण्ठस्वर उनके कानों में पहुँचा। सुनते ही उन्होंने घोड़े को रोका। देखा, कि प्रिय भ्राता आरहा है। शक्तसिंहने राजा के अनुसरण करनेवाले दोनों सैनिकों को विनष्ट करके भ्राता का उद्धार किया। महाराणा ने बहुत दिन पीछे भ्राता को देखकर, पुलकित होकर सस्नेह हृदयसे लगा लिया, और पिछला दुःख भूलगये। चेतक ने थकजाने के कारण वहीं पर प्राण त्याग दिये। शक्तसिंह अपना घोड़ा भाई को प्रदान करके, उनको पलायनमें सहायता देकर, निरापद स्थानमें पहुँचाकर, आप मुग़ल-शिविर में लौट आये।

जिस ज़मीन्दार ने आत्मोत्सर्ग प्रदान करके प्रतापसिंह के प्राण बचाये थे, उसके वंशधरों को मेवाड़ में महासम्मान प्राप्त हुआ। उनको राजा की उपाधि और वंशपरम्परा के लिये राजछत्र व्यवहार करने की अनुमति मिली। इसके अतिरिक्त, महाराणा के प्रासाद के सिंहद्वार तक डङ्का इत्यादि बजाते हुए जाने की अनुमति मिल गई। ऐसा उच्च सम्मान मेवाड़ में और किसी को कभी नहीं मिला।

शक्तसिंह का कार्य गुप्त नहीं रहा, प्रकाशित होगया।

उसने भी अकपट रूप से विवृत कर दिया। उसने सम्राट् के पक्षमें रहकर, उनके अर्थ से परिपुष्ट होकर, उनके सर्वप्रधान शत्रु को सहायता की, उसके पलायन में सहायता दी, सम्राट् का अश्व उसको प्रदान कर दिया, और शत्रु के उपकार के लिये सम्राट् के दो सम्भ्रान्त सैनिक निहत किये। ऐसे अपराधों का क्या दण्ड देना उचित है? शक्तसिंह के भ्रातृ-स्नेह से सम्राट् मुग्ध होगये। उसको कोई दण्ड नहीं दिया। गुण-विमुग्ध सम्राट् शक्तसिंह के कार्य को सत्कर्म समझे; शक्तसिंह मुग़लों से विदा होकर भ्राता के पास आगया।

सम्राट् अकबर ने हिन्दुओं की सहायता से हिन्दुओं को पराजय किया था। यदि इस युद्धमें राजपूत-सेना मुग़लों की सहायता न करती, तो मुग़लों को प्रताप के पराक्रममें विलय प्राप्त होता, मानसिंह निस्सन्देह पराजित होते। हिन्दुओं ने जो आत्मप्राण विसर्जन करके मुसल्मानों की सहायता की थी, उसके प्रत्युपकार में उनको क्या मिला? केवल घृणा! बदाउनी ने अपने इतिहास में लिखा है,—"इस अभियान में जाने की मेरी इच्छा हुई थी। किन्तु उसका नायक एक हिन्दू (मानसिंह) होने के कारण और हिन्दू के अधीन मुसल्मान का काम करना अत्यन्त घृणास्पद समझकर मेरे कई एक बन्धुओं ने मुझको रोक दिया। मैंने कहा,—'उद्देश्य को देखकर कार्य का विचार करना उचित है। इस युद्धमें हिन्दू निहत होंगे, सुतरां यह अति पवित्र धर्म-युद्ध है। इसी

कारण मुझे अस्त्र धारण करने की अभिलाषा हुई है।' मैं इस अभियानमें गया था, एकदल सेना लेकर युद्धमें लिप्त हुआ था। जिस समय तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ, मैंने आसफ़ख़ाँ से पूछा,—'अपने पक्षके राजपूतों को विपक्षी राजपूतों से किस प्रकार पहचान सकेंगे?' उसने उत्तर दिया,—'यथेच्छरूप से तीर चलाओ, जो राजपूत मरेगा वही अच्छा है।' यह सुनकर मैंने अविराम तीर चलाकर बहुत से राजपूत निहत किये।" मुसल्मानों ने इस प्रकार स्वपक्षावलम्बियों को भी निहत किया था! ऐसे विषम विद्वेष को दूर करने के लिये प्रयासी होकर अकबर ने कैसा महत् कार्य किया था! भारतभूमि हत-भागिनी है, तभी वह इस काम में कृतकार्य न होसके।

वर्षाकाल आगया। आकाश घनघटा से आवृत होगया, मेह बरसना आरम्भ होगया, आँधी वेग से चलकर वृक्ष-पल्लवादि को तोड़-तोड़ कर इधर-उधर फेंकने लगी। सौदामिनी चमकने लगी। वर्षा के जल से पथ-घाट पूर्ण होने लगे। नीरव दादुर कोलाहल मचाने लगे। रजनी के अन्धकार को दूर करने की कामना से खद्योत चमकने लगे। झींगुर उनकी उच्चाभिलाषा को देखकर उपहास करने लगे। मेवाड़ मानों राजा मानसिंह को विध्वंस करनेके आयोजन में प्रवृत्त होगई। मानसिंह मानों इसको समझ कर सेना सहित पीछे हट गये। युद्ध-कोलाहल निवृत्त होगया। परन्तु शीतकाल आगया, यह नई विपद् उपस्थित होगई। कुहरा प्रतिदिन प्रदोष से

प्रभात पर्य्यन्त मेवाड़ में चारों ओर शिविर-रचना करके अव-रोध-कार्य परिचालन करने लगा। क्रम से वृक्ष पल्लवहीन और मेवाड़ श्रीहीन होगई। पक्षीगण शाखाओं पर नीरव बैठे हुए विषाद में दिन अतिवाहित करने लगे। शेषमें, वसन्त मेवाड़ की सहायता के लिये आया। मेवाड़ अब आनन्दोत्फुल्ल होगई। नवीन श्यामल शोभा से शरीर को सज्जित करके, विविध वर्ण के मनोहर फूलों से मस्तकको और लताओं से वेणी को अलंकृत करके, जुही, मल्लिका, बेला, रजनीगन्धा प्रभृति इत्रों की बिल्लौरी शीशियों को हाथ में लेकर, हँसता हुआ सुगन्ध को हवा में मिलाकर, चारों दिशाओं को आमोदित करके, हज़ारों पक्षियों के सुकण्ठों से सुललित गान आरम्भ करने लगा। जिस प्रकार अतीत यौवन में, गृहिणी पतिके मनोरञ्जनार्थ, नष्टगौरव को ढाँकने के लिये, वेशभूषा का वृथा आडम्बर करती है; मेवाड़ भी उसी प्रकार मनोहर वेशभूषा परिधान करके, भीतर की दुर्दशा को प्रच्छन्न रखने का यत्न करने लगी। जिस प्रकार कुरूप सुरूप को देखकर, कर्कश-कण्ठ सुकण्ठको सुनकर, निर्गुण गुणीको पाकर ईर्षासे जर्ज्जरित होकर तीव्र समालोचना करते हैं; उसी प्रकार कुरूप कौवे कर्कश कलरव से मेवाड़का उपहास करने लगे। धूर्त्त लोग नारी चलाने में तत्पर जुलाहे की भाँति, यहाँ की बात वहाँ और वहाँ की बात यहाँ पहुँचाकर विवाद-वस्त्र बुनने लगे। मेवाड़ की इस शोभा की बात मानसिंह से किसने जा कही? राजा

मानसिंह फिर शीघ्रही ससैन्य आये और फिर मेवाड़ पराजित और पददलित होगई। इसी प्रकार मानसिंह वसन्तोदय के समय आते और वर्षा के आने पर चले जाते। इसी प्रकार प्रतिवर्ष मेवाड़ आक्रान्त होने लगी और प्रतिवर्ष प्रताप बलहीन, अर्थहीन और सहायविहीन होने लगे। क्रम से उनके प्रवीण सैनिक पञ्चत्व को प्राप्त होगये, दुर्द्धर्ष सेनानी विनष्ट होगये, मेवाड़ वीरशून्य होगई। प्रतापसिंह दिन पर दिन पराजित होने लगे। एक प्रदेश के पीछे दूसरा प्रदेश, एक दुर्ग के पीछे दूसरा दुर्ग शत्रु के हाथमें जाने लगा। क्रम से कमलमीर, उदयपुर इत्यादि पर विपक्षियों ने अधिकार कर लिया। जिस समय प्रतापसिंह इस प्रकार दुर्दशाग्रस्त हो रहे थे, उस समय भी सम्राट् अकबर उनसे मेल करने और सन्धिस्थापन करने के लिये प्रस्ताव कर रहे थे; तथापि प्रतापसिंहने उनकी अवज्ञा की,उन का प्रस्ताव लौटा दिया,स्वाधीन मस्तक बन्धुभाव से भी अवनत करने को सम्मत न हुए। सम्राट् ने जब कोई उपाय न देखा, तो अपने ही बाहुबल से मेवाड़-संग्राम को समाप्त करने के लिये रणक्षेत्र में उतर पड़े। मेवाड़ के भीतर घुसे। परन्तु वहाँ प्रतापसिंह कहाँ थे? वह अकबर के सम्मुखीन होने का साहस न करके अन्तर्हित होगये। सम्राट् अकबर भी उनके सन्धान में असमर्थ होगये। जब उन्होंने प्रतापसिंह को न पाया, तो शेष में मेवाड़ के नाना स्थानों में सेना स्थापन करके, उसके शासन की व्यवस्था कर दी और आप लौट आये।

अब प्रतापसिंह एक वनसे दूसरे वन में, एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर घूमने लगे। पर्वतों पर सांकेतिक चिह्न स्थापन कर लिये। एक पर्वतके शिखरसे दूसरे पर संवाद पहुँचाकर ध्वंसावशेष राजपूत और भील सेना, निर्दिष्ट समय और निर्दिष्ट स्थान पर सेना समवेत करके, बारम्बार आकस्मिक आक्रमणों द्वारा मुग़ल-सेना को नष्ट करके, पर्वतों में अदृश्य होने लगे। प्रतापसिंह के पास अब राज्य नहीं है, सिंहासन नहीं है, घर नहीं है, सैनिकगण भी प्रायः निःशेष होगये हैं, तथापि वह स्वाधीनता परित्याग करने में सम्मत नहीं हैं। वह इस समय प्रच्छन्न भाव से, भीलों और दूसरे जङ्गली लोगों के आश्रमोंमें, कालातिपात कर रहे हैं। उनके दुःख की अवधि नहीं है, क्लेश की सीमा नहीं है। वे वृक्ष के नीचे अथवा पर्वत की गुहा में, भूमि पर अथवा पर्वत-खण्ड पर सोकर, वहीं के वनफल और कन्द-मूल खाकर, वहीं के झरनों से प्यास मिटाकर, दिन काटने लगे; एक वनसे दूसरे वनमें घूम-घूम कर अति सामान्य आहारसे, जीवन-रक्षा करने लगे; तथापि सङ्कल्प में अटल रह कर महाव्रत का उद्यापन करने लगे; परन्तु उनकी स्त्री, सन्तान और पुत्रवधू इस काम में बाधास्वरूप होगये। उन लोगों की विपद् और दुर्गति की अवधि नहीं थी। एक बार भीलों ने उनको एक झोंपड़ी में छुपाकर उनकी जीवन-रक्षा की थी। वह लोग आहार के अभाव से दुर्बल होने लगे। एक बार मुग़ल-सेनाने उनके ऊपर इस भाँति आक्रमण किये, कि पाँच

बार उनका आहार प्रस्तुत हुआ और पाँचों ही बार उसको छोड़ कर उनको पलायन करना पड़ा। एक दिन महाराणा एक वृक्ष के नीचे भूमि पर पड़े सो रहे थे और पास ही महिषी बैठी हुई थीं। उन्होंने सामान्य तृण से रोटी प्रस्तुत करके क्षुधार्त्त सन्तान के हाथ में दी। अकस्मात् एक जङ्गली बिल्ली ने आकर उसको भी आत्मसात् कर लिया! सन्तान के कातर क्रन्दन को सुनकर महाराणा की विषाद-चिन्ता भग्न हुई, वह पराजित हुए, उनका धैर्य्य अन्तर्हित होगया, अध्यवसाय अपसृत होगया। उनका प्रिय परिवार, जन्मभूमि को हटाकर, उनकी चिन्ताके सम्मुख आकर खड़ा होगया और महाराणा के हृदय पर सम्पूर्णरूप से अधिकार कर लिया। आज महातपस्वी सन्तान की माया, सन्तान के दुःख से, महातपस्या को भूल गया; सङ्कल्प-साधना की भी सुधि न रही। वह आज उन लोगों के सुख के लिये अधीर होकर, गौरव को विदा करके, सन्धि-भिक्षा के लिये सम्राट् को पत्र लिखने पर तत्पर होगया।

पाठक, दोषारोपण न कीजियेगा। यह मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है। स्त्री-पुत्रों के पास रहने पर, उनके दुःख-क्लेशों को प्रत्यक्षरूप से देखने से प्राण व्याकुल हो जाता है; जन्मभूमि अदृश्य होकर अपने दुःख-दुर्गति के संवाद को परोक्षभाव से प्रेरण करती है; इसी कारण स्त्री-पुत्रों के दुःख के सामने स्वदेश की बात का विस्मृत होजाना स्वाभाविक है। इसका ज्वल-

समान दृष्टान्त इस पतित देशके देशहितैषीगण हैं। वह लोग अपने जीवनमें जन्मभूमिकी अपेक्षा स्त्री-पुत्रोंकी ममता अधिक अनुभव करके भी, छोटीही वयसमें अपने वंशधरोंको स्त्री-पुत्रों से परिवृत करके, उनके द्वारा देशकी दुर्गति दूर करनेकी आशा करते हैं! वह लोग इस बातको भूल जाते हैं, कि महाराणा प्रतापसिंहके सदृश महापुरुष भी स्त्री-पुत्रोंके दुःखसे स्वदेशको भूल गये थे; वह लोग इस बातको नहीं समझते, कि महात्मा मेज़िनीके भी यदि स्त्री-पुत्र होते, तो वह भी जो कुछ कर गये हैं, उसे करनेमें शायदही समर्थ होते।

प्रतापसिंहके सन्धि-प्रस्तावको प्राप्त करके, सम्राट् आनन्दसे उत्फुल्ल होगये। अभीतक सन्धिकी नियमावली निर्द्धारित नहीं हुई थी। इसका भी निश्चय नहीं था, कि सम्राट्के प्रस्ताव पर प्रतापसिंह सम्मत होंगे कि नहीं होंगे, तथापि सम्राट् आनन्दसे अधीर होगये। उन्होंने सोचा,—"प्रतापसिंह सा महापुरुष जब मेरे साथ सौहार्द्दमें आबद्ध होनेके लिये स्वीकृत हुआ है, तब मैं वही काम करूँगा जिससे वह सौहार्द्दमें आबद्ध हो जावे; उसकी सहायता प्राप्त करनेके लिये जो हानि स्वीकार करनी पड़ेगी उसे स्वीकार करूँगा।" इसी कारण सम्राट्ने प्रतापको अग्रसर होते देखकर शतकण्ठसे हृदयका आनन्द प्रकाश किया और सर्वसाधारणको प्रकाश्य भावसे आनन्दोत्सव करनेका आदेश दिया। यह आनन्द क्यों मनाया जा रहा है? मेवाड़-विजय समाप्त होचुकी है, समग्र देश

अधिकारमें आ गया है, मेवाड़के शासन-संरक्षणका उपाय हो चुका है, महाराणाने गहनवनमें आश्रय ले लिया है, उनकी अति साहसी राजपूत-सेना प्राय निःशेष हो चुकी है, फिर आज किस लाभकी आशासे यह महानन्द-स्रोत प्रवाहित हो रहा है? महाराणा प्रतापसिंह सरीखे पुरुषसिंहको शीघ्रही सौहार्द में आबद्ध कर सकेंगे, ऐसे महापुरुषकी सहायता प्राप्त होनेसे भारतके हिन्दू-मुसल्मानोंका सम्मिलन अनायासही सुसम्पन्न हो जावेगा, दोनों एक होकर भारतका कितनाही उपकार साधन करनेमें समर्थ होंगे,—इन्हीं सब बातोंको सोचते-सोचते सम्राट् आनन्दसे अधीर हो गये।

सम्राट्ने आनन्दके आधिक्यके कारण, महाराणाका पत्र अपने प्रिय बन्धु पृथ्वीराजको दिखलाया। उन्होंने कहा,—"वह आपके समुदय साम्राज्यके प्रदान करनेपर भी पराधीनता स्वीकार न करेंगे।" उन्होंने महाराणाको पवित्र व्रतके उद्यापन में उत्साहित करनेके लिये, एक मनोहर कविता रचना करके गोपनीय भावसे उनके पास भेज दी। उन्होंने लिखा,—"हिन्दुओंका आशा-भरोसा हिन्दुओंपरही निर्भर है। आज वह आशा राणा तोड़े देते हैं! प्रतापके न रहने पर अकबर सबहीको एक श्रेणीमें कर देगा, क्योंकि हिन्दुओंमें अब वह बलविक्रम नहीं है; रमणियोंमें अब वह गौरव नहीं है। अकबर हमारी जातिका खरीदार है। उसने प्रतापके अतिरिक्त सभीको मोल

ले लिया है; केवल प्रतापकाही मूल्य देनेमें वह असमर्थ है। कौन राजपूत नौरोज़के लिये अपना सम्मान विसर्जन करने को प्रस्तुत है? तथापि कितने राजपूतोंने अपने सम्मानको विसर्जन नहीं कर दिया है!* सभीने क्षत्रियोंके प्रधान द्रव्यको विक्रय कर दिया है। अब क्या इसी हाटमें चित्तौड़ भी आवेगी? यद्यपि प्रतापने ऐश्वर्यको ध्वंस कर दिया है, तथापि उसने इस द्रव्यको रक्षा की है। निराशासे अनेक राजपूतोंने इस हाटमें आकर अपनी अवमाननाका दर्शन किया है; किन्तु हमीरके वंशधरोंने आत्मसम्मान की रक्षा की है। पृथ्वी-राज पूछता है,—'प्रतापको यह बल कहाँसे प्राप्त हुआ है? उसका पुरुषार्थ और तलवारही उसका सम्बल है। उसीके द्वारा उसने क्षत्रियोंके गौरवकी रक्षा की है। आज जिसने मनुष्य क्रय करनेका व्यवसाय ग्रहण किया है, उसको भी प्रताप किसी न किसी दिन पराजय करनेमें समर्थ होगा; क्योंकि वह चिरस्थायी नहीं है। उसी समय राजपूतगण फिर

---

* इस समय बहुत से मनुष्य कुल-ललनागणों को घरसे बाहर निकलते देखकर व्यथित होते हैं, उस समय भी बहुत से मुसलमान नौरोज़ और खुशरोज़ को हाट में हिंदू-कुल-ललनागणों को आते देखकर असम्मान और गर्हित कार्य समझते थे। यहां तक, कि बदाऊनी तक ने परिताप करते हुए लिखा है, कि सम्राट् ने इसलाम-धर्म को नष्ट करने के लिये ही, मुसलमान कुल-ललनागणों के इस हाट में आने की व्यवस्था की है। अथवा कवि ने प्रतापसिंह को उत्तेजित करने के लिये ही यह अति रञ्जित उक्ति लिखी हो।

प्रतापके पास आवेंगे, और उसके पाससे राजपूत-वीज ग्रहण करके मनुष्यहीन स्वदेशमें बोयेंगे। सबही प्रतापकी ओर देख रहे हैं, कि वही राजपूत-वीजकी रक्षा करेगा, जिससे फिर क्षत्रियोंका गौरव समुज्वल हो सकता है।"

केवल स्वधर्मी लोगही प्रतापकी प्रशंसा नहीं करते थे, वरन् गुणग्राही मुसल्मान भी उसकी भूयसी प्रशंसा करते थे। सम्राट्के प्रधान अमात्य ख़ानख़ाना ने भी, प्रतापके वीरत्व पर मुग्ध होकर, एक सुन्दर कविता बनाकर उनके पास भेजी थी। उन्होंने लिखा था,—"पृथ्वी क्षणभङ्गुर है; साम्राज्य और सम्पदा भी क्षणस्थायी है; परन्तु महापुरुषोंकी गुणावली चिरस्थायी है। प्रतापने राज्य और ऐश्वर्य्य स्वेच्छासे छोड़ा, किन्तु मस्तक अवनत नहीं किया। भारतके राजाओंमें एक मात्र उसीने स्वजाति-गौरवकी रक्षा की है।" सम्राट् भी शत-मुखसे प्रतापकी प्रशंसा करते थे।

प्रतापसिंहसे महापुरुषके चित्तमें भी स्त्री-पुत्रादिकोंकी चिन्ता उदय हुई; पर वह सम्मानज्ञान को एकदम भूल नहीं सके! मनुष्यहृदय दुर्बलतासे मुक्त नहीं है। परन्तु महापुरुषोंके चित्तमें कदाचित्‌ही किञ्चित्‌मात्र दुर्बलताका सञ्चार होता है, लेकिन हमलोगोंकी भाँति मनुष्य-नामधारी जीवोंमें मरते समय तक दुर्बलता भरी रहती है; कदाचित्‌ही कभी उससे किञ्चित्‌मात्र परित्राण मिलता हो तो मिलता हो। प्रतापके हृदयसे दुर्बलता सदैवके लिये अपसारित हो गई।

उन्होंने सोचा,—"क्या! स्त्री-पुत्रोंके लिये यह उन्नत मस्तक आज अवनत करूँगा? जो सिर सिवा ईश्वर के और किसी के लिये अवनत नहीं हुआ, आज वही मुग़लोंके सामने अवनत होगा? जिस स्वाधीनता-रक्षाके लिये इतना संग्राम किया है, स्मरणातीत समयके साम्राज्यको ध्वंस किया है, अतुल ऐश्वर्य्य नष्ट किया है, कैसे-कैसे प्रिय विश्वासी सैनिकों के प्राणोंकी आहुति दी है, अपना रक्तपात किया है, उसी स्वाधीनताको स्वेच्छा से विदा कर दूँ? उसी स्वाधीनताके बदलेमें पराधीनता की लौह-शृङ्खला गलेमें पहनूँ? और राजपूत राजाओंने मुझको सहायता नहीं दी है, बल्कि स्वदेशको पराधीनताके पथको सुप्रशस्त करके, मुझको भी उसी पथ पर लानेके लिये अपनी-अपनी शक्ति और सामर्थ्य लगा दी है। कहाँ तो उनको मुझसे मिलकर स्वदेशकी स्वाधीनता-रक्षा करनी थी और कहाँ यह, कि उनलोगोंने राजस्थान का—जन्मभूमिका—सर्वनाश करनेके लिये मेरे विरुद्ध तलवार ग्रहण की है! हे मातः! मैं अकेला क्या करूँ? जन्मभूमिको परित्याग करके, अपनी स्वाधीनता लेकर, दूरदेश में जाकर दीनहीन भावसे दिन यापन करूँगा, किन्तु वश्यता स्वीकार नहीं करूँगा। हे मातः! तेरे सभी पुत्र कुपुत्र हैं, मैं अकेला क्या करूँ?" प्रतापका सङ्कल्प स्थिर रहा। उन्होंने सङ्कल्प कर लिया, कि मेवाड़को छोड़कर, अर्वली पर्वतको अतिक्रम करके, उसके पश्चिमी भागमें जो सुविस्तृत

मरुभूमि है उसको भी पीछे छोड़कर, सिन्ध नदीको पार करने पर वहाँ नया राज्य स्थापन करके, स्वाधीनतासे काला-तिपात करेंगे। कैसा सङ्कल्प है! कैसा स्वाधीनताका अनु-राग है! महाराणा अनुचर और सहचरोंके साथ स्वदेश छोड़कर चल दिये। कितनेही सुन्दर-सुन्दर महल, नगरी और दुर्ग पीछे छूट गये। क्रमसे पवित्र और प्रियतमा मेवाड़ भूमि पीछे रह गई। महाराणाका हृदय विषादसे आच्छन्न था, वह नीरव थे, मस्तक अवनत किये धीरे-धीरे चले जा रहे थे। प्राण और आगे जाना नहीं चाहते थे, पद और वहन नहीं करते थे, आँखें और पथ प्रदर्शन नहीं करती थीं। राणा और सहचरवृन्द सभी महादुःखमें अभिभूत होकर सोच रहे थे,—"जन्मभूमि शत्रुके हाथमें चली गई है, फिर हमारे जीवन-धारण से क्या लाभ?" सभी यही सोचते हुए चले जा रहे थे, कि मरुभूमि की सीमा आगई। उस समय स्वदेशवत्सल मन्त्रीप्रवर और अधिक आत्मसंयम नहीं कर सके। उन्होंने महाराणाके पास जाकर, अपना अतुल धनैश्वर्य्य स्वदेश के उद्धार-साधनके लिये महाराणाके पाद-पद्ममें समर्पण कर दिया। वह धन इतना था, कि २५ हज़ार सेना बारह वर्ष तक युद्ध कर सकती थी। यह देखकर सब-ही आनन्दसे उत्फुल्ल हो गये। महाराणाका हृदय आनन्दसे नाचने लगा। आशा सञ्जीवित होगई। जो महावीर अर्थाभावसे उपायविहीन हो गया था, वह इस समय अतुल

अर्थ प्राप्त करके, उत्साहसे अधीर होकर, स्वदेशके उद्धारके सङ्कल्पमें बलवान् होकर, महानन्द और महावेगसे सेनासहित मुग़ल-सेनाके संहारके लिये धावित हुआ।

प्रभात हो गया है, विहङ्गमकुल महाकलरवमें प्रवृत्त हो गये हैं; मानों वह प्रतापसिंहके प्रत्यागमनके आनन्दसे अधीर हो रहे हैं और मेवाड़को भी आनन्दसे उत्साहित कर रहे हैं। क्रमसे सूर्य्य उदय हुआ; देवगण मानों प्रतापके वीरत्वको प्रत्यक्ष देखनेके लिये सुगोल, सुन्दर, लोहित, बेलून पर आरोहण करके आकाशमें उपस्थित हुए हैं। मुग़लसेनापति शाहबाज़खाँ देवीर में शिविर स्थापन किये हुए सोच रहा था, कि प्रतापने पलायन किया है, मेवाड़ वीरशून्य हो गयी है। इसी समय आकाशसे वज्रपातकी भाँति, प्रताप-सिंह सिंहपराक्रमसे अकस्मात् मुग़ल-सेना पर टूट पड़े और समुदय मुग़ल-सेनाको तलवार द्वारा खण्ड-विखण्ड कर दिया। कुछ सैनिक प्राण लेकर भागनेमें समर्थ हुए, परन्तु महापराक्रमशाली प्रतापसिंहने वायुवेगसे उनका अनु-सरण किया। उन लोगोंने मुग़ल-सैन्यपूर्ण और मुग़ल-सेना से रक्षित एक दुर्ग में आश्रय लिया; परन्तु मुग़लोंकी क्या सामर्थ्य थी, जो प्रतापके सम्मुखीन होते और उनके प्रतापको सहते? दुर्गकी सम्पूर्ण सेना शीघ्रही आक्रान्त और निहत हुई। प्रतापसिंह क्षणभर पीछेही कमलमीर पहुँचे और उसपर आक्रमण करके मुग़लोंको खण्ड-खण्ड कर डाला।

प्रतापके पराक्रमने इस समय भीषण रूप धारण कर लिया था; ऐसा जान पड़ता था, मानों अग्नि प्रज्वलित होकर गगनस्पर्श कर रही हो और आँधी बड़े वेग से चलकर उसको एक दुर्गसे दूसरे दुर्गमें पहुँचा कर और एक स्थानसे दूसरे स्थानमें करके, बिजली की भाँति नित्यप्रति दलके दल भस्मीभूत कर रही हो। कुछही महीनोंमें, सन् १५८० ई० में, प्रतापने मुग़ल-सेना से रक्षित २२ स्थानों पर फिर से अधिकार कर लिया। उन स्थानों की सेनाओंको खण्ड-खण्ड कर दिया। उदयपुर, चित्तौड़ और मण्डलगढ़ को छोड़कर, प्रायः कुल मेवाड़ पर उन्होंने अधिकार कर लिया। केवल इतनाही नहीं, राजा मानसिंहको उचित दण्ड देनेके लिये उन्होंने अम्बर-प्रदेश पर भी आक्रकण किया। उसका प्रधान वाणिज्यस्थान मालपुरा लूट लिया। सम्राट् प्रतापसिंहकी अवदान-परम्पराको देखकर मुग्ध हो गये, स्तम्भित होगये और शतमुखसे उनकी प्रशंसा करने लगे। एकमात्र गुणीही गुणका आदर कर सकता है। सम्राट्ने प्रतापसिंहके वीरत्वके पुरस्कार-स्वरूप, मेवाड़की नई राजधानी उदयपुर उनको सादर लौटा दी और उनके प्रति बहुत कुछ सहृदयता प्रकाशित की। परन्तु चित्तौड़का पुनरुद्धार नहीं हुआ। अमानुषिक परिश्रम, असाधारण दुःख और क्लेशसे, असमयमेंही, प्रतापसिंहका स्वास्थ्य भङ्ग हो गया। जब उनका अन्तिम दिन आया, तो वह मेवाड़का भविष्यत् सोचकर बहुत शोकाकुल

हुए। उन्होंने रोरुद्यमान बन्धु-बान्धवोंको सम्बोधन करके कहा,—"मैं तो जाता हूँ, परन्तु मेवाड़का उद्धार नहीं हुआ! आज यहाँ पर यह पर्णकुटी है, कल इसके बदले कुपुत्रों द्वारा यहाँ महल तय्यार होंगे। क्रमसे वह विलासिता के दास हो जायँगे, केवल आराम और विश्राम का अन्वेषण करेंगे। तुम लोग भी उनकाही अनुकरण करोगे, और मेवाड़का उद्धार न होगा।" उस समय पुत्र और अन्यान्य लोगोंने जो वहाँ उपस्थित थे, प्रतिज्ञा की, कि जबतक सम्पूर्ण मेवाड़ स्वाधीन न हो जायगी, तबतक हम महल नहीं बनवावेंगे। उसी समय महाराणा के महाप्राण नश्वर शरीर से निकल गये। हिन्दू-कुल-रवि भारतवर्ष में अँधेरा करके चिरकाल के लिये अस्त होगया; फिर उसका उदय नहीं होगा, फिर अन्धकार तिरोहित नहीं होगा।

तेरहवाँ अध्याय।

फ़तेहपुर-सीकरी, आगरा और दिल्ली।

Said Jesus, The world is a bridge, pass over it, but build no house there; he who hopeth for an hour, may hope for eternity: the world is but an hour, spend in devotion: the rest is unseen.

—**Akbar**

अतुल शोभामयी फ़तेहपुर-सीकरी, आगरा और दिल्ली का वर्णन करना शक्ति से बाहर है। जिन्होंने उनको नहीं देखा है, वह उनकी शोभा को समझ नहीं सकेंगे; इसी प्रकार जिन्होंने भारत-भ्रमण नहीं किया है, वह भारतके आयतन को हृदयङ्गम कर नहीं सकेंगे।

सलीम मुईनुद्दीन चिश्ती नामक एक साधु स्थलपथ से मक्का, एशिया-माइनर, सिरिया, बग़दाद इत्यादि दूर-देशों में

भ्रमण करके, शेषमें सीकरीके पर्वत पर, एक निर्जन कन्दरामें बैठ कर, ईश्वरोपासनामें दिन अतिवाहित कर रहा था। गुण-विमुग्ध सम्राट् उसके दर्शनों की लालसासे वहाँ पहुँचे। साधु सम्राट्की बातचीत और व्यवहारसे प्रसन्न होकर बोला,—"तुम शीघ्र ही एक पुत्र लाभ करोगे और वही तुम्हारे सिंहासन पर बैठेगा।" संसारी मनुष्यको पुत्रलाभसे बढ़कर सुखका विषय ही क्या है? इससे पहले सम्राट्की यमज-सन्तान नष्ट हो चुकी थीं। साधुका आशीर्वाद पाकर, सम्राट् आनन्दसे उत्फुल्ल होगये। शीघ्र ही उनकी प्रियतमा महिषी, अम्बरकी राजबाला, जोधाबाई गर्भवती हुईं। सम्राट्ने उनको साधुके पवित्र आश्रममें भेज दिया। राजमहिषीने सन् १५६९ में वहाँ एक पुत्र प्रसव किया। सम्राट्ने साधुके नामानुसार कुमारका नाम सलीम रक्खा। सम्राट् इस पुत्रलाभके कारण इस स्थान से ऐसे आकृष्ट हुए, कि इसी वर्ष उन्होंने वहाँ एक प्रासाद निर्माण कराना आरम्भ कर दिया। दूसरे वर्ष कुमार मुराद भी इसी स्थान पर उत्पन्न हुए। इस कारण इस स्थानसे सम्राट् को और भी अनुराग उत्पन्न हुआ। इस समय उन्होंने इस जनशून्य पर्वतको महानगरी की शोभामें परिवर्त्तन करना आरम्भ किया। गुजरात विजय करनेके पीछे "फ़तेहपुर-सीकरी" उसका नाम रक्खा। इतिहासमें भी यही नाम प्रसिद्ध है। विषम परिवर्त्तनसे आजकल यह महानगरी परित्यक्त है।

फ़तेहपुर-सीकरीकी पर्वतमाला बहुत ऊँची नहीं है, किन्तु अप्रशस्त और बड़ी है, जो पूर्व दिशा से दक्षिण-पश्चिम को बहुत दूर तक चली गई है। वृक्षोंसे शोभित, २४ मील लम्बा सुप्रशस्त राजपथ उसको आगरेसे संयुक्त करता है। जिस स्थानपर पर्वत की चढ़ाई आरम्भ होती है, वहाँ पर 'आगरा-द्वार' नामक एक सुन्दर और सुदृढ़ पत्थरका तोरण खड़ा हुआ है। २० फ़ीट ऊँची पत्थर की चहारदीवारीने उसके दोनों पार्श्वोंसे आरम्भ होकर, कहीं पर्वतके ऊपर, कहीं समतल भूमि पर चलकर, उसे वेष्टन कर रक्खा है। इस चहारदीवारी और नगरीकी परिधि सात मील है। यह चहारदीवारी इस प्रकारकी बनाई गई है, कि सेना नगरके भीतर से उसपर चढ़कर आड़ ही आड़ में प्राचीरके एक सिरे से चारों ओर जा सकती है; और आड़में ही रहकर, आत्मरक्षा करके शत्रु पर गोला-गोली चला सकती है। आजकल बहुत स्थानों पर यह टूट गई है। इस प्राचीरके अतिरिक्त, बहुत सी अट्टालिकायें पर्वत के दोनों किनारों पर खड़ी हुई शत्रु की गति रोध करती हैं। उनके ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान हैं।

आगरा-द्वार को पीछे छोड़ कर, ढालू राजपथ पर पश्चिम को ओर को बढ़ना पड़ता है। पथ के दोनों ओरकी विध्वंस और निपतित हर्म्यमालायें, मानों अतीतके लिये शोक-सङ्गीत गान कर रही हैं। इस प्रकार दीर्घ पथको अतिवाहित कर

चुकने पर, सामने ही मनोहर राजपुरी इस समय भी पर्वतको अलंकृत कर रही है। यह लाल पत्थर की बनी है, और ऐसी मालूम होती है मानों लोहितवस्त्र पहने हुए है।

पहले ही एक सुप्रशस्त चौक ३६०×१८० फ़ीट का है। उसके पश्चिम में, अकबरका विस्तृत दीवाने-आम अथवा दर-बार-गृह है। और तीनों ओर, लाल पत्थर के बने हुए और घर हैं। उसके दक्षिण-पश्चिम में एक और चौक है। वहाँ पर सम्राट् के समय में जो दफ़्तरख़ाना था, वह अब अँगरेज़ भ्रमणकारियों के चित्तविनोदन के लिये पान्थशाला है। उस के पश्चिम में, अम्बर-राजबालाका भवन है। हिन्दुओंके तिलक चिह्नकी भाँति उसके ऊपर भी एक चिन्ह बना हुआ है। उसी से लगा हुआ राजा बीरबलका दुमंज़िला मकान बड़ा सुन्दर बना हुआ है। कीन साहबने लिखा है,—"इस पत्थरके मकान में ऐसी मनोहर कारीगरी की गई है, जो दर्शक का मन मुग्ध कर लेती है। उसके देखने से यह ज्ञात होता है,कि चीनकी हाथीदाँतकी कारीगरी जो संसारको मुग्ध कर रही है, उसके बनानेवालोंने आप ही यहाँ आकर इसको निर्माण किया है। यह मकान रत्नोंके आधार-रूपमें व्यवहृत होनेके उपयुक्त है।" मरियमका गृह भी बड़ा मनोहर है। बोध होता है, कि सम्राट्-जननी मरियम माखानी यहाँ आकर इसी मकान में रहती होगी। इसके पास ही, एक हिन्दू संन्यासी का हिन्दू-भाव का निवासस्थान है। वायु-सेवन के

लिये पाँच महल, दीवान-ख़ास अथवा धर्मालोचना का गृह और धनागार है। सभी काल से प्रतिद्वन्द्विता करके अब भी खड़े हुए हैं। सम्राट् और महिषीगण के शयनागार सबही द्वितल के हैं, सब पर सुनहरे काम के बेलबूटे, फूल इत्यादि और श्लोक लिखे हुए हैं। परन्तु वह सब सौन्दर्य्य इस समय विलुप्त-प्राय है। अन्तःपुर के उत्तर में जल की कल थी। वहाँ जल शुद्ध करके, ऊपर चढ़ाया जाकर, समस्त राजपुरीमें पहुँचाया जाता था। इस समय उसका चिन्हमात्र शेष रह गया है। सम्राट् ने इस नगरी को अनाक्रमणीय करनेकी अभिलाषा से पर्वत के ऊपर जो दुर्ग बनाना आरम्भ किया था, वह भी हाथी-पोलके पास वर्त्तमान है। कहाँतक लिखा जाय ?

अन्तःपुर के पासही, दक्षिण-पश्चिममें ५५०×४७० फ़ीट लम्बा-चौड़ा एक विस्तृत चौक है। उसके पश्चिमी पार्श्व में, मक्काकी मसजिदकी भाँति एक वृहत् मसजिद है। फ़िञ्च साहबने लिखा है,—"प्राच्य प्रदेशों में यह सर्वापेक्षा सुन्दर मसजिद है।" उसके बीच में सलीम चिश्तीकी संगमरमरकी मनो-मुग्धकर क़ब्र है। इस चौकके दक्षिणी पार्श्व में 'बुलन्द दरवाज़ा' नामक वृहत् द्वार है। वह पर्वत के ऊपर १३० फ़ीट ऊँचा है। फ़र्गुसन साहब ने लिखा है,—"पर्वत-तलसे इसका दृश्य अत्यन्त सुन्दर है; सम्भव है, कि इसके तुल्य मनोहर द्वार संसारमें दूसरा न हो। इसके तोरणद्वार पर दोनों ओरकी खुदी हुई पदावली सम्राट्के धर्ममतकी घोषणा कर रही है। एक ओर

लिखा है,—"ईसामसीह ने कहा है,—'पृथ्वी केवल अतिक्रम करने का सेतु है, उसको पीछे छोड़कर आगे बढ़ो। उसके ऊपर रहने के लिये घर मत बनाओ। यदि वहाँ पर क्षणभर ठरहने की इच्छा हुई, तो सदैव के लिये वहीं रहना पड़ेगा। यह जीवन क्षणस्थायी है, इसको ईश्वर-चिन्ता में अतिवाहित करो, क्योंकि परजीवन के विषय में कुछ मालूम नहीं है।" द्वार के दूसरी ओरको लिखी हुई पदावली कह रही है,—"उपासना में प्रवृत्त होकर चित्तको अन्य ओर लगाने से उपासना का कुछ फल नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से तुम ईश्वर से दूर रहोगे। जो कुछ दरिद्र को दोगे, वही तुम्हारा उत्कृष्ट सम्बल है। जो इस लोक के बदलेमें परलोककी क्रय करता है, वही श्रेष्ठ व्यवसायी है। ईश्वर के प्रिय कार्यका साधन ही, ईश्वरकी पूजा का उपाय है।" इस अंश के पश्चिम में सलीम चिश्ती की आवास-गुफ़ा और उसके ऊपर एक मनोहर अट्टालिका है। बुलन्द दरवाज़े से सीढ़ियों द्वारा उतरकर, पर्वत के नीचे समतलभूमिमें बाज़ार है। इस समय वह समृद्धिहीन और जीवन-विहीन है। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"इस समतलक्षेत्रमें पूर्वोक्त चहारदीवारी के भीतर अनेक सुन्दर मकान और उद्यान बने थे।" वह सब ध्वंस होगये हैं। यह नगरी सम्पूर्ण रूपसे सम्राट्‌ने बनवाई थी। एक व्यक्ति बुलन्द दरवाज़े के पास की एक बहुत ऊँची प्राचीर के शीर्षप्रदेश पर खड़ा होकर, एक क्षण में छलाँग मार कर बहुत नीचे

जलाशय में कूदकर अदृश्य होगया। यह देखकर हमलोग काँप गये और हृदय विस्मय से पूर्ण हो गया। क्षणभर पीछे वह मनुष्य निरापद ऊपर निकल कर तैरने लगा। उस समय मन में ऐसा आया, कि बहुत ऊँचे से कूदकर बहुत नीचे चले जाने के हम लोग पुरुषानुक्रम से अभ्यस्त हैं!

जो नगरी एकदिन आनन्द-कोलाहलसे दिनरात शब्दायमान रहती थी, वही इस समय नीरव और निस्तब्ध होरही है! केवल पर्यटन करनेवाले कभी-कभी कहीं-कहीं विषादपूर्वक विचरण करते हुए दिखाई देते हैं। केवल बीच-बीचमें दो एक उल्लू किसी-किसी प्रासाद पर बैठे हुए रह-रह कर वहाँ की नीरवताको भङ्ग करते हैं। मानों प्राणके आवेगसे पूछते हैं—"क्या जीवन इसी तरह व्यतीत होगा?"

यमुना नदी मनोहर आगरा नगरी के बीचमें होकर बह रही है। उसके पूर्वी किनारे पर पठान-सम्राटों द्वारा निर्मित पुराना आगरा है। बाबर और हुमायूँ का लीलाक्षेत्र भी वही है। परन्तु आज वह करालकाल के आक्रमणसे श्मशान में परिणत होगया है। उसकी शोभा अन्तर्हित हो गई है। गगनस्पर्शी हर्म्यमालायें अदृश्य होगई हैं। समृद्धिकी कहानी मात्र रहगई है। रह क्या गया है, यहाँ-वहाँ केवल ध्वंसावशेष ईंटोंके स्तूप। उस ध्वंसप्राप्त नगरीमें रामबाग़ नामक मनोहर उद्यान और नूरजहाँ बेगमके पिता एतमाद-उद्-दौला का संगमरमरका मक़बरा पर्यटन करने वालेको अब भी आक-

था, इस समय उसी ने आगरे को जगत् में प्रसिद्ध कर रक्खा है। पृथ्वी के दूर-दूर देशों के पर्यटक उसके ही देखने को आगरे आते हैं। यह मनोहर मन्दिर 'ताजमहल' के नामसे विख्यात है। इसकी तुलना का प्रासाद जगत् में अभीतक कोई नहीं बना। ट्रावर्नियर साहब ने लिखा है,—"मैंने इस प्रासाद को निर्माण के आरम्भ से समाप्त होने तक आँखों से देखा है। बीस हज़ार व्यक्ति, प्रतिदिन काम करके, बाईस वर्ष में इसको समाप्त कर सके थे। इससे ही इसके व्यय का कुछ आन्दाज़ा मिल सकता है।" कर्नल एण्डरसन साहब के मत से, इसमें प्राय: ४ करोड़ ११॥ लाख रुपये खर्च हुए हैं। इस प्रासाद के दो द्वार चाँदीके थे। जाटों ने मुग़ल-साम्राज्य के पतन के समय, आगरे पर अधिकार करके, उन द्वारों को आत्मसात् कर लिया था।

एक उच्च और अति मनोहर तोरणद्वार अतिक्रम करके, उससे भी अधिक मनोहर उद्यान में प्रवेश करने पर, संगमरमर का एक सुविस्तृत पथ मिलता है। संगमरमर का दीर्घ जलाधार इस पथ के बीचमें होकर ताजमहल तक चला गया है। इस जलाशय में फ़व्वारे हैं, जो इस समय नीरव, निस्पन्द और निरुत्साह हो रहे हैं; मानों ऊपर को मुँह उठाये ताज की शोभा देखते-देखते कर्त्तव्य-कार्य को भूलगये हैं, और आत्म-विस्मृत होगये हैं! इस पथ के दोनों ओर सुन्दर उद्यान और सुन्दर वृक्षावली है। कहीं पर गुलाब पवन से हिल-हिल

कर शोक-सङ्गीत और मनोहर सुगन्ध द्वारा सम्मुखवर्ती ताज-महल की अर्चना करता है। कहीं पर बकुल और शेफालिका शोक से मस्तक अवनत किये हुए पुष्पाञ्जलि वर्षण कर रहे हैं। यमुना भी मानों उस प्रासादके पैर धोने की वासना से प्रवाहित हो रही है। सहस्रों पक्षी सुललित स्वर से ताजमहल की स्तुति गा रहे हैं। प्रकृति-सुन्दरी मानों शिल्प-सौन्दर्य्य से पराजित और मुग्ध होकर उसकी उपासना कर रही है। इस मनोहर उद्यान के उत्तर में, यमुना-पुलिन पर, पूर्व-पश्चिम ८८० फ़ीट लम्बी और उत्तर-दक्षिण ३१३ फ़ीट चौड़ी सुन्दर सुवृहत् वेदी है। उसके पूर्व-पश्चिम के पार्श्व में लाल पत्थर से निर्मित वृहत् और सुन्दर उपासनागृह और विहारभवन विराजमान हैं। इस वृहत् वेदी के मध्यभाग में, सङ्गमरमर का २२॥ फ़ीट ऊँचा और ३१३ फ़ीट लम्बा-चौड़ा एक चतुष्कोण है। उसके चारों कोनों पर चार अति रमणीय स्तम्भ २२५।२२५ फ़ीट ऊँचे बने हुए हैं। उनके भीतर घूमती हुई सीढ़ियाँ ऊपर तक चली गई हैं। इसी सङ्गमरमर की वेदी के मध्य भाग में, जगत् का विस्मयो-द्दीपक १८६ फ़ीट चतुष्कोण ताजमहल विराज रहा है। इसका भीतरी और बाहरी भाग सङ्गमरमर से आच्छादित है। उसके शिर पर मनोहर श्वेत गुम्बद और उसके ऊपर स्वर्ण-वर्ण का चूड़ा मानों आकाश को छूने की इच्छा से खड़ा हुआ है। समग्र प्रासाद २८६ फ़ीट ऊँचा है। इस वृहत् अट्टालिका के भीतर बेगम मुमताज़-महल और उनके पास सम्राट्

शाहजहाँ की समाधि है। उनके ऊपर दो श्वेत पत्थर की वेदिकायें विराज रही हैं। इन वेदिकाओं और श्वेत मन्दिर की दीवारों पर नीले, पीले और रक्तवर्ण के बहु-मूल्य रत्नों द्वारा प्रकृति के लता-पता, वृक्ष और फूल बनाये गये हैं। वे सब मिलकर स्वर्ग की कल्पनामयी शोभा को इस मर्त्य-लोक में विस्तार कर रहे हैं! यह ज्ञात होता है, मानों शुभ्र-तुषार-क्षेत्र में, विविध वर्ण के मणिमुक्ताओं के वृक्ष हैं, मणि-मुक्ताओंकी लतायें हैं, उनमें मनोहर मणिमुक्ताओं के फूल फूट रहे हैं। यहाँ अपार स्वर्गीय सौन्दर्य मूर्त्ति विराजमान है! जिन्होंने उसको नहीं देखा है, उनको वर्णनद्वारा समझाना असम्भव है। साहब लोगों ने लिखा है,—"दैत्यों ने ताज की कल्पना की होगी और मणिकार लोगों ने उसको बनाया होगा।" किसीने लिखा है,—"ऐसी मुग्धकर वस्तु काँच में मढ़कर क्यों न रक्खी गई!" किसीने लिखा है,—"ताज को श्वेतमरमर की स्वप्नमयी शोभा कहने से भ्रम होता है।" एक रूसी व्यक्ति ने लिखा है, "ताज एक अपूर्व रूपलावण्यमयी रमणी है, उसके चाहे कोई कितने ही दोष उल्लेख क्यों न करे, परन्तु जोही उसके पास पहुँचा, वह एकबारगीही मुग्ध होगया।" स्लीमेन साहब ने लिखा है,—"बारम्बार ताज के दर्शन करो, फिर भी उत्तरोत्तर आनन्द की वृद्धि होगी। चाहे जितनी बार देखो, परन्तु वहाँसे चलते समय हृदय में यही अनुताप होगा, 'हाय, आजीवन इसी के पास ही क्यों न रहे!' चलते समय यही दृढ़ विश्वास होता है कि

जबतक स्मृति-शक्ति रहेगी, तबतक ताजकी याद बनी ही रहेगी, फ़रासीसी बर्नियर साहबने लिखा है,—"ताजमहल की तुलना में मिस्र देश के पिरेमिड कुछ भी नहीं हैं। वह केवल पत्थर के ऊपर पत्थर रखदेने से बने हैं। वस्तुत: उनकी अपेक्षा ताज-महल सर्वतोभाव से पृथ्वी की विस्मयोद्दीपक वस्तुओं में परिग-णनीय है।" हाय! ऐसे अपूर्व ताजके आभरण-रत्नादि भी अप-हृत होगये हैं। भारत के लिये गौरव का विषय है, कि उसका 'ताजमहल' जगत् के सप्त आश्चर्यों*में परिगणित हुआ है।

सम्राट् अकबर और उनके पूर्ववर्त्ती पठान और मुग़ल-सम्राटों की दिल्ली इस समय पुरातन और परित्यक्त दिल्ली है। सम्राट् शाहजहाँ ने वर्त्तमान दिल्ली का निर्माण किया था। प्राचीर और खाई से सुरक्षित, बहुविध की मनोहर अट्टालिकाओं द्वारा अलंकृत और सुन्दर नहरों द्वारा यमुनाजल उसमें प्रवाहित किया था। इस दुर्गोपम नगरी के भीतर, यमुना के तीर पर, और एक मनोहर लाल पत्थर का दुर्ग निर्माण किया था। यह दुर्ग ५० लाख रुपये की लागत से, बीस वर्ष में तय्यार

* यदि आप जगत् के सप्त आश्चर्यों को अपनी आँखों से देखना चाहते हैं, उनका विवरण तफ़सीलवार जानना चाहते हैं; तो हमारे यहाँ से "सप्त आश्चर्य्य" नामक सचित्र पुस्तक मँगाकर अवश्य पढ़िये। इसका नाम "सप्त आश्चर्य्य" है; पर इस में सात पहले के और चार हाल के ११ अजायबातों का विवरण मय उनके चित्रों के दिया गया है। अधिक क्या लिखें, पुस्तक देखने ही योग्य है। दाम १) डाकखर्च ⁄)

हुआ था। दुर्गके प्रथम द्वारको अतिक्रम करके अग्रसर होने पर सामने ही तोरणद्वार दीखता है। विस्तृत प्रवेश-पथके दोनों ओर से हर्म्य मालाओंने आकाशकी ओर उठकर और सम्मिलित होकर राजपथको बहुत दूरतक आवृत करके एक अपूर्व तोरणद्वार निर्माण किया है, जो पर्यटक को राजप्रासाद की सुषमा द्वारा विमुग्ध करता है। पहले उसके ऊपर नौबत बजा करती थी। उसको पीछे छोड़कर, पूरब की ओर बढ़ने से पहले ही दरबारे-आम अथवा दरबार-गृह दिखाई देता है। उसकी शोभा और सौन्दर्य सभी इस समय विलुप्त होगये हैं। उसकी दीवारों पर विविध वर्ण के फल-फूल, पशु-पत्ती अति मुग्धकर भाव से अङ्कित थे; परन्तु उनको कोई व्यक्ति अपहृत करके ले गया है। इसी घरमें चाँदीकी एक रेल रक्खी थी, वह भी अदृश्य होगई है। इसके पीछे दीवाने-ख़ास अथवा मन्त्रणागृह दर्शक को मुग्ध करता है। वह श्वेत पत्थर का बना हुआ है। उसके भीतर श्वेत पत्थर की स्तम्भ-श्रेणी अपूर्व शोभा विस्तार कर रही है। इस स्तम्भ-समूह का नीचे का भाग कई रंगों का और बहुमूल्य पत्थरों के बेलबूटों से अलंकृत है। शाहजहाँ की इच्छा थी, कि इन स्तम्भों को नीचे से ऊपर तक इसी भाँति अलंकृत करें, परन्तु उनमें लगाने के लिये जितने बहुमूल्य रत्न इत्यादि आवश्यक थे उनका हिसाब लगाकर वह वासना छोड़ देनी पड़ी। समस्त गृह रौप्य चन्द्रातप से सुशोभित था। किन्तु महाराष्ट्र लोग पानीपत की लड़ाई के पहले उसको लूट ले गये।

यह मकान ८ लाख रुपयों की लागत से तय्यार हुआ था। केन साहब ने लिखा है,—"ऐसा दरबार-गृह भारत में दूसरा नहीं है।" इस घर में सोने के अक्षरों में लिखा है,—"यदि पृथिवी पर कहीं स्वर्ग है, तो वह यही है, वह यही है, वह यही है।" वास्तव में यह गृह बहुत ही मनोहर है।

घर के भीतर, उच्च सङ्गमरमर की वेदी के ऊपर शाह-जहाँ का जगद्विख्यात 'तख़्ताऊस' विराजमान था। वह ६ फ़ीट लम्बा और ४ फ़ीट चौड़ा था। देखने से प्रतीत होता था, कि दो सजीव मोर पूँछ फैलाये हुए खड़े हैं, उनके ऊपर सोने का सिंहासन स्थापित है। सोने और नीले-पीले तथा रक्तवर्ण के बहुमूल्य मणिमुक्ताओं द्वारा मोर की पूँछका अनुकरण करके सिंहासन बनाया गया था। सिंहासन के पीछे की ओर दोनों मोरों की पूँछें थीं, और सामने की ओर दोनों की गर्दनें थीं। बीचमें बहुमूल्य हरे पत्थरों के द्वारा उन पक्षियों के शरीर बनाये गये थे। सिंहासन के ऊपर स्वर्णनिर्मित, बहुमूल्य रत्नखचित बारह राजदण्ड स्वर्णचन्द्रातप लिये खड़े थे। उन मनोहर चन्द्रातपों के मनोहर मणिमुक्ता हिल-हिल कर सिंहासन की शोभा बढ़ाते थे। सिंहासन के दोनों ओर कारुकार्य और मोतियों से जड़ा हुआ रक्तवर्ण का राजछत्र विराजता था। उसके डण्डे सोने के और रत्नजटित थे। इस सिंहासन के निर्माण में ६॥ करोड़ रुपये ख़र्च हुए थे।

दरबारे-ख़ासके पीछे ही यमुना के किनारे अन्त:पुर है।

उसके विलास-गृह भी अति मनोहर हैं। एक के बीचमें संगमरमरका हौज़ और फ़ौव्वारा है। उस हौज़में भी बहु-मूल्य रत्न इत्यादि द्वारा मनोहर फूल-पत्ते बनाये गये हैं। केन साहबने इस गृहको स्नानागार कहकर वर्णन किया है; किन्तु इसकी शोभा देखकर मुझको तो यह ज्ञात हुआ, कि यह विलासगृह होगा। इसी प्रकार बहुतसी कक्षाओंमें यमुना-जल प्रवाहित होता था। फ़र्गुसन साहबने लिखा है, "यह मकान राजप्रासादका शिरोमणि है। अँगरेज़ लोगोंने इसमें के बहुतसे मकान तोड़ डाले हैं। आजकल देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि रत्न इत्यादि यहाँसे निकाल कर किसीने और पत्थर जड़ दिये हैं। दिल्लीका राजप्रासाद, सम्भव है, पृथ्वी पर सर्वापेक्षा मनोहर हो।" और एक अँगरेज़ने लिखा है,—"यह अन्तःपुर अब भी पृथ्वीकी विस्मयोद्दीपक वस्तुओंमें परिगणित है। पृथ्वीके दूर-दूरके देशोंसे लोग इसके देखनेको आते हैं।"

एक पर्वतखण्डको समतल करके उसके ऊपर मनोहर जुमा-मसजिद बनाई गई है। वह २०१ फ़ीट लम्बी और १२० फ़ीट चौड़ी है। उसके दोनों ओर दो मीनार खड़े हुए हैं, जो १३०।१३० फ़ीट ऊँचे हैं। मसजिदके सामने, उसी पर्वतपर एक सुप्रशस्त चौक है। उसके बीचमें एक जलाशय है। इस मसजिदके चौकमें जानेके लिये, पर्वतखण्डके तीन ओर, अति विस्तृत सोपानावली और तोरण है। शाहजहाँने

दस लाख रुपये लगाकर इसको बनाया था। स्मिथ साहब ने लिखा है,—"सम्भवतः पृथ्वी पर ऐसी मनोहर मसजिद दूसरी न होगी।" फ़र्गुसन साहबने लिखा है,—"कदाचित् कोईही अट्टालिका इसको अतिक्रम करनेमें समर्थ होगी।"

वास्तवमें मुग़ल-सम्राटोंकी सौधमाला ऐसी सुन्दर है, कि जिसके सामने खड़े हो जाओ, वही मुग्ध कर लेती है। चित्त में ऐसाही आता है, कि पृथ्वी पर इसकी तुलनाका कोई घर न होगा। वास्तवमें एक-एक गृह एक-एक विशेष गुणके कारण जगत्में अतुलनीय है।

दिल्लीके पासही एक पर्वत है। अँगरेज़ोंने विहार करने के लिये, पर्वतको काटकर उसपर एक सुन्दर राजपथ निर्माण किया है। वह तरङ्गोंकी भाँति कहीं पर ऊँचा और कहीं पर नीचा है। उसके पासही सिपाही-युद्ध की यादगार और अशोक-स्तम्भ विराजमान है।

नई दिल्लीके 'दिल्लीद्वार'से दक्षिण ओरको चलनेपर पुरानी दिल्ली मिलती है। वह १० मील लम्बी और ६ मील चौड़ी है। राजपथके वामपार्श्व से, ४२ फ़ीट ७ इञ्च ऊँचे एक खण्ड प्रस्तरका अशोकस्तम्भ उच्चासनसे पथिकको आकर्षित करता है। उसके पीछे इन्द्रप्रस्थ है। उसी स्थानपर एक दिन पाँचों पाण्डवोंने राजसूय महायज्ञ किया था। उनके प्रबल प्रतापके साथही उनकी राजधानी भी अन्तर्हित होगई है। विषम समय-

संग्राममें सभी विलुप्त हो गया है। यहीं पर ऊँची पत्थरकी प्राचीर और खाईसे परिवेष्टित "पुराना क़िला" है। यहाँ एक दिन हुमायूँ, अकबर और जहाँगीरने प्रबल प्रताप विस्तार किया था। इस समय यह विध्वंसप्राय है। और भी आगे बढ़ने पर, अकबरके जनक-जननीका समाधि-मन्दिर है। समुदय पुरानी दिल्ली और उसके पूर्वका पर्वत, पठान नृपतिगणके ध्वंसावशेष प्रासाद, दुर्ग और समाधि-मन्दिरोंसे परिपूर्ण है। कहाँतक लिखा जाय? उनकी शोचनीय अवस्थाको देखकर प्राण व्याकुल होने लगे! मनमें ऐसा ख़्याल हुआ, मानों पठान-नृपतिगण उन गले हुए और परित्यक्त मन्दिरोंसे अपने कङ्काल हस्त उठाकर कहते हैं,—"हाय, यदि हम हिन्दू-मुसल्मानोंको सौहार्द्दसे सम्मिलित करते, और भारतवर्षको महाशक्तिशाली बनानेका प्रयास करते, तो यह दुरवस्था प्राप्त न होती।" क्रम से हम लोग प्राचीन हिन्दुओंकी दिल्लीमें पहुँचे। वहाँ एक दिन हस्तिनापुर था, भीष्म और अर्जुनका लीलाक्षेत्र था। वहाँ इस समय उनकी विषादमयी स्मृतिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसके पीछे वहाँ तामसी निशाके आरम्भकालमें पृथ्वीराजका दुर्ग और राजधानी थी। उस दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी विद्यमान है। उसके बीचमेंही, प्रथम मुसल्मान सम्राट्ने कुतुबमीनार बनवाया था। वह पहले २६२ फ़ीट ऊँचा था। उसके सिरका कुछ अंश उतार लेने पर भी, वह अब २४२

फ़ीट ऊँचा रह गया है। जगत्‌में यही सबसे ऊँचा स्तम्भ है। फिर भी, मिस्र और इटलीके दो स्तम्भ इससे भी ऊँचे हैं। फ़र्गुसन साहबने लिखा है,—"मिस्र और इटलीके स्तम्भों के विद्यमान होनेपर भी इसकी कल्पना ऐसी सुन्दर है, और इसका सौन्दर्य्य इतना अधिक है, कि जगत्‌में इस प्रकारके जितने स्तम्भ हैं, उन सबको यह अतिक्रम कर गया है।" स्लोमिन साहबने लिखा है,—"यह इतना सुन्दर है, कि देखनेपर हृदय आनन्दसे विह्वल हो जाता है। पृथ्वी पर मक़बरोंमें जिस प्रकार ताजमहल है, उसी प्रकार स्तम्भ-समूहमें कुतुब-मीनार है। दोनोंही अतुलनीय और अद्वितीय हैं।" यह स्तम्भ हिन्दुओंके हाथसे निर्माण हुआ था। इसके पासही लोहेका एक स्तम्भ खड़ा है, जिसके विषयमें पहले अध्यायमें लिखा जा चुका है। बॉल साहबने लिखा है,—"ऐसा वृहत् स्तम्भ कुछ वर्ष पहले सर्वापेक्षा वृहत् शिल्पशालाओंमें भी बनना असम्भव था। ऐसे स्तम्भ बनानेवाली शिल्पशालायें पृथ्वीपर थोड़ीही हैं।" पृथ्वीराजके मन्दिर इत्यादि तोड़कर मुसल्मानोंने मसजिद बनवाई है। उसके पत्थरोंपर अब भी बहुतसे हिन्दू-चिह्न विद्यमान हैं। कहीं पर ग्वाल लोग मक्खन निकाल रहे हैं, बछड़े दूध पी रहे हैं, ग्वाले दूध उठाये लिये जा रहे हैं; परन्तु सबही मस्तकविहीन हैं। सम्भव है, कि मुसल्मानोंने इस भयसे कि मूर्त्तिपूजा आरम्भ न हो जाय, उनके सिर तुड़-वाकर मसजिदमें लगवा दिये होंगे। एक स्थान पर एक गुम्बद

के भीतर के भाग में, मस्तकविहीन बहुत सी बालखिल्य * मूर्त्तियाँ वृत्ताकार में नृत्य कर रही हैं; मानों शिक्षित भारतवासियों की प्रतिकृति प्रकट कर रही हैं। हमलोग शोक-सन्तप्त हृदय से हिन्दू-दिल्ली के दर्शन करने लगे। वह मानों विषादपूर्ण स्वर से कहने लगी,—"जिस समय गौरव-गरिमा से चमक रही थी, जिस समय बाहुबल से यवनप्लावन को निवारण कर सकती थी, स्वाधीनता की रक्षा कर सकती थी, उस समय भारत के हिन्दू कहाँ थे? उस समय तो वह लोग मेरे प्रति ईर्षा-विद्वेष प्रदर्शन करते थे! और आज मैं दुःख में पड़ी हूँ, दुर्दशाग्रस्त हूँ, इसीसे मुझे देखने आये हो? क्या तुम्हारे हृदय में मर्मवेदना हुई? हिन्दू के भी कहीं हृदय होता है? फिर मर्मवेदना कैसी? सहानुभूति कैसी? जाओ मेरी नीरवता, निर्जनता को भङ्ग न करो; मेरे तत्त्व, मेरे अतीत गौरव का अनुसन्धान मत करो।"

---

* बालखिल्य लोग ऋषि थे। ये ब्रह्मा के बालों से पैदा हुए थे। आकार में अँगूठे के बराबर और संख्या में ६० हज़ार थे।

चौदहवाँ अध्याय।

अफ़ग़ानिस्तान।

Brother is a memorial of the father. Though he has acted ungratefully, I can be no other than forbearing. —**Akbar.**

बौद्धयुग में भारतवासियों ने अफ़ग़ानिस्तान में आधिपत्य और बौद्धधर्म विस्तार किया था। गौरव के दिनों में, सिन्धु नदी को पार करना हिन्दुओं के पक्ष में दोषावह नहीं था; इसी कारण हिन्दू वहाँ बहुतसे उपनिवेश स्थापन करने में समर्थ हुए थे। अफ़ग़ानिस्तान के पश्चिम में एक वामियान प्रदेश है, उसके पर्वत पर बहुत सी गुफ़ायें हैं। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"उनमें से बारह हज़ार गुफ़ाओंका नाम समाज था। बहुत पहले मनुष्यों ने पर्वत काट कर ये सब गुफ़ायें बनाई थीं। वहाँ पत्थर की बनी हुई तीन सुवृहत् मनुष्य-मूर्त्तियाँ हैं। एक २४० फ़ीट, दूसरी १५० फ़ीट और तीसरी ४५ फ़ीट ऊँची है। आश्चर्य का विषय

है, कि एक गुफ़ाके भीतर एक मनुष्यकी मृतदेह यत्नपूर्वक रक्खी हुई है। प्राचीन पुरातत्त्वविद्‌गण भी नहीं कह सकते हैं, कि वह किसकी देह है; परन्तु यह अनुमान करते हैं कि, वह अति प्राचीनकालसे वहाँ रक्खी हुई है। पुराकालमें मनुष्य मृतदेहपर ऐसा कोई लेप लगाते थे, जिससे मृतदेह किसी कालमें भी विध्वंस नहीं हो सकती थी। अबोध लोग मृतदेह के नष्ट न होनेको दैवकार्य समझते थे।" ये सब गुफ़ायें दोमंज़िला हैं। जिस पर्वत पर ये सब गुफ़ायें हैं, उसी पर्वत पर एक प्राचीन नगरका ध्वंसावशेष विद्यमान है। इन सब गुफ़ास्थित मूर्त्तियों और उनके समाज नाम द्वारा प्रमाणित होता है, कि वह बौद्ध-विहार थे। पूर्वोक्त पत्थरकी मूर्त्तियोंमेंसे एक का नाम 'शाकमम' है। वह शाक्यमुनिका अपभ्रंश है। इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं है, कि यह सब भारतवासियों की कीर्त्ति थी। हाय, एक दिन भारतवासी मृतदेह को विध्वंस न होने देनेका उपाय भी जानते थे! सम्भव है, मिस्रने भारतसेही इसकी शिक्षा पायी हो।

अफ़ग़ानिस्तानके पूर्व की ओर, मर्दान दुर्गसे ८ मील उत्तरमें, पर्वत पर बौद्ध-नगरी और पत्थरके मन्दिरोंके भग्नावशेष एवं अन्यान्य स्थलों पर भी बौद्ध-गुफ़ा और विहार विध्वंस अवस्थामें विद्यमान हैं। मर्दान से ६ मील दूर, बौद्ध महाराज अशोक-वर्द्धन के अनुशासनस्तम्भ अब भी खड़े रहकर

भारतके अतीत गौरवके लिये रो रहे हैं, और वर्त्तमान वंशावलीको धिक्कार रहे हैं।

भारतके महागौरवके दिनोंके समय-स्रोतमें विलीन होने पर भी, बौद्धयुगके अतीत की आड़में अदृश्य होनेपर भी, ब्राह्मण राजाने सैकड़ों वर्ष तक काबुलके सिंहासनको अलंकृत किया है, और हिन्दुओंने वहाँ बहुतसे उपनिवेश स्थापन किये हैं। हाय, हमलोग आज इतने अधःपतित हो गये हैं, कि अपने पूर्वपुरुषोंके गौरवकी कल्पना की सीमा निरूपण करनेमें भी असमर्थ हैं! इसलाम-धर्मने एशियामें कौनसा महाविप्लव संघटित नहीं किया! कौनसा महानिष्ट साधन नहीं किया।

जिस समय विद्रोहीगण बङ्गाल और बिहारमें शिर उठा रहे थे, उस समय सम्राट्के भ्राता मिर्ज़ा मुहम्मद हकीम काबुलके शासनकर्त्ता थे। वह सम्राट्के साम्राज्य और ऐश्वर्य्यको देखकर ईर्षासे जर्जरित होरहे थे। उन्होंने सोचा, कि अकबर इसलाम-धर्मसे च्युत होगया है, इस कारण बङ्गाल और बिहारके मुसल्मान उसके विरुद्ध विद्रोही हुए हैं। यह ध्यान आतेही, उन्होंने भी अकबरके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और समझ लिया, कि बङ्गाल-बिहारका विद्रोह भारतमें संक्रामित हो जायगा और वह अनायासही उनको सिंहासनच्युत करके सिंहासन पर बैठनेमें समर्थ होंगे। यह समझ कर, उन्होंने विद्रोहियोंको उत्तेजित और उत्साहित करनेके लिये, सुदूर बिहारमें भी एक दूत भेजा और एक दल प्रबल सेना लेकर

द्वितीय बार पञ्जाब पर आक्रमण किया। उस समय राजा मानसिंह पञ्जाबके शासनकर्त्ता थे। वह सम्राट्के भ्रातृ-स्नेह से अच्छी प्रकार अवगत थे। इसी कारण उन्होंने महाशक्तिशाली होनेपर भी, सम्राट्की बिना अनुमति, उनके भाईसे युद्धमें लिप्त न होकर, क्रमसे पीछे हटकर, लाहौरके दुर्गमें आश्रय लिया। हकीमने भी सुविधा देखकर, आगे बढ़कर महापराक्रमसे दुर्ग अवरोध कर लिया।

यह संवाद पाकर, कि उनके प्यारे भाईने फिरसे अनिष्टाचरण किया है, सम्राट् बहुत दुःखित हुए। बोले,—"यदि पुत्र दुर्व्यवहार करे, तो वह उचित दण्ड द्वारा सत्पथ पर लाया जा सकता है, किन्तु भ्राताके साथ एक बार विरोध हो जाने पर पुनर्मिलन नहीं होता है।" इसका कारण यही है, कि हम अपने पुत्रके अपराधको जिस प्रकार उदारतासे क्षमा कर देते हैं; भ्राताकी त्रुटिको उसी सहृदयता के साथ क्षमा करनेको प्रस्तुत नहीं रहते हैं। स्नेहाधिक्यके कारण उसका दुर्व्यवहार सहजमेंही भूल जाता है, और इसकी त्रुटिसे हृदय का पोषण होता है। सम्राट्ने सोचा, कि यदि मैं आपही वहाँ जाऊँ, तो बिना रुधिरपातकेही आपसमें मेल हो जायगा और सौहार्द भी बना रहेगा। यह समझकर वह आपही पञ्जाब जानेके अभिलाषी हुए। उन्होंने राय रायसिंह प्रभृति सेनापतियोंको आगे भेजकर कह दिया,—"आगे चलो, परन्तु मेरे न आने तक भ्रातासे युद्ध कदापि न करना।" पीछे सम्राट्

आगरेसे यात्रा करके दिल्ली, कुरुक्षेत्र, सरहिन्द और नवरोह-तासगढ़ होते हुए सिन्धु नदीके किनारे पहुँचे। हकीमने ज्योंही सुना, कि सम्राट् आरहे हैं वह काबुलको चला गया। सम्राट् सिन्धु नदीको नौकाओं द्वारा पार कर गये और पश्चिम से आक्रमण का खटका न रहे, इस इच्छासे उन्होंने अटकमें एक दुर्ग निर्माण करनेका आदेश दिया। वह दुर्ग १५८३ ई० में निर्मित हो गया। सिन्धु नदीके मध्यसे, पर्वतके ऊपर यह वृहत् दुर्ग बड़ाही मनोहर प्रतीत होता है। यह ज्ञात होता है, मानों हर्म्यमाला पर्वत-गात्र पर तह पर तह रखने से बनाई गई है। दुर्गकी सबसे नीचेकी तह सिन्धु-सलिलसे विधौत होरही है और सबसे ऊपर की तह मानों नीलाकाश को स्पर्श कर रही है।

उस समय हिन्दूके लिये सिन्धु नदीका पार करना अति गर्हित कार्य्य समझा जाता था। सबसे पहले राजा मानसिंह ने कहा, कि मैं इस नदीको पार नहीं कर सकूँगा। सम्राट् ने यह बात सुनतेही हँसकर एक कविता रचना करके राजा के पास भेज दी। वह इस प्रकार है:—

सबै भुम्म गोपाल की यामें अटक कहा
जाके मनमें अटक है सोई अटक रहा।

वास्तवमें है भी ऐसाही, कि जिसके मनमें अटक है, उसके लिये ठौर-ठौर पर अटकाव है। जिसके मनमें अटक

नहीं है उसके लिये कहीं अटक नहीं है, क्योंकि सारी पृथ्वी ही तो भगवान् की है।

इस कविता से प्रतीत होता है, कि सम्राट् दुर्दान्त राजपूतोंको कैसे मधुरभावसे परिचालित करते थे। यदि वह आज्ञा देते, तो अवश्य ही उसकी उपेक्षा होती; परन्तु इस कविता से उद्देश सिद्ध होगया। राजा मानसिंह युक्तिसे पराजित होकर, बहुत सी हिन्दू-सेना और सेनापति लेकर सिन्ध पार करने को आगे बढ़े। कोई-कोई यह भी भावना कर सकते हैं, कि जब उनकी बुआके साथ सम्राट् का विवाह हो चुका था, तब भी क्या उनका हिन्दुत्व बना ही रहा था? परन्तु वास्तवमें राजा मानसिंह अत्यन्त उदार-हृदयके हिन्दू थे। उन्होंने बहुत से स्थानोंमें मन्दिर बनवाकर मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की थी। सम्राट्ने उनसे ईश्वर-धर्म ग्रहण करनेको अनुरोध किया था, जिस पर उन्होंने उत्तर दिया,—"मैं केवल दो धर्म जानता हूँ अर्थात् हिन्दू और मुसल्मान धर्म। तीसरा धर्म कोई है कि नहीं, यह मुझे ज्ञात नहीं। यदि ईश्वर-धर्म ग्रहण करनेसे आपका यह उद्देश्य हो, कि आपके प्रति श्रद्धा प्रदर्शन की जाय, तो उसका ग्रहण करना निष्प्रयोजनीय है। आत्मोत्सर्गका प्रमाण मैं बहुत बार दे चुका हूँ। अब और देनेकी ज़रूरत नहीं।" केवल मानसिंह ही नहीं, राजा टोडरमल इत्यादि बहुतसे हिन्दू-राजा सेना सहित बारम्बार सिन्ध पार गये थे।

राजा मानसिंह सेना सहित काबुलके निकटवर्त्ती होने लगे।

हकीमने भयभीत होकर, सम्राट्की मनस्तुष्टिके लिये, उनके पास दूत भेजा। सम्राट्ने दूतसे कहा,—"मैं भाई को क्षमा करने के लिये प्रस्तुत हूँ, परन्तु वह अपने अतीत दुष्कार्य के लिये अनुताप करे,और भविष्यत्में ऐसा गर्हित काम न करने की प्रतिज्ञा करे।"

हकीम इस सहृदय प्रस्ताव पर भी सम्मत न हुआ। वह दुराशाकी पापमूर्त्ति पर मुग्ध होगया। उसने अकस्मात् मुग़ल-सेना पर आक्रमण किया और सम्पूर्ण रूपसे पराजित होकर भाग गया। सम्राट् के सेनापतियोंने उस पर आक्रमण करके उसको निहत करने की अभिलाषा की। सम्राट् ने कहा,—"भ्राताको निहत करना कभी उचित नहीं है। भ्राता पिताका स्मृति-चिह्न है, भ्राताको देखकर पिताकी याद आजाती है। इसी कारण, यद्यपि उसने अति कृतघ्नताका व्यवहार किया है तथापि उसको क्षमा करना ही मेरा परम कर्त्तव्य है।"

हकीम काबुल छोड़कर भाग गया। सम्राट्ने काबुल पर अधिकार कर लिया। यहाँ संवाद मिला कि भाई फ़क़ीर होकर दीनहीन भावसे कालातिपात करनेको उद्यत हुआ है। सम्राट् यह सुनकर बड़े दुःखित हुए। "भ्राता दीनहीन होगा और मैं अतुल ऐश्वर्यको उपभोग करूँगा!" इस चिन्ता को सम्राट् सह न सके। उन्होंने आपही भाई के पास दूत भेजा। जो भाई बारम्बार उनके साथ दुष्टता करता था, उसको ही दयालु सम्राट् पूर्व्ववत् काबुल के शासनकर्त्ता-पद पर नियुक्त

करके, स्वदेशको लौट आये । खैबर घाटीमें होकर, लाहौर-दिल्ली होते हुए फ़तेहपुर-सीकरी आगये ।

इस समय सम्राट्ने प्रयागमें, गङ्गायमुनाके सङ्गम पर, एक वृहत् दुर्ग निर्माण किया । वह गङ्गायमुनाके बीच में है । गङ्गा-यमुनाने अपनी दोनों बाहें बढ़ाकर दो ओरसे उसको वेष्टन कर लिया है । शेष दो ओर गम्भीर खाई इस भाँति शोभाय-मान हैं;मानों दुर्गने खाई रूपी माला गलेमें पहन रक्खी हो । दुर्गकी प्राचीर पत्थरसे बनी है । राजप्रासाद दुर्गके भीतर नदी के तीरपर है । सम्राट्ने इसका नाम इलाहाबाद रक्खा । उस समयसे यहाँ बहुतसे लोग रहने लगे और वर्त्तमान मनोहर नगर की सृष्टि हुई । इस दुर्गके बीचमें ३० फ़ीट ऊँचा पत्थर का स्तम्भ, अशोकवर्द्धनके अनुशासनको वक्ष पर लिये हुए, विषादपूर्ण भावसे खड़ा है ।

सम्राट्ने सन् १५८० ई० में, साम्राज्यके प्रधान कर्मचारियों और जागीरदारोंको आदेश दिया,—"समग्र साम्राज्यके अधि-वासियोंके नामोंको तालिका प्रस्तुत करो और प्रत्येकके जीवनो-पायका निर्णय करो । जिनके पास कोई जीवनोपाय नहीं हो, उनको हमारे राज्य से निकाल दो ।" सब से पहले यही जनसंख्या हुई थी । इस आदेशने सभीको किसी न किसी अनिन्दनीय उद्योगमें लगा दिया ।

सन् १५८४ ई० में, हकीम ने काबुल में प्राण त्याग किये । उसके अमात्योंने काबुल में स्वाधीन और स्वतन्त्र राज्य स्थापन

करने की दुराशा से अबदुल्ला से सहायता माँगी। अब्दुल्ला उस समय मध्य एशिया का अत्यन्त क्षमताशाली नरपति था। वह इस अवसर पर काबुल को स्वराज्यभुक्त करनेकी चेष्टामें लगा। सम्राट्ने उसका आशय समझकर, पञ्जाबके उस समयके शासनकर्त्ता, राजा मानसिंहको सेनासहित काबुल जानेका आदेश दिया। आप भी फ़तेहपुर-सीकरीसे चलकर नवरोहतासगढ़ में आगये। वहाँसे सिन्ध नदीके किनारेके अटकके दुर्ग तक और सिन्धके उस पारसे खैबर घाटीमें होकर काबुल तक, सेना के आने-जानेके उपयुक्त एक विस्तृत राजपथ बनानेकी आज्ञा देकर जलालाबाद पहुँचे।

राजा मानसिंह ने शीघ्र ही काबुल पहुँचकर, अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के प्रभाव से, सम्भ्रान्तगण की शक्ति खर्व कर दी। पुत्र जगतसिंह के हाथ में काबुल का शासनभार अर्पण करके, हकीम के दोनों पुत्रों को साथ लेकर, आप सम्राट् के पास पहुँचे। सम्राट् का लक्ष्य सदैव यही था, कि सब को आकृष्ट करके सौहार्द में आबद्ध करें। काबुलके सम्भ्रान्तगणके प्रति अति सहृदयता और सौजन्य प्रकाशित करके, सब को सौहार्द में आबद्ध करके, राजा मानसिंहको काबुलका शासनकर्ता नियुक्त करके, सम्राट् अटक में आगये। इस स्थान से सम्राट् ने चार सेनायें चारों दिशाओंको भेजीं (१५८६ ई०)। एक दल राजा भगवानदास प्रभृतिके अधीन काश्मीर को, दूसरा दल राजा बीरबल और जैनखाँ के अधीन यूसुफ़ज़ई लोगोंके

विरुद्ध, तीसरा दल राय रायसिंह प्रभृति के सेनापतित्व में बलूचियों के विरुद्ध, और चौथा दल राजा मानसिंह के अधीन ख़ैबर घाटी के उपद्रवकारियों को शासन करनेके लिये भेजा।

मुग़ल-सेनाने राजा बीरबल और जैनख़ांके नेतृत्वाधीन होकर पहाड़ी प्रदेशमें प्रवेश किया। उसके सौन्दर्य, गाम्भीर्य और मनोहरता पर कवि बीरबल मुग्ध होगये। इस प्रदेशकी शोभा काश्मीरकी तुलना की है, जलवायु अति उत्कृष्ट हैं; परन्तु दुर्गमता और भीषणताकी तुलना और कहीं नहीं पायी जाती। राजा बीरबल आगे बढ़ने लगे, परन्तु आगे बढ़नेको पथ नहीं था, शिविर-स्थापनको कोई निरापद स्थान नहीं था। पर्वत के ऊपर अति अप्रशस्त और विपज्जनक पथ, कहीं ऊपरसे नीचे और कहीं नीचेसे ऊपर चला गया है। कौन कह सकता है, कि यह अरण्य कहाँ से आरम्भ हुआ है, और कहाँपर शेष हुआ है? बीच-बीचमें अन्धेरी गुफायें, जिनाका पता नहीं है कि कितनी गहरी हैं, पथ को रोक लेती हैं। वेगवाही नदियाँ कहीं तो बहती-बहती अदृश्य हो जाती हैं, और कहीं फिर निकलकर चञ्चल बालकोंकी भाँति क्रीड़ा करती हुई दिखाई देती हैं। राजा बीरबल मुग़ल-सेना को लिये हुए, कभी अति उच्च पर्वत पर चढ़ते और कभी शस्यश्यामल समतल क्षेत्र पर उतरते हुए चले जाते थे। कहीं-कहीं ऐसे स्थानों पर पहुँच जाते थे कि सौ हाथ दूर की वस्तुको भी न देख सकते थे। वह

ज्यों-ज्यों आगे बढ़ने लगे, उनको स्वाधीनतापरिपुष्ट, बलिष्ठ, साहसदृप्त असंख्य पार्वतीय जाति के लोग दल के दल, दूर-दूर, आस-पास, भिन्न-भिन्न पर्वत-शृङ्गों पर द्रुत वेग से जाते-आते दिखाई देने लगे;तथापि राजा बीरबल सेना सहित आगे बढ़ने लगे और क्रम से विपद् के करालकवल में प्रवेश करने लगे। राजाने विपक्षी लोगोंको देखकर, अवसर प्राप्त होते ही, उन पर आक्रमण करके उनको विध्वंस करना आरम्भ कर दिया। शत्रुगण भी इसी प्रकार अलक्षित भावसे आक्रमण करके मुग़ल सेना का संहार करने लगे। मुग़लसेना कभी पराजित, कभी विपद्ग्रस्त, कभी परिश्रान्त होकर पीछे हटने लगी; एक पथ परित्याग करके अन्य पथ पर जाने लगी; एक पर्वत छोड़ कर दूसरे पर उपनीत होने लगी; तथापि राजा बीरबल कर्त्तव्य-सम्पादन में उदासीन नहीं हुए, साहसहीन नहीं हुए। उन्होंने वह दुर्गम प्रदेश परित्याग नहीं किया। जैनख़ाँ उस प्रदेशकी अवस्था देखकर सन्धि-स्थापनके लिये व्याकुल होगया, किन्तु साहसदृप्त राजा बीरबलने उस प्रस्ताव के पक्षमें सम्मति न दी। उन्होंने कहा,—"यदि ऐसा करोगे तो, असभ्य जाति में सभ्यता किस प्रकार विस्तार करोगे? परिश्रम और अध्यवसाय बिना कभी कोई महत् कार्य सुसम्पन्न हुआ है? असम्मानकर सन्धि करके, सम्राट् को मुख किस प्रकार जाकर दिखलाओगे?" इस समय राजा बीरबल और जैनख़ां में झगड़ा हो गया, सैन्य-परिचालनके सम्बन्ध में मत-भेद

होगया, तथापि राजा अपनी शक्ति अनुसार कर्त्तव्य पालन करते ही रहे। एक बार संवाद मिला, कि उनपर आक्रमण करने के लिये पहाड़ी जाति पासही इकट्ठी हो रही है। महासाहसी बीरबल अपनी सेना लेकर उनके ऊपर आक्रमण करने को चले; परन्तु कहीं शत्रुका चिह्न पर्यन्त न मिला। तब वह एक पहाड़ी पथ से चलने लगे। अकस्मात् असंख्य विपक्षी उनके ऊपर भीम पराक्रम से कूद पड़े। असंख्य तीरों और पत्थरों द्वारा उनको विध्वंस करने लगे। इस पर्वत-रन्ध्र में, बहुत सी मुग़लसेना जीवन विसर्जन करके, भीतविह्वल और विशृङ्खलित होकर भागी। रजनी के अन्धकार में बहुत सी सेना राह भूलकर शत्रुओं के गाँव में ही पहुँच गई। ऊषा के उदय में, शत्रुगणने यह हाल देखकर मुग़लसेना पर भीषण पराक्रम से आक्रमण किया। राजा बीरबल अमानुषिक वीरत्व प्रदर्शन करके भी सेनाकी रक्षा न कर सके। पहाड़ी जातिने एकदम मुग़लसेनाको विध्वंस कर डाला, राजा बीरबल मारे गये। जैनख़ाँकी सेना अनायासही नष्ट होगई। वह अपने प्राण लेकर भाग गया और बहुत क्लेशसे अपने जीवनकी रक्षा करके अटक पहुँचा।

सम्राट् बीरबल को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। उनका मृत्यु-संवाद सुनकर शोक-सागरमें निमग्न हो गये। उनके नयनयुगल अश्रुधारा वर्षण करने लगे। रसना नीरव और निस्पन्द होगई। शरीर अवसन्न होकर शय्या पर लोटने लगा।

दो दिन तक कोई आहार ग्रहण नहीं किया। किसीसे बात भी नहीं की। किसीसे साक्षात् भी नहीं किया। दो दिन तक सम्राट् के पास जाने का किसी को साहस न हुआ। कोई सान्त्वना करने में समर्थ न हुआ। दिल्लीश्वरसा व्यक्ति एक सामान्य बन्धु के लिये, एक हिन्दू के लिये, कितना शोकातुर हुआ! दो दिन पीछे सम्राट् कुछ सुस्थ हुए। जैनखाँ आत्म-रक्षा करने में समर्थ हुआ, परन्तु प्रियबन्धु की रक्षा न कर सका, इस कारण सम्राट् उससे बहुत असन्तुष्ट हुए। वह सम्राट् का प्रधान सेनापति और धात्रीपुत्र था, तथापि सम्राट् ने उसका मुँह देखना अस्वीकृत किया। उस को दरबार में उपस्थित होने के सम्मान से भी वञ्चित कर दिया। सम्राट् ने पहाड़ी जाति को उचित दण्ड देने के लिये स्वयं जाने की इच्छा प्रकट की; परन्तु अमात्यगणने बहुत कुछ समझा-बुझा कर उनको उस संकल्पसे हटाया। परन्तु फिर भी उन्होंने कुमार मुराद और राजा टोडरमल को उन लोगोंके विरुद्ध अग्रसर होनेका आदेश दिया। राजाने विनीतभावसे कहा,—"अति गुरुतर अभियानों पर ही राजकुमारों को यह नियोग शोभा देता है। ऐसे सामान्य कार्यके सम्पादन करने में उनका नियुक्त करना विधेय नहीं है। ऐसा सामान्य कार्य तो राज्य के किसी भृत्य द्वारा अनायासही होसकता है।" सम्राट्ने राजा टोडर-मल का मनोभाव समझकर, कुमार के बदले राजा मानसिंह को नियुक्त किया। मानसिंह के स्थान में राजा भगवानदास

को काबुल का शासनकर्त्ता नियुक्त कर दिया। सम्राट् ने साम्राज्य के दो सर्वप्रधान सेनापतियों को इस अभियान में प्रेरण किया था, इसीसे इसका गुरुत्व प्रतीत होता है।

कुछ दिन पीछे संवाद मिला, कि कुछ लोगों ने नगरकोट के पर्वत पर योगियों के साथ बीरबल को देखा है। सम्राट् यह संवाद पाकर पुलकित होगये, बन्धु के दर्शन की कामना से अधीर होगये, उनके अनुसन्धान के लिये नगरकोट के कर्मचारियों के पास आदेश भेजा। उन्होंने यथासमय लिख भेजा, कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है जिससे निश्चय हो कि राजा को किसी ने देखा है। सम्राट् इस संवाद को पाकर दुःख से म्रियमाण होगये। कुछ दिन व्यतीत होने पर फिर संवाद आया, कि किसीने कालिञ्जर में राजा बीरबल को देखा है। सम्राट् फिर आशा से उत्फुल्ल होगये, वहाँ के कर्मचारियों को बीरबल के अनुसन्धान के लिये आज्ञा लिख भेजी। उन्होंने उत्तर लिखा, कि कुछ मनुष्यों ने सत्यही राजा के दर्शन किये थे, परन्तु उसके पीछे राजा की मृत्यु होगई। इस संवाद से सम्राट् फिर विषादसागर में निमग्न होगये, राज्य-कार्य परित्याग कर दिया, शोक-वेष धारण कर लिया।

राजा टोडरमल ने काबुल नदी पार करके सोयातकी सीमा पर और राजा मानसिंह ने वहाँ से कुछ दूर पर अपनी सेना स्थापन की। वहाँ से उन्होंने शत्रु-देशपर पुनःपुनः आक्रमण करके, उनके नाना स्थानों में सेना स्थापन करके, विप-

त्तियों के खेती के काम को बन्द करके, उनके घर और गाँवों को भस्मीभूत करके, तीन वर्षके कठोर परिश्रम से उनको ऐसा विध्वंस और क्षतिग्रस्त किया, कि उन्होंने कुछ-कुछ वश्यता स्वीकार करली। परन्तु दूसरे सम्राटों के समयों में वह फिर दुर्द्धर्ष और क्षमतापन्न होगये। उस समय वह लोग काबुल और फ़ारस-राज्य के साथ भी शत्रुता करने से कुण्ठित नहीं होते थे; मुग़लों के आक्रमणसे भी भीत नहीं होते थे। वर्त्तमान समय में, वह लोग अपने अतुल साहस और अपरिसीम बलवीर्य का परिचय अँगरेज़ गवर्नमेण्ट को भी दे चुके हैं। भारत के द्वारदेशस्थित अति साहसी और बलदृप्त जाति में सभ्यता विस्तार हो जाती, और भारत के साथ वह एकता में ग्रथित होजाते, तो भारत का कैसा कुछ महोपकार होता!

सम्राट् जिस अबदुल्लाके लिये उद्विग्न होरहे थे, उसने भी, आत्मद्रोह में निमग्न होकर, सम्राट् की प्रीति क्रय करने के लिये बहुत से उपहारों के साथ अपना दूत भेजा। सम्राट् ने अपनी असीम क्षमता और अतुल ऐश्वर्य दिखलाने की इच्छासे और इस प्रकार से अबदुल्ला को भारत के आक्रमण से निवृत्त करनेके अभिप्राय से, कुछ दिन तक दूत को अपने पास रक्खा। पीछे बहुत से प्रति-उपहार देकर उसको विदा किया। दूत ने ईरान पहुँचकर कह सुनाया, कि सम्राट्ने कौन-कौनसे विस्तृत प्रदेश बाहुबलसे अपने अधिकार में किये हैं, कौन-कौनसे प्रबल

नरपतियोंने उनके सामने मस्तक अवनत किया है—ये सब बातें उसने अति सौहार्द और मधुर भाव से अवदुल्ला से कहदीं। उसने एक ओर तो सम्राट्के सौहार्दकी सूचना दी और दूसरी ओर उनकी अपरिसीम शक्ति और उनके अतुल ऐश्वर्य्य का परिचय प्रदान करके शाह ईरान को शङ्कित किया।

हिमालय के पहाड़ी प्रदेश में बहुत से हिन्दू राजा प्रबल प्रताप से हिन्दू-शक्ति की रक्षा कर रहे थे। उनके पास एक लाख पैदल और दस सहस्र अश्व-सेना थी। सम्राट् ने उनको वश्यता में आनयन करने के लिये जैनखाँ को भेजा। सम्राट् का यश इस समय सर्वत्र सुप्रतिष्ठित होरहा था। हिन्दू राजाओं ने सेनापति के साथ सम्राट् के पास आकर उनकी वश्यता स्वीकार की।

सम्राट् जिस समय भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रान्त में अवस्थान करते थे, उस समय भी वहाँ से विस्तृत साम्राज्य के विविध कार्य सम्पादन करते थे और समुदय आवश्यकीय आदेश सर्वत्र भेजा करतेथे। उनकी अनुमतिके विना कोई काम नहीं होता था।

इसी समय राजा भगवानदास उन्माद-रोगग्रस्त होगये। सम्राट् इस संवाद से अत्यन्त दुःखित हुए, उनके वीरत्व और उनकी उदारता का कीर्त्तन करने लगे। उनकी चिकित्साके लिये एक हिन्दू और एक मुसल्मान दो सुप्रसिद्ध चिकित्सक भेजे। उनके स्थान पर राजा मानसिंह को फिर काबुल का शासनकर्त्ता

नियुक्त किया। इसके पीछे राजा बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के शासनकर्त्ता के पद पर अलंकृत हुए थे।

सम्राट् के दस स्त्रियाँ थीं। उनमें से राजा भगवानदास की भगिनी जोधाबाई अथवा मरियम उज्जामिनी सम्राट् की प्रियतमा महिषी थीं। इन्हीं के गर्भ से सम्राट् जहाँगीर ने जन्म-ग्रहण किया था। सम्राट् ने बैरमखाँ की विधवा से भी विवाह किया था। वह अति सुन्दर कविता कर सकती थी।

सम्राट् के बहुत सी स्त्रियाँ थीं, यह सुनकर कोई भ्रूकुञ्चित न करे। राजा मानसिंह की स्त्रियों की संख्या सुनने से विस्मित होना पड़ता है। उनके १५०० स्त्रियाँ थीं, जिनमें से ६० राजा के साथ सती हुई थीं। अकबर के एक मन्सबदार के १२०० स्त्रियाँ थीं। रासिन दुर्ग के हिन्दू राजा के २००० रानियाँ थीं। फ़रिश्ता ने लिखा है,—"राजा ने सम्राटों के बहुभार्या रखने के एकाकी अधिकार में हस्तक्षेप किया था, इसीसे शेरशाह उसके ऊपर चढ़ गया था।" हुमायूँ और जहाँगीर के भी अकबर से अधिक संख्या में स्त्रियाँ थीं। मुसल्मान-समाज में अनेक राजाओं के सहस्राधिक रमणी होने का प्रमाण मिलता है। रमणियों की संख्या और महानगरी-सदृश वासभवन देखकर यही समझ में आता है, कि उनके स्वामी अपने पास उनके नाम, नम्बर और वयस इत्यादि के विषय में विस्तृत विवरण की पुस्तक रखते होंगे, नहीं तो उन सबका स्मरण रखना उस समय के विद्यावागीशों के लिये सम्भव नहीं था। कुछ भी

हो, उस समय के देखते अकबर की स्त्री-संख्या बहुत ही कम थी, इस में तनिक भी सन्देह नहीं है ।

सम्राट् के चार कन्यायें थीं । सम्राट् के अन्तःपुर में स्त्रियों और कन्याओं के अतिरिक्त, नाचने-गानेवाली, दासी, प्रहरी प्रभृति बहुतसी रमणियाँ रहा करती थीं । अबुलफ़ज़ल ने लिखा है, इन सब की संख्या ५००० थी । महिषीगण १०२८ से १६१० रुपये तक मासिक वृत्ति पाती थीं । सम्राट् शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब के समय में महिषीगण इस से भी अधिक वृत्ति पाती थीं । शाहजहाँ अपनी विमाता नूरजहाँ को दो लाख रुपये और महिषी मुमताज़महल को दस लाख रुपये देता था। औरङ्गज़ेब अपनी महिषी को १२ लाख रुपये वार्षिक देता था।

अकबर के अन्तःपुर में दासियाँ २) से ५१) रुपये तक मासिक वेतन पाती थीं । इनमें से किसी-किसी को मुहर्रिरी करनी होती थी । सम्भ्रान्त व्यक्तियों की स्त्री और कन्यायें इच्छानुसार सम्राट्के अन्तःपुर में आती-जाती थीं, और वहाँ राजमहिषीगण से महासमादर प्राप्त करती थीं । वह वहाँ अपनी इच्छानुसार महीनों तक रह सकती थीं ।

अबुलफ़ज़ल ने लिखा है, कि सन् १५८५ ई० में, सम्राट्का पारिवारिक व्यय ७७। लाख रुपये से अधिक था । इसके अतिरिक्त बहुतसा रुपया सैनिक विभाग से भी व्यय हुआ था । इस अन्तःपुर-विभाग के शीर्षस्थान पर हिन्दू राजा रायसाल दरबारी नियुक्त थे ।

अन्तःपुर में रमणियाँ ताश, पासे, शतरञ्ज और चन्द्रमण्डल प्रभृति क्रीड़ाओंमें समय अतिवाहित करती थीं। बदाऊनी ने लिखा है,—"सम्राट् अन्तःपुर में बहुत थोड़ी देर ठहरते थे, और अत्यल्प परिमाण में स्त्री-सहवास करते थे।" कभी-कभी वह स्त्रियों के साथ कुछ देर के लिये उपरोक्त क्रीड़ाओं में भी निमग्न होजाते थे अथवा अद्भुत साहबी परिच्छद परिधान कर सबको हास्यरस का उद्रेक करते थे।

सम्राट् पुरुषोचित क्रीड़ाओं के बड़े पक्षपाती थे। वह और उनके बन्धुगण द्रुतगामी घोड़ों पर सवार होकर, हाथों में सोने और चाँदी की लाठियाँ लेकर, भूमि पर रक्खी हुई गेंद को लक्ष्यस्थल पर लेजाने की चेष्टा करते थे और प्रतिपक्षी उसी तरह उसका निवारण करते थे। सम्राट् पलास की लकड़ी की गेंद को अग्नि में लोहितवर्ण की करके, किसी-किसी दिन रात को उससे भी खेलते थे। उनके हाथ की बहुमूल्य लाठीके टूट जाने पर घोड़े की पीठ पर से जो कोई उसे ले सकता था, उसको ही वह मिल जाती थी। वर्त्तमान समय में अँगरेज़ इत्यादि साहसी जातियों में जो पोलो का खेल प्रचलित है, वह अकबर की इस क्रीड़ा से ही निकलकर यूरोप में प्रचलित हुआ है।

सम्राट् किसी-किसी दिन प्रभात को अथवा प्रदोष को जङ्गली हाथी, भैंसे, व्याघ्र और हिरनों का शिकार करते थे। उनका बन्दूक का लक्ष्य अत्यन्त स्थिर था। सम्राट् जैसे अतुल साहसी थे, वैसे ही असाधारण बलशाली और अत्यन्त

क्लेशसहिष्णु थे। तलवार द्वारा भीषण वन्य व्याघ्र को निहत करते थे। कभी-कभी अभियान में प्रतिदिवस घोड़े की पीठ पर १६० मील तक चले जाते थे। वेगवान् नदी को घोड़े की पीठ पर चढ़े-चढ़े ही पार कर जाते थे। प्रतिदिन ३०-४० मील पथ पैदल चलते थे। मत्तमातङ्ग को वश में करते थे, उसकी सूँड़ के ऊपर पैर धरके उसपर सवार होते थे और स्वयं ही उसे चलाते थे। लिखा है, कि उद्दाम गजराज सम्राट् को देखते ही शान्त और वशीभूत हो जाते थे।

सम्राट् मत्तमातङ्ग का युद्ध, ऊटों की लड़ाई, भैंसे और व्याघ्र की लड़ाई, हिरनों की लड़ाई, उड़ते हुए कबूतरों की क्रीड़ा, मैंडक के साथ गौरैया चिड़िया की लड़ाई, मकड़े से मक्खियों का परित्राण इत्यादि क्रीड़ाओं को देखा करते थे। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों से बहुत से व्यक्ति आकर सम्राट्को भाँति-भाँति की क्रीड़ायें दिखलाते थे। बङ्गाली लोग उस समय भीषण लाठी की क्रीड़ा दिखलाकर सम्राट् को विस्मित करते और ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा दिखलाकर सब लोगों को मुग्ध करते थे। अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"कोई-कोई तमाशा करने वाला ऊपर आकाश में रस्सी फेंक कर, उसके ऊपर चढ़ कर अदृश्य हो जाता था। पीछे उसके हाथ-पैर कट-कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। यह देखकर उसकी स्त्री शोक से अधीर होकर अग्नि में भस्मीभूत होजाती थी। क्षणभर पीछे उसका स्वामी लौट आकर और उसकी स्त्री भी फिर जीवित होकर

दर्शकों के चित्त में विस्मयोत्पादन करते थे।" इब्न बतूता, एडवर्ड मिल्टन और जहाँगीर ने ऐसी-ऐसी आश्चर्यकारक क्रीड़ाओं को देख-देख कर अपनी-अपनी पुस्तकों में उनका उल्लेख किया है। बङ्गालियोंने जहाँगीर को एक दिन ऐसी कई विस्मयकर क्रीड़ायें दिखलाकर विस्मय से स्तम्भित किया था।

सम्राट् सर्व श्रेणी के मनुष्यों से मिलने के लिये बीच-बीच में आमोदोत्सव सम्पन्न किया करते थे। उन में बहुत से लोग निमन्त्रित किये जाते थे। उन मौक़ों पर बहुत से क्रीड़ा-कौतुक दिखलाये जाते थे। सम्राट् जिस समय इन क्रीड़ास्थलों में उपस्थित रहते थे, उस समय भी बहुत से गुरुतर राजकार्य सम्पादन करते रहते थे।

सम्राट् के साथ असंख्य शिविर रहा करते थे। एक विस्तृत प्रान्त में वह शिविर-श्रेणी सन्निवेशित होती थी। उत्तर-दक्षिण १५३० गज़ लम्बे और पूरब-पश्चिम ४०० गज़ चौड़े स्थान में तम्बू, कनात, शामियाने प्रभृति खड़े होते थे। उसकी दक्षिणी प्राचीर के मध्यभाग में तोरणद्वार होता था। उसके ऊपर नौबतख़ाना रहता था। इस तोरणद्वार के दोनों पार्श्वों पर प्रहरीगण के मकान होते थे। द्वार में घुसते ही विस्तृत चौक में एक ऊँचा दीपक-स्तम्भ रहता था। रातको उसके ऊपर दीपक रक्खा जाता था। उसको पीछे छोड़कर, और आगे एक दूसरी प्राचीर में जाकर, दरबार-ख़ास का पटमण्डप मिलता था। उसके आगे एक और चौक पड़ता था।

उसके बीच में वृहत् चन्द्रातप, उसके बाद प्राचीरपरिवेष्टित महिषीगण की शिविर-श्रेणी रहती थी। इसी में कुमारगण और सम्राट् की माता भी रहती थीं। इस विभाग के पूरब-उत्तर और पश्चिम में असंख्य शिविर रहते थे। जिनमें से एक में केवल गङ्गाजल, एक में शरबत इत्यादि, एक में पान, एक में विविध प्रकार के फल, एक में तेजपत्र, एकमें मसाले, एकमें भाँति-भाँति के सुगन्धित द्रव्य और एकमें बारूद इत्यादि पदार्थ रक्खे जाते थे। इन सबके उत्तर-पश्चिम और पूर्व में विस्तृत बाज़ार रहता था, जिसके बीच में होकर राजपथ जाता था। उसके आगे प्रहरीगण, अमीर-उमरा और सेना की शिविर-श्रेणी रहती थी। सम्राट् के खेमे दुमंज़िले होते थे। उनमें स्वर्ण और मणि-मुक्ता के कारुकार्यमय वस्त्रावरण दोदुल्यमान रहकर स्वर्ग की शोभा विस्तार करते थे। सम्राट् की शिविर-श्रेणी एक वस्त्रनिर्म्मित महानगरी सी मालूम होती थी और अतुल शोभा की सृष्टि करती थी।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

काश्मीर ।

A monarch shall not himself undertake duties that may be performed by his subjects. The errors of others, it is his part to remedy, but his own lapses who my correct ? —Akbar.

भारत का काश्मीर स्वर्ग का नन्दनकानन है। बर्नियर साहब ने उसको देखकर लिखा है,—"काश्मीर ने मुझको मुग्ध कर लिया है। मैंने कल्पनाबल से काश्मीर के सौन्दर्य को जैसा कुछ समझ रक्खा था, वास्तव में वह उससे कहीं बढ़कर सौन्दर्य का अधिकारी है। सम्भवतः पृथ्वी पर और कोई स्थान उसकी तुलना का नहीं है।"

जिन्होंने समग्र पृथ्वी का पर्यटन किया है, जिन्होंने विविध देशों की शोभा देखी है, उन्होंने भी कहा है,—"जगत्

में काश्मीरके तुल्य मनोहर प्रदेश और नहीं है। इस देशके दर्शन कर चुकने पर मनुष्य यदि मृत्युमुखमें चला जाय, तो परितापका विषय नहीं है।"

सम्राट् अकबर काश्मीरकी शोभा देखनेके लिये वहाँ उपनीत हुए (१५८९)। प्रभात होनेसे पहलेही शिविरसे निकलकर एक पर्वतपर जा बैठे। देखा, कि तारापति और तारकासुन्दरीगण सारी रात जागकर ज्योतिहीन और पाण्डुवर्ण हो गये हैं। इस समय तारकादल प्रभातको देखकर, कुल-ललनागणकी भाँति लज्जाशीला होकर, पतिपार्श्वको परित्याग करके, श्वेत वस्त्र से मुखपद्मको आवृत कर करके, एक-एक करके, नीलाकाशके उद्यान से पासके अन्तःपुरमें अदृश्य हो गईं। क्रमसे ऊषा-सुन्दरी ललाट पर सिन्दूर लगाये, सिरकी वेणीपर नील-पीत और रक्तवर्णका किरणजाल परिधान किये, गुलाबी ओढ़नी ओढ़े, मधुर मुस्कराहटके साथ एक हाथ से शिशिरजल और दूसरे हाथसे बेला, गुलाब, चमेली और शेफा-लिका इत्यादि फूलोंको अकातर भावसे वितरण करती हुई, गुलाबी दुपट्टा ओढ़े, फूलोंसे सजे खुले हुए केशोंवाली रूप-वती षोड़शी बालाओंकी तरह पृथ्वी-प्रदक्षिणाके लिये निकली। वियोगविधुरा कुमुदिनीने ऊषा की वह शोभा और उसका वह भाव देखकर विषाद से मस्तक अवनत कर लिया। स्वामी-सुहागिनी कमलिनी, वृद्धकी युवती भार्याकी भाँति, पतिको प्रणय दिखलाने के लिये, माँगको मोतियोंसे सजाकर,

चन्द्रमुखको पौडर से सँवारकर, गुलाबी वस्त्रसे शरीरको ढाँक कर, पीछे वाह्यत्रुटि लक्षित न हो इस भयसे, सूर्योदयसे पहलेही सरोवरकक्षासे निर्गत होकर ऊपर को मुख करके बैठ गयी। चतुर समीरणने यह संवाद अलिकुल को पहुँचा दिया! भौंरे यह सुख-समाचार सुनकर, गुन-गुन करके ललित रागिनीसे प्रिय सम्भाषण करते हुए कमलके पास पहुँचे। कमलिनी समय पाकर और अवसर समझकर मधुपकी ओर हँसकर प्रणयदृष्टि से देखने लगी। भौंरे अबतक दिन-मणि को उदय हुआ न देखकर, एक बार तो साहससे कमल को चुम्बन करने लगते थे और दूसरी बार सूर्यके भय से अप-सृत होने लगते थे। यह दृश्य हर किसी से कैसे सहन हो सकता है? एक पक्षी पत्तोंकी आड़से यह देखकर, उस समयकी ननदोंकी भाँति,—"मैं देख रहा हूँ, मैं देख रहा हूँ," कहकर ज़ोरसे कमलिनीके दुर्व्यवहारकी घोषणा करने लगा। इसी तरह सैकड़ों पक्षी फाल्तू ठट्ठेबाज़ बङ्गालियोंकी तरह शरीर छिपा-छिपा कर चिल्ला उठे,—"हम भी देखते हैं, हम भी देखते हैं।" सब मिलकर महाकोलाहल, महान्दोलन में प्रवृत्त हो गये। जब उन्होंने देखा कि सूर्यने उनकी बात पर कर्णपात नहीं किया; तो कौए और पपीहा प्रभृति सैकड़ों पक्षी ऊपर आकाशमें उड़-उड़कर, महाकलरव करके, शत-कण्ठसे पद्मिनीकी निन्दा करने लगे, और सूर्यसे शीघ्रही समागत होनेके लिये अनुरोध करने लगे। भौंरे इससे भयभीत

होकर, दिनमणिके तापरूपी क्रोधके भयसे शङ्कित हो गये। वह कमलिनीका इशारा पाकर, कमलनिवासमें प्रवेश करके, चोर को भाँति छिपने लगे। क्रमसे प्रभाकर, सहस्र विहग-कण्ठोंसे प्रियतमाके दुर्व्यवहारको सुनकर, आरक्तिम लोचनों से उदित हुए। पद्मिनी इससे भीत न होकर, अपूर्व शोभा, अपूर्व सुगन्धसे, हँसती-हँसती, हिलती-डोलती पतिको विमुग्ध करने लगी। सूर्य उस शोभाको देखकर सोचने लगे, 'कमल में कलङ्क है? कुसुममें कीट है? क्या यह भी सम्भव है?' अल्प समयमेंही पुरुषका क्रोध रमणीके रूपके सामने पराजित हुआ। वृद्ध पति युवती स्त्री का रूप देखकरही तृप्त हो गया। विहगगण विस्मित हुए, उन्होंने सोचा कि सूर्यका निःस्वार्थ उपकार करने जाकर मिथ्यावादी ठहरे! वह लोग दिनमणिका व्यवहार देखकर, और उससे भी अधिक कमलके नये-नये भाव देखकर, स्तम्भित और अवाक् होकर, इस शाखा से उस शाखापर और उससे इस पर बैठने लगे। कोई-कोई बङ्गालियोंकी वक्तृताकी भाँति निष्फल कोलाहल मचाकर कमल-कलङ्कको घोषणा करने लगे।

सम्राट् ने देखा कि काश्मीर हिमालय पर्वतके ऊपर, पर्वतसे परिवेष्टित, एक सुविस्तृत श्यामल समतल क्षेत्र—एक मनोहर उपत्यका है। समुद्र से ५००० फ़ीट ऊँचा, १६० मील लम्बा और ६०—८० मील चौड़ा है। चारों ओर पर्वत, पर्वतके ऊपर पर्वत, उसके ऊपर फिर पर्वत, पर्वतके

ऊपर पर्तकी तरह विन्यस्त हैं। पदतलमें पृथ्वी और मस्तक के ऊपर अनन्त आकाश है; आकाशकी तरह अनन्तप्रसारी पर्वत है। वह पर्वत शुभ्र तुषार को शिर पर चढ़ाये दण्डायमान है, परन्तु उसकी गोदीमें काश्मीर चिरवसन्तसे सुश्यामल है। उच्च हिमालय आदरसे काश्मीरको कन्धोंपर लिये हुए है; इसीसे ग्रीष्मप्रधान भारतकी उष्णता, चेष्टा करने पर भी उसको स्पर्श नहीं कर सकती है। अत्युच्च पर्वतमाला काश्मीरको चारों ओर से वेष्टन करके दण्डायमान है; इसीसे सदा बर्फ़से ढके हुए हिमालयकी अति शीत को वहाँ प्रवेश करनेको राह नहीं मिलती है। वहाँ शीत और ग्रीष्म अपना आजन्म वैर-भाव भूल गये हैं; मानो प्रकृति-जननी ने उनको चिरसौहार्द्द से सम्मिलित कर दिया है। शीतप्रधान देशके वृक्ष ग्रीष्मप्रधान देशकी वृक्षावलीके साथही साथ पुष्टि लाभ करते हैं। गगनस्पर्शी वृक्ष ऊपरसे नीचे तक घने पत्तों से ढके हुए, पर्वतमें सुन्दर श्यामल शोभा संयोजन करते हैं। बिना यत्नके उत्पन्न हुए भाँति-भाँति के फूल, वृक्ष और लताओंसे पर्वत और उपत्यका परिपूर्ण हैं। कहीं-कहीं पुष्पाभरणा लतिकासुन्दरी वृक्षको वेष्टन करके श्याम-रूपमें लोहितादि वर्ण-वैचित्र्यकी रमणीय शोभा संयोग करती है। कहीं-कहीं पर वह वृक्षके स्कन्धदेशसे आश्रय लिये हुए झूल रही है; मानों वृक्षावली सम्राट् से संभाषण करनेके लिये पुष्पमाला हाथमें लिये खड़ी है। मृदुमन्द समीरण फूलोंकी सुगन्ध चारों

ओर फैला रहा है। हरेक वृक्ष, हरेक कुसुमस्तवकसे भौंरे गुनगुन करके मधुर सङ्गीतालाप कर रहे हैं, कोई उड़ता है, कोई बैठता है। सहस्र विहगकण्ठसे अनन्त आकाश शब्दित हो रहा है। यही ज्ञात होता है, कि अनन्त आकाश मानों केवल विहग-स्वरसे परिपूर्ण है। सुनील आकाशमें शुभ्र बादलोंके टुकड़े आनन्दसे विचर रहे हैं। कितनोही निर्झरणियाँ पर्वत-कन्दराओंसे निकल-निकल कर, एक शैलसे दूसरे शैल पर कूदती-फाँदती, कल-कल नाद करती हुई बह रही हैं। कितनेही जलप्रपात सूर्यकी किरणोंको प्रतिफलित करके पर्वतगात्र में स्फटिक-शोभा विस्तार कर रहे हैं। कहीं पर यही निर्मल सलिल संगृहीत होकर छोटी-बड़ी झीलोंकी सृष्टि कर रहा है और इन्हीं झीलोंमें मनोहर हर्म्यमाला अथवा तैरते हुए उद्यान भाँति-भाँतिके लता-पता, फल-फूल इत्यादिसे शोभायमान होकर चित्तविनोदन कर रहे हैं। वहाँ पर अति उपादेय, अति मधुर, भाँति-भाँतिके फलोंके गुच्छे लटक रहे हैं। ऐसे फल पृथ्वीके और किसी भागमें उत्पन्न नहीं होते हैं। हमलोग बीसवीं शताब्दी के आरम्भमें दण्डायमान हैं; इस ज़मानेमें कितनेही देशोंने अपूर्व्व उन्नति की है; कितनेही देशोंने अनेक प्रकारकी विस्मयकर वस्तुयें प्रस्तुत की हैं; परन्तु फिर भी अँगरेज़ भ्रमणकारियोंने लिखा है, कि काश्मीरके उद्यानके तुल्य पृथ्वीपर और दूसरा स्थान नहीं है, वह जगत्की एक अत्याश्चर्य्य सामग्री है। ऋतुराजने मानों अपने वासभवन

की शोभा सम्पादन करनेके लियेही काश्मीरमें स्वर्गीय शोभाका संयोजन किया है।

वर्णित समयमें, काश्मीरके मुसल्मानोंके अधीन होनेपर भी, वहाँके श्रीनगर, हरिपर्वत इत्यादि संस्कृत नाम अतीत हिन्दू-गौरवकी साक्षी देरहे हैं। बौद्धयुगमें काश्मीर उन्नतिके सर्व्वोच्च शिखर पर था। बौद्ध-राजा कनिश्कके समयमें, काश्मीरका आधिपत्य एक ओर काबुल, काशगर, यारकन्द, कोकन्द और दूसरी ओर पञ्जाब, राजस्थान, गुजरात और आगरा पर्यन्त फैला हुआ था। हुयेन-संगने लिखा है,—"कनिश्कका आधिपत्य चीनके अनेक अंशोंमें फैला हुआ था। काश्मीरकी सेना एक दिन बङ्गालमें भी पहुँची थी। शकाब्द कनिश्कके राजत्वकालकी घोषणा करता है।

स्मरणातीत समयसे चौदहवीं सदीके प्रारम्भ पर्यन्त काश्मीर स्वाधीन था। उसके पीछे वह मुसल्मानोंके हाथोंमें गया, तबसेही उसकी दुःख-दुर्दशाका आरम्भ हुआ। मुसल्मान राजाओंने हिन्दुओंपर लोमहर्षण अत्याचार करना आरंभ किया। काश्मीरके सब मन्दिर और मूर्त्तियाँ तोड़कर उनसे मसजिदें बनवाईं। फ़रिश्ताने लिखा है,—"मुसल्मानोंके अत्याचार और उत्पीड़नको न सह सकनेपर, वहाँके अधिकांश हिन्दुओंने इस-लाम-धर्म ग्रहण कर लिया था।" तथापि काश्मीर अफ़ग़ानि-स्तानमें परिणत नहीं हुआ, क्योंकि वहाँ की हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म बिल्कुलही विलुप्त नहीं हुआ था। महात्मा अबुलफ़ज़-

लने लिखा है,—"ब्राह्मणही काश्मीरके सर्व्वोत्कृष्ट अधिवासी हैं। यद्यपि उन्होंने अब तक अन्धविश्वास और देशाचारके हाथ से परित्राण नहीं पाया है, तथापि उनको ईश्वर-पूजामें कृत्रिमता नहीं है। वह लोग अन्य धर्मवालोंकी निन्दा नहीं करते हैं, किसीसे कुछ माँगते नहीं हैं, अर्थके लिये लालायित नहीं होते हैं। वह नाना भाँतिके फल-वृक्ष रोपण करके अधिवासियों के उपकार-साधनमें दिन अतिवाहित करते हैं। वह न विवाह करते हैं, और न मांस भोजन करते हैं। ऐसे ब्राह्मण काश्मीर में प्राय: दो हज़ार होंगे।"

काश्मीरके सौन्दर्यने अकबरके पूर्व पुरुषोंको भी लुब्ध कर लिया था। बाबरने एक नृपतिकी सहायताके बहाने वहाँ एक सेना भेजी थी। उसके पीछे हुमायूँ जब दिल्लीके सिंहासनसे विताड़ित होकर लाहौर आया था, उस समय आत्मद्रोहमें निमग्न काश्मीरके कुछ सम्भ्रान्त मनुष्योंने काश्मीर पर अधिकार करनेके लिये उसको बुलाया था। तदनुसार हुमायूँ ने एक निकटके आत्मीयको वहाँ भेजा था। वह प्रतिष्ठित मुसल्मान राजाको विताड़ित करके आप सिंहासन पर बैठ गया था। उसने हुमायूँके नामकी मुहर बनवाई थी और उपासनालयमें प्रार्थना करके उसको काश्मीरका अधीश्वर स्वीकार किया था। उस समय हुमायूँ राज्यहीन, दीनहीन अवस्थामें देशान्तरमें पड़ा था।

सन् १५६८ ई० में, वहाँ हुसैनशाह राजा था। उसको शिया

और सुन्नी प्रजा अत्यन्त आत्मकलहमें निमग्न थी। वहाँके एक समाधि-स्थान पर एक शियाने एक वृद्ध सुन्नीके शिरमें तलवार का आघात किया। राजाने इस दुरात्माके विचारका भार तीन मौलवियोंके हाथमें अर्पण किया। मौलवियोंने प्राणदण्डकी व्यवस्था देदी। राजाने अपराधीको प्राणदण्ड दे दिया। इसके कुछही दिन पीछे अकबरके दो दूत काश्मीर पहुँचे। वह दोनों शियामतावलम्बी थे। उन्होंने जब सुना, कि तीन मौलवियोंके मतानुसार उनके एक मतावलम्बीको प्राणदण्ड हुआ है, तो वे क्रोधसे अधीर हो गये और उल्लिखित तीनों मौलवियोंको वन्दी करके उनको भी प्राणदण्ड दे दिया। काश्मीरके राजाने सम्राट्के दूतोंके कार्यका समर्थन किया। शेषमें उसने सम्राट्का प्राधान्य स्वीकार करके, बहुतसे उपहारोंके साथ दूतोंको विदा किया, और सम्राट्के साथ अपनी दुहिताका विवाह करनेके लिये उसे दूतोंके साथही दिल्ली भेज दिया।

दूत दिल्ली पहुँचे, परन्तु उनके दुर्व्यवहारसे सम्राट् क्रोध से अधीर हो गये। सम्राट् न्यायके इतने पक्षपाती थे, कि उनके प्रतिनिधियोंने दूसरे राजाके राज्यमें क्षमताका जो अपव्यवहार किया था, उसके लिये उनके पद-गौरवकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। सम्राट्ने आगरेमें प्रकाश्यभावसे ऐसे उच्च कर्मचारियोंको भी प्राणदण्ड दे दिया। इसके अतिरिक्त काश्मीर-राजने अपने राज्यमें प्रतिनिधियोंको ऐसा गर्हित काम करने दिया, कोई वाधा नहीं दी, उनके विरुद्ध अभि-

योग भी नहीं लगाया, इसके लिये सम्राट् काश्मीराधिपति से असन्तुष्ट हुए, उनकी कन्या का पाणिग्रहण करके उनका सम्मान नहीं बढ़ाया, और उस राजकन्याको फिर काश्मीर भेज दिया। काश्मीरकी रमणियाँ स्वभाव से ही बहुत सुन्दरी होती हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि राजबाला अपूर्व रूपलावण्यसम्पन्ना थी, तथापि सम्राट् प्रलुब्ध नहीं हुए। यह दुःसमाचार सुनकर हुसैनशाह बीमार होगया। उसका भाई सिंहासन पर बैठ गया। सम्राट् ने उसके समय में दूत फिर भेजा। वहाँकी मसजिदमें सम्राट् के उस प्रदेश के अधीश्वर होनेकी घोषणा की गई। उसकी मृत्यु के पीछे उसका पुत्र यूसुफ़शाह आत्म-कलहके कारण विताड़ित होगया, तब सम्राट् ने राजा मान-सिंह इत्यादि को सेना सहित भेजकर विताड़ित नृपतिको फिर काश्मीरमें प्रतिष्ठित किया। पीछे इस राजाने भी बहुत से उपहारों के साथ अपने दो पुत्रोंको दिल्ली भेजकर सम्राट्की वश्यता स्वीकार की। पूर्व अध्याय में वर्णित १५८५ ई० में, सम्राट् ने जब पञ्जाब प्रदेशमें गमन किया था, उस समय वह काश्मीर-दर्शनके अभिलाषी हुए थे, इसलिये यूसुफ़शाहको मिलने के लिये बुलाया था; परन्तु उसने आज्ञा पालन नहीं की। इससे सम्राट्ने क्रुद्ध होकर राजा भगवानदास इत्यादि के अधीन ५००० सेना अटकसे काश्मीर भेजी (सन् १५८६ ई०)।

यह सैन्यदल विम्बर घाटी होकर काश्मीरको जाने लगा। यह पथ सेनाकी जानेके लिये सुप्रशस्त था, और इसके पार्श्ववर्ती

अधिवासी मुग़ल-सेनाके पक्षपाती थे, इसी कारण सेनापतियों ने यह पथ अवलम्बन किया था। इस समय बर्फ़के गिरने से यह पथ बन्द होगया था। सम्राट्ने यह संवाद पातेही समझ लिया, कि इस पथसे काश्मीर पहुँचने में बहुत देर लगेगी, और इस अवसर में विपक्षी युद्धके लिये तय्यार हो जायगा और बहुत दिनों तक युद्ध करनेमें समर्थ होगा। सम्राट् ने ये सब बातें सोचकर आज्ञा दी, कि विपज्जनक दुर्गम पथरीली राहसे शीघ्रही काश्मीर पहुँच जाओ। जब मुग़लसेना इस पथसे बहुत दूर आगे बढ़गई, तब काश्मीराधिपतिको चैतन्य हुआ। वह मुग़ल-सेनापतियोंके शिविरमें पहुँचा और स्वयं सम्राट्के पास जाकर वश्यता स्वीकार करनेके लिये अभिलाषी हुआ। सम्राट् ने लिखा,—"काश्मीर-राजने मेरे पास उपस्थित होना स्वीकार किया है, यह सन्तोष का विषय है; परन्तु इससे पहले उस प्रदेशको अधिकारमें लाना होगा। मैं काश्मीरको कर देने वाले राज्यके रूपमें वर्त्तमान राजाको दूँगा।" यह सुनकर सेनापतिगण फिर आगे बढ़ने लगे; काश्मीरवासी युद्धके लिये तय्यार होकर पाथलिकी पहाड़ी पर जमा हुए। राजा भगवान-दासके पुत्र माधोसिंहने राजपूत-सेना लेकर, अत्यन्त साहस प्रदर्शन करके, वह पथ अधिकार में कर लिया। काश्मीरवासी उसके वीरत्वसे भयभीत होकर सन्धि करनेके लिये व्याकुल हो गये। काश्मीर ने फिर सम्राट्की वश्यता स्वीकार करली और सम्राट्के नामका सिक्का वहाँ प्रचलित हो गया।

इस प्रकार शान्ति स्थापित होनेपर भी वह दीर्घकाल तक स्थायी न रही। अधिवासीगण घोर आत्मकलहमें निमग्न हो गये। जो अपने सर्वनाश के लिये आपही बद्धपरिकर हो, उस को निवारण करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? सम्राट् ने सेना भेजकर शान्ति स्थापन की। काश्मीर-राजको बिहारका शासनकर्त्ता नियुक्त किया।

सम्राट् ने इस समय काश्मीरकी अतुल शोभा दर्शन करने के लिये याता की (१५८८ ई०)। बिम्बर-गिरिपथ और रत्न-पाञ्ज-ल होकर सम्राट्ने काश्मीरमें प्रवेश किया। साथ में बहुतसे बन्धु और अनुचर थे। कभी घोड़े पर और कभी पैदल चलते थे। चारों ओरकी रमणीय प्रकृतिकी शोभा दर्शन करते, और ईश्वर की सृष्टिपर मुग्ध होते हुए चले जारहे थे।

सम्राट् काश्मीरमें बहुत थोड़े दिन ठहरे, परन्तु इतने ही दिनोंमें सबको मुग्ध कर लिया। उनके सौजन्य, मधुर कथोप-कथन की रीति, दया, तीक्ष्ण बुद्धि और क्षमता को देखकर काश्मीरवासी विस्मित होनेलगे। वहाँके लोग सम्राट्को असा-धारण पुरुष समझकर सम्मान करने लगे। इसलामपद और श्रीनगरके राज-पथपर समुन्नत, सुदीर्घ और सुश्रीसम्पन्न वृक्ष-श्रेणी अब भी खड़ी हुई पथिककी थकावट दूर करके चित्तको शान्ति देती है। यह सम्राट्की लगाई हुई है। खेतीके काम के लिये वहाँ जो नहरें थीं उन सब को सम्राट्ने मरम्मत कराई थी। उन्होंने श्रीनगर के उत्तर-पूर्व में ऊँचे हरिपर्वत

पर ११ लाख रुपये लगाकर एक सुदृढ़ और सुन्दर दुर्ग बनवाया था। वह आजतक दर्शन-योग्य बना हुआ है। परन्तु ३॥ लाख रुपये लगाकर अपने रहने के लिये जो प्रासाद बनवाया था, वह विलुप्त होगया है। बहुत दिनोंके विवाद-विसंवादके पीछे काश्मीरमें शान्ति स्थापित हुई और वह उन्नतिके पथ पर अग्रसर होने लगा।

सम्राट्ने काश्मीर परित्याग कर दिया। परन्तु जिस आनन्दपूर्ण चित्तसे वह गये थे, उस आनन्दपूर्णचित्तसे लौट नहीं सके। इस समय वह विषादपूर्ण थे। उनके प्रिय सुहृद् और विश्वस्त अनुचर अमीर फ़तेउल्लाने काश्मीरमें प्राण त्याग किये। वह बड़ा पण्डित व्यक्ति था। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"मुसल्मानोंके प्राचीन ग्रन्थ यदि विध्वंस होजाते, तोभी फ़तेउल्ला अपने स्मृति-समुद्रसे उन सबका उद्धार कर सकता था।" वह सम्राट्के आदेशसे संस्कृत-ग्रन्थोंका फ़ारसी भाषा में अनुवाद करता था। सम्राट्ने कहा,—"वह जैसा ही मेरा विश्वासी बन्धु था, वैसाही दार्शनिक, ज्योतिर्विद् और चिकित्सक था। यदि वह शत्रुके हाथ पड़ जाता, तो मैं अपनी समुदय धन-सम्पत्ति को देकर भी उसका उद्धार करता और फिर भी यही समझता, कि मैं लाभ में हूँ।" काश्मीर के सीमान्त पर सम्राट्का एक और अकृत्रिम बन्धु मर गया। उसका नाम अबुल-फ़तह था। उसने सम्राट्का नया धर्म ग्रहण किया था। वह एक महाप्राज्ञ व्यक्ति था। सम्राट् उसको बहुत चाहते थे।

राजकीय विषयोंमें उसका मत भी लेते थे। सम्राट् जिस समय काश्मीरको गये थे, उस समय राजा टोडरमल पञ्जाबके शासन-कर्त्ता थे। उन्होंने वहाँ पञ्चत्व प्राप्त किया (१५८९ ई०)। वह एक निष्ठावान् हिन्दू थे; परन्तु फिर भी उन्होंने सिन्ध नदी पार की थी। वह नित्य प्रातःकाल उठकर पूजा करके अपने राजकार्य में लगते थे। एक बार पञ्जाब जाते समय उनकी पूजाकी मूर्त्ति पीछे रह गई थी, इस कारण उन्होंने कई दिन तक आहार क्या पानी तक स्पर्श नहीं किया था। शेषमें, जब सम्राट्को यह बात ज्ञात हुई, तो उन्होंने बहुत कुछ समझा-बुझाकर उनको भोजन कराया। उनकी अन्तिम-क्रिया के समय राजा भगवानदास उपस्थित थे। परन्तु वहाँ से घर लौटने पर वह भी बीमार पड़ गये और उसी दिन मृत्यु को प्राप्त हुए। दोनों ही राजा अति साहसी और सम्राट् के अति प्रिय थे। इस प्रकार बारम्बार बन्धुओंका वियोग होने के कारण सम्राट् शोक से विध्वस्त होने लगे। कुछ वर्षों तक तो काश्मीर में शान्ति रही। पीछे कुछ बड़े आदमियों ने एक व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाने का संकल्प करके विद्रोह किया (१५९२ ई०)। सम्राट् शीघ्र ही सेना सहित वहाँ पहुँचे। सम्राट् के पहुँचते ही विद्रोह शान्त हो गया। काश्मीर के जो व्यक्ति उनकी प्रतिकूलता करते थे, उनको बड़े आदर से बुलाकर, सम्मान-वर्षण करके, बहुत कुछ सौहार्द्र भाव दिखला कर, अपने पक्ष में कर

लिया, और उन्हें उच्च राजकार्यमें नियुक्त किया। सम्राट् ने यहाँ तुलाव्रत का अनुष्ठान किया, और बहुमूल्य द्रव्योंसे तुल-कर उसको दीन-दरिद्रों में वितरण कर दिया। एक अबुल-फ़ज़ल के हाथ से चौदह हज़ार मनुष्यों को दान मिला था। सम्राट् के दान को देखकर काश्मीर उनके प्रति आकृष्ट हो गया। काश्मीरकी केसर संसार-भरमें प्रसिद्ध है। उसकी सुगन्ध और सौन्दर्य पृथ्वी पर अतुलनीय है। उसीके खेतोंको देखनेके लिये सम्राट् वहाँ गये थे। उसको देख कर सम्राट् ईश्वरकी सृष्टिमहिमा की प्रीति लाभ करने लगे। सम्राट्के अवस्थान-कालमें हिन्दुओंने दिवाली-उत्सव सम्पन्न किया। श्रीनगर की झील की नौकाओं और झील के पार्श्ववर्त्ती मकानों को हिन्दुओं ने असंख्य आलोकमाला से सज्जित किया। सम्राट् वह दृश्य देखकर अति आह्लादित हुए। हिन्दुओं ने अपनी रीति के अनुसार बहुत सी गायों को सुन्दर रूप से सज्जित किया। बहुत से हिन्दू उनको दिखलाने के लिये सम्राट् के पास लाये। सम्राट् गायों को देखकर बड़े आन-न्दित हुए। जब सम्राट् दिल्ली और आगरे में रहते थे, तब भी हिन्दू लोग उनको गायें दिखलाने को लाया करते थे। इससे यह प्रतीत होता है, कि प्रजा सम्राट् को कितना आत्मीय समझती थी।

काश्मीरवासियोंको सौहार्द्द में आबद्ध करने के लिये सम्राट् और कुमार सलीम ने कई एक उच्च घरानों की

कन्याओंका पाणिग्रहण किया। एक मुसल्मान अमात्यको उस प्रदेश का शासनकर्त्ता नियुक्त करके सम्राट् श्रीनगरसे जलकी राह चल दिये। उनकी नौका प्रकृतिकी अपूर्व शोभाको भेद करती हुई एक सुबृहत् झीलमें पहुँची। उसकी परिधि ६० मील की थी। उसके उत्तर, दक्षिण और पश्चिम पार्श्व पर्वत-माला से अलङ्कृत थे। वितस्ता नदी इसी झीलमें से निकल कर गई है। इसका जल बहुत स्वच्छ और गहरा है। काश्मीर के एक राजाने इस झील के मध्य में एक मनोहर विहारभवन बनवाया था। सम्राट् इस प्रासाद और झीलको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। मुसल्मान ऐतिहासिक निज़ामुद्दीन अहमद ने उस समय सम्राट्के साथ यह स्थान देखकर लिखा है,—"इस झील और प्रासाद के तुल्य मनोमुग्धकर वस्तु भारतमें दूसरी नहीं है।"

इसके पीछे सम्राट् एक बार और काश्मीर गये थे (१५८७ ई०)।

राजा भगवानदास के भाई राजा जगन्नाथ ने काश्मीर-विजय में अत्यन्त साहस दिखलाया था। उन्होंने महाराणा प्रतापसिंहके विरुद्ध असामान्य वीरत्व प्रकाशित करके ख्याति लाभ की थी। वह पञ्जाब, काबुल, मालवा और दक्षिण में बहुत युद्ध करके यशस्वी हुए थे। वह एक हज़ारी सेनापति थे। सम्राट् ने भारतकी सब जातियोंके लिये यहाँ एक मनोहर उपासनागृह बनवाया था।

सोलहवाँ अध्याय।

रानी चाँदबीबी और दक्षिण प्रदेश।

The superiority of man rests on the jewel of reason. It is meet that he should labour in its burnishing and turn not from its instructions.

—Akbar.

दक्षिण प्रदेश भी एक दिन वीरत्व का लीलाक्षेत्र था और हिन्दू गौरव से उद्भासित होता था। पाण्डवों के वंशधरों ने गुजरात से धूमपोत पर सवार होकर, भारतके दक्षिणी प्रान्तों में जाकर, मथुरा नगरी (वर्त्तमान मदुरा) और पाण्ड्य राज्य स्थापन किया था। इस राज्य के हिन्दू राजा ने ईसा की पहली शताब्दी में, सुदूरवर्त्ती रोम के सम्राट् अगस्टस सीज़र के पास दूत भेजा था।

फ़ाहियान ने पाँचवीं शताब्दी में, दक्षिण प्रदेश के एक

स्वाधीन हिन्दू राजकी राजधानी काञ्ची महानगरीको देखकर विस्मयाभिभूत होकर लिखा था,—"यह नगरी पृथ्वी पर सर्वापेक्षा वृहत् महानगरी है।" इसके मन्दिर इत्यादि आज भी दर्शकको विस्मित करते हैं।

सम्राट् अकबर जिस समय सिंहासन पर बैठे थे, उस समय दक्षिणी प्रान्त के बहुत से हिन्दू-राज्यों के सिवा विजय-नगर भी अत्यन्त शक्तिशाली था। विजयनगर की परिधि ६० मील थी, और युद्ध करने योग्य एक लाख मनुष्य उस में वास करते थे। एक के पीछे एक सात सुदृढ़ और समुन्नत प्राचीरों द्वारा नगरी परिवेष्टित और सुरक्षित थी। बाहरी प्राचीर के भीतर उद्यान था, और अन्य प्राचीरों के भीतर बाज़ार, राजप्रासाद इत्यादि थे। वेद के टीका-कार सुप्रसिद्ध माधवाचार्य एक दिन इस राज्य के प्रधान अमात्य, प्रधान सेनापति और प्रधान पण्डित थे। इस हिन्दू-राज्यने दो शताब्दियों तक हिन्दूगौरव विस्तार किया था। शेषमें, इसके निकटवर्त्ती अहमदनगर, बीजापुर और गोल-कुण्डके मुसल्मान नृपतियोंने मिलकर आक्रमण करके इसका ध्वंस किया था (१५६४ ई०)। पीछे सम्राट्ने इन तीनों राज्योंमें बिना विवादकेही वश्यता स्वीकार करनेके लिये दूत भेजा, परन्तु कुछ फल नहीं हुआ। अन्तमें, अहमदनगरके राजाके मरनेपर उसकी प्रजा चार दलोंमें विभक्त हो गई, और विभिन्न व्यक्तियोंको सिंहासनपर बैठानेके लिये आपसमें संग्राम

करने लगी। एक दलके नेताने विपक्षियोंके ऊपर जयलाभ करनेके लिये मुग़ल-सम्राट्की सहायता चाही (१५९५ ई०)। तदनुसार कुमार मुराद और खानखाना अब्दुर्रहीम दो ओरसे दक्षिण प्रदेशमें घुसे। पुरुषके स्वार्थसेवक होने पर भी, आज एक वीररमणीका स्वदेशकी स्वाधीनता-रक्षाके लिये आविर्भाव हुआ, और वह जन्मभूमिके लिये आत्मोत्सर्ग प्रदान करनेको अग्रसर हुई। यह रमणीरत्न प्रातःस्मरणीया रानी चाँदबीबी थी। एल्फ़िन्सटन साहबने लिखा है,—"भारतवर्षमें ऐसी रमणीरत्न कमही उत्पन्न हुई हैं।" वह जैसीही असीम साहसी थी, वैसीही तीक्ष्णबुद्धिसम्पन्न भी थी। वह उस समय एक बालक को अहमदनगरके सिंहासन पर बैठाकर उसकी संरक्षा कर रही थी। उसने सोचा, कि यदि प्रबल एक बार दुर्बलके घरमें प्रवेश कर गया, तो फिर वह उसको नहीं छोड़ेगा। यदि बन्धुभावसे घरमें घुस जायगा, तोभी गृहस्वामीका अधिकार जाता रहेगा। उसके उपदेशसे राज्य के विरुद्धमतावलम्बियोंने आत्मकलह छोड़ दी; सब एक मन और एक प्राण होकर मुग़ल-सेनाकी प्रतिकूलता करनेमें प्रवृत्त हो गये।

कुमार मुराद निमन्त्रण पाकर आगये थे, कार्योद्धार किये बिना किस प्रकार लौटते? उन्होंने अहमदनगर पर बाहु-बलसे अधिकार करनेके लिये उसका अवरोध किया। दिन-रात वह अधिकारके लिये प्रयास करने लगे। वहाँका दुर्ग

नीले रंगके पत्थरका बना हुआ था, प्राचीर उसकी ५४ हाथ ऊँची थी। दुर्गकी प्राचीर खाईसे परिवेष्टित थी। वह ६०—८० हाथ चौड़ी और १४ हाथ गहरी थी। रानी चाँदबीबी उस दुर्गका आश्रय लेकर मुग़ल-आक्रमणका उपहास करने लगी। मुराद दुर्ग-प्राचीरके नीचे सुरङ्ग खोदकर बारूद भरने लगे। इधर रानी चाँदबीबी अनुसन्धान करके मुग़ल-सेनाका परिश्रम व्यर्थ करने लगी। एक दिन इसी प्रकार एक सुरङ्गमें बारूद भरकर मुग़ल-सेनाने उसमें आग लगादी। आगके लगतेही प्रलयकासा शब्द करके, चतुर्दिशाओंको कम्पित करती हुई सुरङ्ग फट गई; दुर्गकी प्राचीरका कुछ अंश भी गिर पड़ा। उसके साथ रानी चाँदबीबीकी बहुतसी सेना भी पञ्चत्वको प्राप्त हो गई। बहुतसी सेना भीतविह्वल होकर प्राण लेकर भागी। शीघ्रही रानी चाँदबीबी ज़िरहबख़्तर पहनकर, हाथमें तलवार लेकर, उस स्थानपर आगई। वह टूटी प्राचीर में आकर खड़ी होगई और विपक्षियोंके आक्रमणको निवारण करने लगी; अपने वीरत्वसे, अपने उत्साह से, अपनी सेनाको उत्साहित और अनुप्राणित करने लगी। जो भागने लगे थे वह फिर लौटे और भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। मुग़ल-सेना उस टूटे भाग द्वारा भीतर प्रवेश करनेकी बारम्बार चेष्टा करने लगी, और वीररमणीके वीरत्वके सामने बारम्बार अदृश्य होने लगी। रानीने उस रन्ध्रके सामने बारूद इत्यादि बिछवाकर, उसमें आग लगाकर, अनल-नदी प्रवाहित कर दी। अब

मुग़ल-सेनामें किसको शक्ति थी, जो आगे बढ़ता ? वह लोग चाँदबीबीके वीरत्व और कार्य-पद्धतिको देखकर विस्मयाभिभूत हो गये। उसको 'चाँदसुलताना' और 'चाँदरानी' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। क्रमसे दिन शेष हुआ, मुग़लोंका पराक्रम भी निस्तेज हुआ। विपुल मुग़ल-वाहिनी दुर्गके अधिकार करनेमें असमर्थ होकर, रानी की प्रशंसा करती-करती शिविरको लौटी।

इधर अम्बर-रङ्गमञ्च को अध्यक्ष सन्ध्यादेवीने रानीके वीरत्वपर मुग्ध होकर, उसकी सम्बर्द्धनाके लिये नीलाम्बर-रङ्गमञ्च-का पर्दा उठा लिया। नक्षत्ररूपी अपूर्व रूपलावण्यमयी असंख्य सुरसुन्दरियोंने रानीके वीरत्वसे आनन्दमें अधीर होकर चन्द्रमाको घेरकर नृत्य-गीताभिनय आरम्भ किया। जो तरुणी थीं, रूपकी रानी थीं, वह मानों आगे बढ़कर रानीके ऊपर सुधाराशि वर्षण करने लगीं। सभी आनन्दोत्सव द्वारा रानीकी नगरीको उद्भासित करने लगीं।

रानीने न शयन किया, न विश्राम किया; समस्त रात जागकर प्राचीरका भग्नस्थान निर्माण कराया; अपने पक्षावलम्बियोंको वहाँ आनेके लिये पत्र लिखे। पत्रवाहक निरापद मुग़ल-सेनाको पार न कर सके। सारे पत्र कुमार मुरादके हाथ पड़े। कुमारने न तो पत्रोंको नष्ट किया, न वाहकोंमेंसे किसी को बन्दी किया, न किसी को पुनः दुर्गमें लौटाया। वह रानी के वीरत्वपर ऐसे मुग्ध हुए, कि उलटे उसकी सहायताके लिये

अग्रसर हुए। उन्होंने पत्रके ऊपर लिख दिया,—"जितनी शीघ्रतासे आओगे उतनाही मङ्गल है।" और पत्रोंको यथास्थान भेज दिया। शत्रु जिन-जिन कामोंसे शक्ति सञ्चय कर सके, वह उपाय भी कर दिये। परन्तु रानी महापराक्रमशाली मुग़ल-सम्राट्के साथ कबतक युद्ध कर सकती थी? क्रमसे उसका लड़ाईका सामान शेष होगया। वह गोलीके बदले पैसे और पीछे रुपये बन्दूकोंमें भर-भर कर शत्रु-संहार करती रही। काफ़ीख़ाँने लिखा है,—'चाँदरानीने मुग़ल-सेनामें चाँदीकी गोलियाँ चलाई थीं।' जब यह अवस्था हो गई, तब वह बड़ीही अनिच्छासे सन्धि करनेको बाध्य हुई। सन्धिमें यह स्थिर हुआ, कि इससे पहले मुग़ल-सेनाने जो बरार प्रदेश ले लिया है, रानी उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी। मुग़ल-सेना भी अब रानीके राज्य पर आक्रमण न करेगी। कुमार मुराद इस प्रकार असम्मानकर सन्धि स्थापन करके अहमदनगरसे चल दिये (१५८६ ई०)।

इसी सनमें वृष्टि न होनेके कारण समग्र भारतमें भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। अनाज का भाव बहुत चढ़ गया। मनुष्य मनुष्यको खाने लगा। उसके साथही महामारी भी आगई। बहुतसे मनुष्य उसके मुखमें जाने लगे। कितनेही नगर जन-शून्य हो गये। मृतशरीरोंसे राजपथ रुद्ध होने लगे। उनको उठाकर फेंकने वाला भी दुर्लभ हो गया। सहृदय सम्राट्ने दरिद्र और विपन्न मनुष्योंकी सहायताके लिये बहुतसे कर्म-

चारी भेजे। वह लोग सभी सम्प्रदायके दरिद्र मनुष्योंके तत्त्वावधानमें नियुक्त हुए और प्रतिदिन प्रजामें आहार वितरण करने लगे। सम्राट्ने इस प्रकार बहुतसे जीवोंकी प्राणरक्षा की।

हतभाग्य भारत इतिहास से शिक्षा लेना जानताही नहीं। मुग़ल-सेनाने ज्योंही प्रस्थान किया, अहमदनगर-वासियोंने त्योंही फिर आत्मकलह आरम्भ कर दी। एक दलके लोगोंने, अहमदनगरके राज्यको मुग़लोंके हाथोंमें अर्पण करनेके लिये ख़ानख़ाना अब्दुर्रहीमको बुलाया। वह इस निमन्त्रणके बहाने, नष्टगौरवका पुनरुद्धार करनेके लिये, सेना लेकर चल दिया। रानी चाँदबीबीने फिर बीजापुर और गोलकुण्डा की सेनाको मिला लिया। गोदावरीके किनारे पर दोनों सेनाओंमें संग्राम हुआ। दो दिन-भर युद्ध हुआ। दो दिनके पीछे कुछ मुसल्मानोंने अमात्य अब्दुर्रहीमसे पूछा,—"पराजय होने पर आप हमलोगोंको कहाँ मिलेंगे?" उसने उत्तर दिया— "मुर्दोंके ढेरमें।" यह सुनकर वह लोग बोले,—"तो आज हमलोग हिन्दुओंकी भाँति युद्ध करेंगे, मृत्यु अवश्यम्भावी है।" हिन्दुओंका वीरत्व कहावतमें प्रचलित था! भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। शेषमें मुग़ल-सेनाको जयलाभ हुआ। अमात्य अब्दुर्रहीमने अपनी साहसी सेनामें ७५ लाख रुपये वितरण किये (१५९७ ई०)। सम्राट् इस समय दक्षिण प्रदेशको आने लगे; किन्तु मुरादके साथ उनका साक्षात् नहीं हुआ।

मुरादने अत्यधिक सुरापानके कारण दक्षिण प्रदेशमें प्राण त्याग किये (१५९८ ई०)। सम्राट् इस संवादसे अत्यन्त शोकाकुल हुए।

नर्मदा नदीके पीछे खाण्डव प्रदेश है। उसका मुसल्मान अधिपति सम्राट्के पक्षमें रहकर इस युद्धमें मारा गया था। उसका पुत्र बहादुर सिंहासन पर बैठा। सम्राट्के खाण्डव प्रदेशमें पहुँचने पर बहादुर उनके पास नहीं आया और न सम्मान प्रदर्शन किया। सम्राट्ने वश्यता स्वीकार करनेके लिये बारम्बार उसके पास दूत भेजे, परन्तु कुछ फल नहीं निकला। सम्राट्ने खाण्डवका शासनकर्त्ता अबुलफ़ज़लको कर दिया। उसकी राजधानी आशीर दुर्ग अवरोध करनेके लिये सेनापति फ़रीदको आज्ञा दी। अहमदनगरके अवरोधका भार कुमार दानियाल और ख़ानख़ाना अब्दुर्रहीम को अर्पण किया।

परन्तु अहमदनगर से राजलक्ष्मी प्रस्थान कर चुकी थी। कुछ सैनिकोंने विपक्षियोंके समझाने-बुझानेसे अन्तःपुरमें प्रवेश करके रानी चाँदबीबीको बड़े निष्ठुर भावसे निहत कर डाला। अब नगरकी रक्षा कौन करता? जो वीररमणी वीरवेश से ढाल-तलवार हाथमें लेकर सैनिकोंको उत्साहित करती थी, स्वदेशके लिये आत्मप्राण विसर्जन करनेके लिये रणक्षेत्र में उपस्थित होती थी, आज वह कृतघ्नोंके हाथोंसे मारी गई! मुग़ल-सेनाने अनायासही दुर्ग पर अधिकार कर

लिया। बालक राजा और उसके आत्मीयवर्गको वन्दी कर लिया। यहाँ बहुमूल्य हीरे इत्यादिकी जड़ी हुई तलवारें, सुवृहत् पुस्तकालय और २५ हाथी मिले। यह पुस्तकालय सम्राट् के पुस्तकालय में मिला लिया गया (१६०० ई०)।

सेनापति फ़रीद ने आशीर दुर्गका विवरण सम्राट्के पास इस प्रकार भेजा,—"इस पर अधिकार करना असम्भव है।" यह दुर्ग एक पर्वत-स्तम्भके शीर्षदेश पर निर्मित है। समतल क्षेत्रसे वह ८०५ फ़ीट ऊँचा और अक्रमोच्च है। इसी पर्वतके ऊपर दुर्गकी सुदृढ़ और सुप्रशस्त प्राचीरके उदरमें सैनिकोंके रहनेके मकान हैं। सैनिकगण वहाँ निरापद और सुख-पूर्वक रहते हुए, दिनरात जाड़े-गर्मी और आँधी-पानीमें भी विपक्षीके ऊपर अविराम गोला बरसा सकते हैं। दुर्गके भीतर मनोहर उद्यान है। उसीमें सम्भ्रान्तगणके वासभवन हैं। वहाँ झरने अथवा नदी नहीं हैं, तालाबोंसे दुर्गवासियों के जलका अभाव पूर्ण होता है। इस दुर्ग पर जानेके लिये एक मात्र राह है। उसकी रक्षाके लिये, दुर्गके बाहर एक के पीछे एक छोटे-छोटे दो दुर्ग हैं। इन दोनों स्थानोंपर अधिकार न करने तक उस दुर्ग तक पहुँचना असम्भव है। प्रधान दुर्गसे देखनेसे ज्ञात होता है, कि सबसे नीचेवाला दुर्ग समतल भूमि पर है। और समतल भूमिसे ऊपर दृष्टि करनेसे प्रतीत होता है, कि वह आकाश की राहमें आधी दूर

पर लटक रहा है। उस दुर्ग के नीचे पर्वतगात्र में एक गाँव है, वह भी एक नगरी के तुल्य बड़ा है। दुर्ग में जाने के लिये एक और पथ है। वह पर्वत काटकर उसके भीतर ही भीतर आश्चर्य-रूप से बनाया गया है। इस पथकी राह, दुर्ग की सेना अकस्मात् ही समतल भूमि में आकर विपक्ष पर आक्रमण कर सकती है, और मुहूर्त्त-भर में उसी पर्वत में प्रवेश कर सकती है। यह द्वार ऊपर से ही रुद्ध हो सकता है। फ़रिश्ता ने लिखा है, कि आशा आहिर नामक एक हिन्दू राजा ने इस दुर्ग को बनवाया था। फ़ैज़ी सरहिन्दी ने लिखा है,—"दीर्घ अवरोध करने पर भी, इस दुर्गपर अधिकार करना असम्भव है।" जिन्होंने दूरदेशों में भ्रमण किया है, जिन्होंने फ़ारस और यूरोप के दुर्ग देखे हैं, उन्होंने भी एक-वाक्य होकर कहा है, कि ऐसा दुर्ग और कहीं नहीं देखा। इस दुर्ग के पास और कोई पर्वत नहीं है। उसके चारों ओर समतल भूमि है। वहाँ एक भी वृक्ष नहीं है, कोई वन नहीं है, जिसके आश्रय में आत्मरक्षा करके दुर्ग के ऊपर गोला वर्षण हो सके। यह दुर्ग पृथ्वी की विस्मयकारक वस्तुओं में परिगणित है। जिन्होंने इसको नहीं देखा है, उनको वर्णन द्वारा समझाना असम्भव है।

इसी समय, बहादुर कुछ सेना लेकर दुर्ग से उतरकर फ़रीद से मिला। फ़रीद ने उसको बड़े आदर से ग्रहण किया। सम्राट् का पक्ष अवलम्बन करने के लिये उसे बहुत से उपदेश दिये,

बहुत कुछ अनुरोध किया ; किन्तु कुछ भी फल न हुआ। वह फिर दुर्ग पर चढ़ गया। सम्राट् कभी विश्वासघातकता नहीं करते थे, न कभी प्रतिज्ञा तोड़ते थे। जो लोग ऐसा करते थे, उनसे भी घृणा करते थे और उन्हें दण्डित करते थे। इसी कारण फ़रीद सत्यभङ्ग करके बहादुर को वन्दी न कर सका। किसी-किसी राजनीतिज्ञ ने फ़रीद पर दोषारोपण भी किया और बहादुर को उस समय वन्दी न कर लेने के कार्य्य की तीव्र समालोचना की। उसके उत्तर में फ़ैज़ी सरहिन्दी ने लिखा है, "चक्रान्त, विश्वासघातकता और सत्यभङ्ग द्वारा कभी किसी स्थान पर सुफल उत्पन्न नहीं हुआ है।" इसी कारण, उसके द्वारा अदूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने शीघ्र कार्योद्धार में समर्थ होने पर भी, परिणाम में अभूत अमङ्गल साधन किया है। इसी समय अबुलफ़ज़ल वहाँ आपहुँचे। उन्होंने खाण्डव प्रदेश के २२ स्थानों में सेना स्थापन करके, समुदय प्रदेश को मुग़ल-साम्राज्य के अधीन कर लिया। किसी व्यक्ति की किसी वस्तु को नहीं छुआ। उस देशवासियों के धनप्राण की इस प्रकार रक्षा होने लगी, कि वह लोग सन्तोष से वश्यता स्वीकार करने लगे। कृषकगण निर्भय होकर अपने-अपने कार्य करने लगे, और शीघ्र ही सारे प्रदेश ने शान्तभाव धारण कर लिया। केवल आशीर दुर्ग अनधिकृत रहा।

सम्राट् वहाँ पहुँचे। उन्होंने दुर्ग की अवस्था देखकर समझ लिया, कि जिस उपाय से चित्तौड़ में फलोदय हुआ था, वह

यहाँ काम न देगा। उन्होंने सैन्य द्वारा दुर्ग को चारों ओर से भले प्रकार वेष्टन किया और बाहुबल से दुर्ग पर अधिकार करने का प्रयास करने लगे। क्रम से उस दुर्ग के आरोहण-पथ पर एक छोटे से पहाड़ को ले लिया। वहाँ से सब से नीचे वाले दुर्ग को लेने की चेष्टा करने लगे।

बहादुर ने आत्मरक्षा और आहार के लिये दुर्ग में बहुत से मनुष्य और पशु भर लिये थे। वहाँ महामारी फैल गई, जिससे २५ हज़ार पशु मर गये। मनुष्य के लिये दो क्लेश उपस्थित हुए। उनको लकवा और दृष्टिहीनता होने लगी। इनके निवारण के लिये बहादुर ने न कोई चिकित्सालय बनवाया और न मृत शरीरों को स्थानान्तरित करवाया। सेना पीड़ित और असन्तुष्ट होने लगी। एक दल स्वदेश-शत्रुओं का दुर्ग को छोड़कर मुगल-सेनावास में पहुँचा और नीचेवाले दुर्ग पर अधिकार करने के लिये एक गुप्त राह बतलादी। एक तो अँधेरी रात और ऊपर से आँधी-पानी आगया। समस्त पृथ्वी घोर तमसावृत होगई। मुग़ल-सेना नीरव निद्रित होगई। दुर्ग-स्थित सैनिकगण दुर्ग-रक्षा का भार भीषण प्रकृति पर छोड़ कर अचेत होगये। समस्त जगत् निद्रादेवी की गोद में चला गया। ऐसे समय में महासाहसी अबुलफ़ज़ल, एक दल अति साहसी और विश्वासी सैनिकों का लेकर चुपचाप शिविर से निकल पड़े। उसी आँधी-मेह में, उसी गुप्त राह से वह दुर्ग पर चढ़ने लगे। जब उन्होंने सब से नीचे वाले दुर्ग का द्वार

तोड़ा, उस समय दुर्गस्थित सेना को चैतन्य हुआ ; घोर संग्राम होने लगा। मुग़ल-सेना ने महापराक्रम से दुर्ग ले लिया। विपक्षी विताड़ित होकर ऊपर के दुर्ग में चले गये।

यह देखकर बहादुर के मन में भय का सञ्चार हुआ। उस समय के लोगों को विश्वास था कि, अकबर सिद्धपुरुष हैं, मन्त्रबल से दुर्ग अधिकार करते हैं, मन्त्र द्वारा व्याधि और विपद् को विपक्षियों पर डाल देते हैं। बहादुर को इस समय इन सब बातों पर विश्वास आगया। और कोई उपाय जब न सूझा, तो उसने स्वेच्छा से दुर्ग को सम्राट् के हाथ में समर्पण कर दिया।

सम्राट् ने ११ महीने के अवरोध के पीछे उस पर अधिकार किया। सम्राट् उसको देखने को चले। उसकी निर्माण-पद्धति को देखकर विस्मित होगये। उन्होंने देखा, कि शत्रुओं पर १०००—२००० मन के भारी पत्थर फेंकने के लिये यन्त्र रक्खे हुए हैं, दुर्ग की प्राचीर पर बहुत से बड़े-बड़े कड़ाह रक्खे हुए हैं, जिनमें से प्रत्येक में २०-३० मन तेल गरम करके नीचे के आक्रमण करने वालों के ऊपर डाल सकते हैं। १३०० बदूकें, सब प्रकार के आहार, अफ़ीम, मदिरा, औषधि और मनुष्य के नित्य-प्रयोजनीय सब प्रकार के सामानोंके ढेर लगे हुए हैं। कई सहस्र सेनाने ११ महीनों तक उनको व्यय किया है, तथापि तेल और अनाज इतने अधिक परिमाण में बच रहा है, कि जो अछूताही रक्खा हुआ है। ग्यारह महीने रात और दिन

अविराम गोले-गोलियों का वर्षण होता रहा, तथापि बारूद और गोलों इत्यादि के ढेर लगे हुए हैं, मानों उनको किसीने छुआ तक नहीं है। सम्राट् यह सब देखकर बहुत विस्मित हुए। उन्होंने अबुलफ़ज़ल के उपर सम्मानवर्षा की, महागौरव-सूचक पताका और डङ्का प्रदान किये, और दक्षिण प्रदेश विजय करने का भार उनकोही दिया।

आशीर दुर्ग जैसे दुर्ग के पतन को देखकर, अहमदनगर जैसे राज्य के परिणाम को देखकर, बीजापुर और गोलकुण्डाके राजाओं को सम्राट् से शत्रुता करने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने सम्राट् की वश्यता स्वीकार करली।

असदबेग ने बीजापुर का वर्णन इस प्रकार किया है,—"यहाँ बहुतसी ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें हैं, बीच-बीच में छोटी-छोटी सड़कें हैं। यहाँ का बाज़ार ६० हाथ चौड़ा और ४ मील लम्बा है। (इससे बोध होता है, कि चार मील लम्बे राजपथ पर दोनों ओर दूकानें हैं) प्रत्येक दूकान के सामने एक-एक सुन्दर श्यामल वृक्ष है। बाज़ार परिष्कार और परिच्छन्न है। वह सब प्रकारके पदार्थों से परिपूर्ण है। यहाँ कपड़ा बेचनेवाले, जड़िया, ज़िरह बनानेवाले इत्यादि की भाँति-भाँति की दूकानें हैं। जड़िया लोगों की दूकानों पर सर्व प्रकार के रत्ननिर्मित अलङ्कार, छुरी, आईने और कृत्रिम पक्षी इत्यादि प्रस्तुत रहते हैं। लकड़ी के चौखटों में वह सब वस्तुयें अति मनोहर भाव से सुसज्जित रहती हैं। कपड़े बेचनेवालों की दूकानों

में विविध प्रकार के कपड़े काष्ठाधार पर सुन्दर रूपसे अलंकृत हैं। सुगन्ध बेचनेवालों को दूकानों में बहुत प्रकार के चोनी के बर्त्तन, मूल्यवान् स्फटिक के बर्त्तन और अति उत्कृष्ट सुगन्धित द्रव्य ठौर-ठौर पर सज्जित हैं। फलों की दूकानों पर भारत के सभी सुमिष्ट फल रहते हैं। और मद्य-विक्रेता की दूकान पर आपको सुन्दरी नर्त्तकी, गायिका और रमणी सभी आपके आदेश पालन के लिये प्रस्तुत हैं। संक्षेपत: समुदय बाज़ार और अट्टालिकायें मणिमुक्ता, खाद्यद्रव्य, सुगन्ध, मदिरा, नर्त्तकी और सुन्दरीगण से परिपूर्ण है। एक राजपथ पर सहस्रों मनुष्य मद्यपान कर रहे हैं। नर्त्तकी, प्रणयी और बहुत से आमोदप्रिय व्यक्ति इकट्ठे हो रहे हैं; परन्तु कोई किसी के साथ कलह नहीं करता है। बोध होता है, कि इस सुविस्तृत पृथ्वी पर और किसी स्थान में इससे अधिक विस्मयकर दृश्य नहीं होगा।" इससे बढ़कर अध:पतन का हेतु और क्या हो सकता है?

कुमार दानियाल दक्षिण प्रदेश, बरार, खाण्डव प्रदेश, मालवा और गुजरातके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। सम्राट् उस विस्तृत भूभाग को मुग़ल-साम्राज्य में मिलाकर महासमारोह से आगरे को चले। फिर भी भारत के दक्षिणी प्रान्त में स्वाधीन हिन्दूराजा हिन्दूगौरव की संरक्षा करते रहे।

सत्रहवाँ अध्याय।

सलीम का विद्रोह और अबुलफ़ज़ल की हत्या।

All strife is caused by this, that men neglecting the necessities of their state, occupy themselves with extraneous concerns. —AKBAR.

भारत का आकाश मेघशून्य होगया है, अन्धकारके बदले उज्ज्वल चन्द्रतारा हृदय में धारण किये हुए है। भारत के उद्यान में भाँति-भाँति के मनोहर फूल कुञ्ज-कुञ्ज में, स्तवक-स्तवकमें प्रस्फुटित हो रहे हैं। बेला, जुही, चमेली, रजनीगन्धा प्रभृति असंख्य कुसुम-कामिनीगण अमल-धवल मलमल के वस्त्र पहन-कर, चन्द्रप्रभा से मुख स्निग्धोज्ज्वल करके, ज्योत्स्ना-प्रतिफलित मानो मणिमुक्ताविखचित नवकिशलय से अलङ्कृत होकर, मुस्कराती हुई दल के दल निकल कर, सुमन्द मारुत के हिलोड़ों से हिल-हिल कर हँसती-

हँसती चारों ओर मनोहर शोभा विस्तार करती हैं। सान्ध्य-समीरण उनकी सुगन्धि का सब को उपहार देता है। रूपक-प्रिय चारणलोग सम्राट् के अतुलनीय कीर्त्तिकलाप को इसी प्रकार वर्णन कर रहे हैं और तज्जनित उपकार का प्रचार कर रहे हैं और सरलचित्त हिन्दूलोग गुणसे पराजित होकर "दिल्ली-श्वरोवा जगदीश्वरोवा" कह-कहकर आनन्दसे गान कर रहे हैं।

सम्राट् इस समय उन्नति के शिखर पर पहुँच चुके थे। उनका लोकहितकर कीर्त्तिकलाप भारतवर्ष-भर में फैल गया था। उनका यशःसौरभ चारों ओर आमोदित होरहा था। वह सुविस्तृत भारत में प्रतिद्वन्द्वीविहीन होगये थे। उनका साम्राज्य हिन्दूकुश पर्वत से ब्रह्मपुत्र तक और हिमालय से दक्षिण प्रदेश तक फैल चुका था। उन्होंने बाहुबल से समग्र देश में शान्ति स्थापन करदी थी, बाहुबल से वैदेशिक आक्रमणों का निवारण कर दिया था। दूरदर्शी राजनीति द्वारा हिन्दू-मुसल्मानों में सद्भाव स्थापन करके, स्वदेशहितैषिता द्वारा अधःपतित भारतवर्ष को महागौरवान्वित कर दिया था।

शेख़ मुबारक सम्राट् के हाथ में धर्म-सम्बन्धी सर्वप्रधान क्षमता अर्पण करके संसार से विदा हो चुके थे। वह राज-दरबार और राजधानी के कोलाहल, निन्दा और विद्वेष से अलग होकर लाहौर में ईश्वर-चिन्ता में अपने समय को अतिवाहित करते थे। सन् १५९३ ई० में, नव्वे वर्ष की आयु में परलोक सिधारे। फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल पितृ-शोकसे अधीर होगये। उन्होंने हिन्दू

रीति के अनुसार चौरकर्म करवाया। सम्राट् भी उनके लिये अत्यन्त शोकाकुल हुए। शतमुख से उनकी गुणावली कीर्त्तन करने लगे। उन्होंने क़ुरानकी एक वृहत् और उत्कृष्ट व्याख्या तय्यार की थी। बदाऊनीने उनके उदार धर्म-मतके लिये उनकी भूयसी निन्दा की है, किन्तु इस बातको स्वीकार करने पर वह भी बाध्य हुआ है, कि शेख़ मुबारक उस युगमें एक महाप्राज्ञ व्यक्ति थे।

सम्राट् फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्लको अत्यन्त चाहते थे। सम्राट्ने जिस उदार नीतिका अनुसरण करके भारतका महोपकार साधन किया था, जिसके कारण वह हिन्दू और मुसल्मान, अँगरेज़ और जर्मन इत्यादिसे सर्व्वोच्च श्रेणीके सम्राट् कहे जाकर कीर्त्तित हुए हैं, उस उदारनीति का इन दोनों भाइयोंने जैसे अन्तःकरणसे समर्थन किया था, उस प्रकार और किसी मुसल्मानने नहीं किया।

उस समय आधीरातका समय था, जब कि सम्राट्ने सुना कि फ़ैज़ी मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। सम्राट् शीघ्र ही द्रुत गतिसे कविवरके भवन पर पहुँचे। प्रिय बन्धु के पास पहुँचकर उसको संज्ञाशून्य देखकर सम्राट् शोक से अधीर होगये। आत्मसंयम-रहित होकर, सम्राट्ने शोककातर कण्ठसे विलाप करते हुए कहा,—"मैं चिकित्सकशिरोमणि अली को लाया हूँ, तुम नीरव क्यों हो?" सम्राट्को उत्तर कौन दे? उनकी सम्बर्द्धना कौन करे? जिस महाप्राण ने इतने दिनों तक

सम्राट्की सेवा की थी, आज वही महाप्रस्थान के लिये उद्यत है। संसार को छोड़कर, सम्राट् को भूलकर, ईश्वर की ओर धावित होरहा है। सम्राट्ने उत्तर नहीं पाया। कविवर को पुकार-पुकार कर जब वह चैतन्य न कर सके, तो शोकविह्वल होकर उच्च स्वर से रोदन करने लगे, अपना शिरस्थित मुकुट पृथ्वी पर डाल दिया। कुछ देर इसी प्रकार विलाप करके सम्राट् अबुलफ़ज़्ल के पास गये। वह दूसरे घर में भाई के लिये विलाप कर रहे थे। वहाँ थोड़ी देर अवस्थान करके सम्राट् शोकाकुल चित्त से घर लौट आये। भारत के दुर्भाग्य से उदारमतावलम्बी फ़ैज़ी ने ५० वर्ष की वयस में, १५९५ ई० में मानवलीला संवरण की। सम्राट् ने पुराने आगरे में, महासमारोह से उनको समाधि प्रदान की। उनके पाठागार में ४३०० पुस्तकें थीं। उनको सम्राट् ने अपने पुस्तकालय में मिला लिया। फ़ैज़ी-रचित काव्यों का भारत में बड़ा आदर है। अमीर ख़ुसरो के अतिरिक्त भारत में फ़ैज़ी की तुलना का मुसल्मान-कवि नहीं जन्मा। फ़ैज़ी सन्तुष्ट-चित्त, परोपकारी और दाता थे। शत्रु और मित्र, परिचित और अपरिचित सभी उनके घर में आश्रय पाते थे। वह दरिद्रियों के बन्धु थे। वह दरिद्रों को आहार और औषधि अकातर-भाव से वितरण करते थे। एक बार सम्राट् बदाऊनी से अत्यन्त रुष्ट हो गये थे। वह बहुत दिनों तक दरबारमें नहीं आने पाये थे। शेषमें, सम्राट् की अनुकम्पा लाभ करने को

आशा से वह फ़ैज़ी के घर गये। फ़ैज़ी ने सम्राट् की प्रसन्नता सम्पादन करने के अतिरिक्त बदाऊनी के और भी उपकार किये थे; तथापि बदाऊनी इत्यादि अनुदार मुसल्मान फ़ैज़ी से कितनी घृणा करते थे, यह बात नीचे की पंक्तियोंसे विदित होगी। बदाऊनी ने लिखा है,—"शेख़ फ़ैज़ी गुप्त और प्रकाश्यभाव से दिनरात मुसल्मान-धर्म और जाति की निन्दा करता है। जो बातें मुसल्मान-धर्मानुमोदित हैं, उनका वह अनुष्ठान नहीं करता है; जो बातें उक्त धर्म में निषिद्ध हैं, वह उनका ही प्रतिपालन करता है। उसका स्वभाव ऐसा घृणित है, कि उसकी अपेक्षा हिन्दू, यहूदी और ईसाई इत्यादिकों के चरित्र भी सहस्र गुण श्रेष्ठ हैं। उसने ४० वर्ष तक काव्य-रचना की है, किन्तु उसमें विन्दुमात्र भी सौन्दर्य नहीं है, भावका पारिपाट्य नहीं है, धर्म का संस्रव नहीं है।" अनुदार और अदूरदर्शी मुसल्मान इस समय फ़ैज़ीकी मृत्यु से परमानन्दित हुए।

जो लोग उदारता से विभूषित थे, और सम्राट् की उदार-नीतिका समर्थन करते थे, उन सबको यह अनुदार मुसल्मान-सम्प्रदाय सदैव घृणाकी दृष्टिसे देखता था। ये लोग सम्राट् से भी घृणा करते थे, उनके विरुद्ध मूर्ख मुसल्मानोंको विद्रोही होने के लिये उत्साहित करते थे। इस विद्रोहका परिणाम पहले ही वर्णित हो चुका है। उस समय तो ये लोग अकृत-कार्य होकर राख के ढेर से दबी हुई अग्नि की भाँति हो गये

थे; परन्तु इस समय कुमार सलीमको अपने मतमें करने और उसे सम्राट्के विरुद्ध उत्तेजित करने का प्रयास करने लगे। मौलवी लोग उसके सामने उसकी स्तुति और सम्राट् की निन्दा करने लगे। समय और अवसर पाते ही उसके कानों में कुपरामर्श का हलाहल टपकाने लगे। इन बातोंके कारण कुमारकी सुबुद्धि विलुप्त होगई। सम्राट् ने उसकी शिक्षा के लिये विविध उपाय अवलम्बन किये थे, परन्तु सबही व्यर्थ हुए। वह विलासिता में बहुतही डूब गया। इसी को उसने सुखका निदान समझ लिया। वह सदैव अनुदार और हिन्दू-विद्वेषपूर्ण खुशामदी मुसल्मानोंसे घिरा रहता था, उनके ही परामर्शानुसार चलता था। उनके बारम्बार सिखलाने से कुमार हिन्दू-विद्वेष से परिपूर्ण हो गया। हाय, सम्राट् की आशा विफल हुई! उन्होंने सोचा था, कि उनके वंशधरों के शरीर में हिन्दू-रक्त प्रवाहित होने के कारण वह हिन्दुओं के पक्षपाती होंगे, और हिन्दू-मुसल्मानों का सम्मिलन सम्भव होगा। वह आशा तिरोहित होगई। इस समय कुमार मुसल्मानों को आकृष्ट करने के लिये हिन्दुओं से विद्वेष करने लगा। मौलवी लोगों के सिखलाने से पिताके सत्कार्यों का प्रतिवाद करके कहता था,—"आप हिन्दुओंके मूर्त्ति-मन्दिरों के निर्माण में बाधा डालने से क्यों रोकते हैं?" सलीम इसको किस प्रकार समझता कि, सम्राट् मुग़ल-साम्राज्य को हिन्दू-मुसल्मानोंका सम्मिलित साम्राज्य बनाकर महाशक्तिशाली

बनानेका प्रयास कर रहे हैं। अति अनुदार, अति क्षुद्र प्राणी महाप्राण अकबर के महासंकल्प के मर्म को किस प्रकार समझता? मौलवी लोग सलीमको हिन्दू-विद्वेषी देखकर, इसलाम-धर्मका अनुरागी समझकर, आनन्दसे उत्फुल्ल होकर, आशासे अधीर होकर, उसको और भी अधिक उत्साहित करने लगे। उसको यहाँ तक समझाया, कि सम्राट्को सिंहासन-च्युत करके आप गद्दीपर बैठ जावें। उन्होंने (मौलवियोंने) यह नहीं समझा, कि सलीम दुश्चरित्र है, शराबी है और किसी धर्म में उसको विश्वास नहीं है। उन्होंने केवल इतनाही सोचना आवश्यक समझा, कि सम्राट्को हटाकर किसी भी मुसल्मान को सिंहासनपर बैठानेमात्रसे वे लोग लाभवान् हो सकते हैं। इस बातको सोचकर ही वे अधीर होगये।

पिता अपने पुत्रको कितने स्नेह-सुधा द्वारा परिपुष्ट करता है, इसको कदाचित् ही कोई पुत्र समझता हो। यही कारण था, कि सम्राट्के अपने पुत्रको प्राणों से भी अधिक चाहने पर भी, पुत्र दूसरोंके समझानेसे कृतघ्न होगया। सलीम अदूर-दर्शी, भ्रमान्ध और स्वार्थ-पर था; इसी कारण वह सम्राट्का ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी होनेपर भी, पिताकी जीवित अवस्थामें ही सिंहासन के लिये व्याकुल होगया; पिताको सिंहासनच्युत करने के लिये अग्रसर हुआ; जनक के विरुद्ध विद्रोहकी पताका उड़ाई। वह अनुदार मुसल्मान अमात्यों का प्रियपात्र था, उनलोगों से सहायता-प्राप्ति की आशा कर

रहा था । और यह सम्भव भी नहीं था, कि उनलोगोंके सहायता करने के प्रण किये बिनाही, अपनेही बाहुबलके भरोसे, वह ऐसे महाशक्तिशाली सम्राट्के विरुद्ध युद्ध करनेका साहस करता होगा ।

सम्राट् ने उसको बहुत से सदुपदेश दिये और कहा, "मेरे सदुपदेश तुम्हारे सहोदर की भाँति हैं, इनको तुम बड़े यत्नसे पालन करो ।" परन्तु उन सब सदुपदेशोंका यह परिणाम हुआ, कि प्रिय पुत्र पिता के साथ शत्रुताचरण में प्रवृत्त हुआ । सम्राट् जिस समय दक्षिण प्रदेश की विजयमें लिप्त होरहे थे, उस समय उन्होंने सलीमको राजा मानसिंहके साथ मेवाड़-विजय को भेजा । वह पिता के आदेश की अवहेला करके, जनक के अपार स्नेह और करुणाको भूलकर, पिता के अनुपस्थिति-काल में, आगरा अधिकार करने को धावित हुआ । उसने यमुना पार करके आगरे के द्वार पर पहुँचकर, शासनकर्त्तासे महानगरी उसके हाथमें देदेने को कहा । वास्तव में उस समय आगराही राजधानी थी, और अपार धनरत्न सब वहीं था । परन्तु जब शासनकर्त्ता ने उसकी इच्छा पूर्ण नहीं की, तब वह इलाहाबाद अधिकार करने की इच्छा से उधरको बढ़ा ।

तीक्ष्णबुद्धि राजा मानसिंह ने सलीम की इच्छाको पहले ही समझ लिया था, और यथासमय वह संवाद सम्राट् के पास भेज भी दिया था । उदारहृदय सम्राट् को उस संवाद

पर विश्वास न हुआ। वह सोच भी न सके, कि पुत्र उनके से निरपराधी और स्नेहमय जनक की विपक्षता करेगा और शत्रुताचरण में प्रवृत्त होगा। क्रम से संवाद मिला, कि उनका पुत्र उनके प्रिय कार्यको परित्याग करके, मेवाड़-विजय की उपेक्षा करके, राजा मानसिंह के उपदेश की अवहेला करके, सम्राट् के आदेश की अवज्ञा करके, आगरेपर अधिकार करने को गया है। सम्राट् ने सलीम की अभिसन्धिका हाल जान लिया है, वह मेवाड़ को परित्याग करके सम्राट्के असन्तोषका कारण हुआ है—यह कोई बात न लिखकर, सम्राट् ने प्राणाधिक पुत्रको राजा मानसिंह के साथ बङ्गालके विद्रोह-दमनके लिये शीघ्र जानेके लिये अति स्नेहपूर्वक सूचना देकर मधुर भावका पत्र लिखा।

कुमार तो पिताका आदेश पहले ही लङ्घन कर चुका था, अब भी अवहेला की। सम्राट्-जननी पौत्र से मिलकर उसको सत्पथ पर लानेके लिये उधरको धावित हुईं। परन्तु सलीम उनके शुभागमन का संवाद पाकर द्रुतगामी नौकापर चढ़कर अदृश्य होगया। पितामही को सम्मान प्रदर्शन करना भी आवश्यक न समझा। सम्राट्-जननी विफलमनोरथ होकर दुःखित चित्तसे लौट आईं।

सलीम ने इलाहाबाद पर अधिकार कर लिया। वहाँ उसे ३० लाख रुपये मिले। वह सम्राट् उपाधि धारण करके पिता से प्रतिद्वन्द्विता करने में प्रवृत्त हुआ। वह स्वार्थसाधन के लिये

विद्रोही हुआ था, परन्तु मुसल्मानों को आकृष्ट करने के लिये यह प्रकाशित करने लगा, कि पिता के विधर्मी होनेके कारण वह इसलाम-धर्मकी रक्षाके लिये खड़ा हुआ है। मुसल्मान लोग सम्राट् की क्षमतासे शंकित होकर सलीमसे प्रकाश्यभाव से मिलनेमें विलम्ब करने लगे, किन्तु गुप्तभावसे सलीम को उत्साहित करने लगे, प्रश्रय देने लगे। सलीमने पिताके क्रोध को उद्दीपन करनेके लिये अपने नामके सोने और चाँदीके सिक्के ढलवाकर पिता के पास भेजे। सम्राट् पुत्र के साथ युद्ध करना अनुचित समझकर स्नेह द्वारा उसको वशीभूत करनेकी चेष्टा करने लगे, बारम्बार स्नेह और प्रेम निदर्शन प्रदर्शन करने लगे। सर्प क्या कभी स्नेहसे पराजित होता है? वह क्या कभी सौहार्द्द में आबद्ध होता है? सम्राट्की सभी चेष्टायें व्यर्थ हुईं।

जो लोग अपनी-अपनी उदारता से सम्राट् की शासननीति और धर्ममतका समर्थन करते थे, वह एक-एक करके परलोक को चले गये। सम्राट्के अनुदार प्रधान मुसल्मान अमात्यों ने सोचा, कि इस समय यदि अबुलफ़ज़ल अपसारित हो जाय तो सम्भव है, कि सम्राट्का मत परिवर्त्तन होसके। वह लोग अबुलफ़ज़ल से सर्वापेक्षा अधिक घृणा करते थे। इसलिये वे उसके निहत करने के षड़्यन्त्रमें लिप्त हुए।

सम्राट् अबुलफ़ज़ल को अत्यन्त चाहते थे, उसका विश्वास करते थे और उस से परामर्श लेते थे। अबुलफ़ज़्ल भी

सम्राट् का देवता की भाँति सम्मान करते थे, प्राणपण से उनका कार्य सम्पादन करते थे। अबुलफ़ज़ल महाप्राज्ञ थे, उनका हृदय उदार था, उनकी सब धर्मों में तुल्य आस्था थी। वह हिन्दुओं को कभी विद्वेष की आँखों से नहीं देखते थे, हिन्दूधर्म से कभी घृणा नहीं करते थे। उनके अशेष गुणों के आधार होने के कारण ही सम्राट् उन पर मुग्ध हुए थे। गुण से तो सबही पराजित होते हैं। इन गुणों के कारण ही, वह सामान्य अवस्था से राज्य के सम्भ्रान्त मनुष्यों में परिगणित हो गये थे, सुविशाल मुग़ल-साम्राज्य के सर्वप्रधान अमात्यका पद प्राप्त कर सके थे, एक बार सम्राट् से ५० हज़ार रुपये पुरस्कार में पाये थे। उनकी दानशीलता के वर्णन का अन्त करना कठिन है। उनके सुविशाल रन्धन-विभाग में बहुत से लोग काम करते थे। उनका पुत्र अब्दुर्रहमान इस विभाग का अध्यक्ष था। अबुलफ़ज़ल जिस समय दक्षिण प्रदेश में अवस्थित थे, उस समय वह प्रतिदिन बहुतसा खाद्य द्रव्य प्रस्तुत कराके सम्भ्रान्त लोगों में वितरण करते थे। खिचड़ी तय्यार कराकर, प्रतिदिन प्रभात से आधी रात तक, असंख्य दरिद्रों को खिलाते थे। इसके अतिरिक्त दरिद्रों को धन दान भी करते थे, दुःखियों का दुःख दूर करने में वह कभी पश्चात्पद नहीं होते थे। वह स्वयं ख़ूब भोजन कर सकते थे। लिखा है, कि पानी के अतिरिक्त वह प्रतिदिन २२ सेर अन्न खा और पचा सकते थे। वह अथवा उनके परिवार में कभी कोई मनु-

य किसी कारण से भी किसी को कटु वाक्य नहीं कहता था। यहाँ तक कि नौकर का भी उन्होंने कभी तिरस्कार नहीं किया। जिस दिन भोजन अच्छा नहीं बनता था, उस दिन पाचक को निन्दा न करके, उसके सम्बन्ध में कोई मन्तव्य प्रकाशित न करके, अपने पुत्र से उसके खाने को कहते थे। पुत्र उसको खाकर समझ जाता था, कि वह उत्तम रूपसे प्रस्तुत नहीं हुआ है। वह भी पाचक का तिरस्कार न करके उस खाद्य द्रव्य को खाने के लिये उससे अनुरोध करता था। इस परिवार का स्वभाव ऐसा मधुर था! अबुलफ़ज़ल ने कभी अपने किसी नौकर को कर्मच्युत नहीं किया। जब किसी नौकरसे कोई भूल हो जाती थी तो उसको कर्मच्युत न करके, उस कामको दूसरे नौकर को देदेते थे। पहला नौकर बैठकर वेतन पाता था। मुसल्मान गद्य-लेखकों में अबुलफ़ज़ल प्रतिद्वन्द्वी-विहीन हैं। सम्राट् अन्य धर्मावलम्बियों से तर्कयुद्ध के लिये अबुलफ़ज़ल को नियुक्त करके, उनकी तर्क शक्ति और पाण्डित्य को देखकर मुग्ध होते थे। अबुलफ़ज़ल सब विषयों का युक्ति द्वारा विचार करते थे, इसी कारण मुसल्मान उनसे अश्रद्धा करते थे। वह सम्राट् की उदारनीति का समर्थन करते थे, इसीलिये वह लोग उनकी प्रभूत निन्दा करते थे। वह इसलाम धर्म में दोष निकालते हैं, यह कहकर मुसल्मान लोग उनसे अत्यन्त घृणा करते थे। वह अत्यन्त क्षमताशाली थे एवं सम्राट् उनको प्राणों से भी अधिक चाहते थे, इसी कारण मुसल्मान उनके

अनिष्ट-साधन में समर्थ नहीं हुए थे ; परन्तु वह लोग सर्वान्तः-करण से उनके सर्वनाश की कामना करते रहते थे। अब उनके अभीष्ट-साधन का अवसर आगया। वर्णित समय में अबुलफ़ज़ल दक्षिण प्रदेश में शान्ति स्थापन के लिए नियुक्त थे। सम्राट् ने उनको किसी गुरुतर कार्य में परामर्श लेने के लिये शीघ्र ही आगरे आने के लिये पत्र लिखा। इस समय सम्राट्का कुमार सलीम के साथ सद्भाव नहीं था, वह विद्रोही भाव से इलाहाबाद में रहता था। सम्राट् के मुसल्मान कर्मचारियों ने सम्राट् के पत्र का मर्म सलीम के पास प्रेरण कर दिया और सम्भवतः यह भी लिख दिया, कि यह परामर्श आपही के विषय में होगा और अबुलफ़ज़ल आपके पक्षपाती नहीं हैं। सलीम जानता था, कि सम्राट् अबुलफ़ज़ल के परामर्श द्वारा परिचालित होते हैं, वह यह भी जानता था कि मेरे कुत्सित चरित्र के कारण अबुलफ़ज़ल मुझ से घृणा करते हैं। इसीसे सलीम ने निश्चय किया, कि राह में ही अबुलफ़ज़ल को निहत करना चाहिये। उनके मृत्यु-मुखमें चले जाने पर, फिर कोई भी मेरे विरुद्ध सम्राट् को परामर्श देने का साहस न करेगा।

दक्षिण प्रदेश से आगरे आने की राह में बीरसिंह नामक एक दुर्वृत्त मनुष्य वास करता था। इस व्यक्ति ने दस्युता द्वारा चारों ओर अपनी प्रतिपत्ति स्थापित कर ली थी। अबु-लफ़ज़ल सम्राट् से मिलने की आशा से, थोड़ीसी सेना लेकर,

इस पापात्मा के पाप क्षेत्र के निकट पहुँचे। उनके पास जो कुछ थोड़ी सी सेना थी, उसको भी उन्होंने उसी ठौर से विदा कर दिया। केवल थोड़ी से अनुचरों के साथ द्रुतगति से आगरे को जाने लगे। राह में एक फ़क़ीर से उनका साक्षात् हुआ। फ़क़ीर ने कहा,—"बीरसिंह कल तुमको मार डालेगा। अबुलफ़ज़ल ने उत्तर दिया,—"मृत्यु से भय करना वृथा है। मृत्युकाल को दूर हटाने में कौन समर्थ है?" यह कहकर, अपनी रीतिके अनुसार उसको कुछ अर्थ प्रदान करके, उसको मधुर वचनों से परितुष्ट करके, मृत्यु के मुखमें धावित हुए। दूसरे दिन शुक्रवार था। अबुलफ़ज़ल प्रभात को उठकर, उपासना समाप्त करके, अमल-धवल परिच्छद धारण करके, खेमे से बाहर निकले। उस प्रदेश के जागीरदार और राजकर्मचारी प्राय: २०० अश्वारोही सेना सहित उनके सम्मान-प्रदर्शन के लिये आये। अबुलफ़ज़ल ने सब को मधुर सम्भाषण से तृप्त करके विदा किया। उनलोगों के चले जाने पर उन्होंने यात्रा की तय्यारी की। अबुलफ़ज़लका शिविर इस समय भी खड़ा था। नौकर-चाकर सब शिविर में ही थे। ऐसे समय वीरसिंह ने आक्रमण किया। पहले ही आक्रमण में उनके साथी छत्रभङ्ग होगये। अनेकों को शस्त्र ग्रहण करने तक का समय न मिला। एक व्यक्तिने दौड़कर अबुलफ़ज़लसे निवेदन किया, कि इस समय आपका द्रुतवेगसे निकल जाना ही कर्त्तव्य है। अबुलफज़ल ने उसका आशय समझ कर तीव्रस्वर

से कहा,—"तुम मुझसे भाग जानेको कहते हो!" उन्होंने वह परामर्श स्वीकार नहीं किया। विपक्षियोंकी संख्या ५०० थी। वह लोग अस्त्र इत्यादिसे सुसज्जित थे। जो कोई उनके सामने आया, उसीको उन्होंने मार डाला अथवा वन्दी कर लिया। एक नौकरने अबुलफ़ज़लके घोड़ेकी बाग पकड़ कर कहा,—"आप यहाँ खड़े-खड़े क्या करेंगे, प्रस्थान कीजिये, प्रस्थान कीजिये। जो कुछ कर्त्तव्य होगा, उसको हमलोगही सम्पादन करेंगे।" इतनेपर भी अबुलफ़ज़ल नहीं भागे। थोड़ी ही देरमें एक व्यक्तिने आकर पीछेसे अबुलफ़ज़लके भाला मारा। वह भाला शरीरमें आरपार होकर सम्मुखभागमें निकल आया। महात्मा अश्वसे नीचे गिर पड़े। एक दूसरे मनुष्यने तलवारसे उनका शिर काट लिया। जिन लोगोंको डाकुओंने वन्दी किया था, उनको आपही छोड़ दिया। उन्होंने अबुलफ़ज़ल की किसी वस्तु को नहीं छुआ, केवल उनका मस्तक लेकर चल दिये। असदवेग ने स्वयं लिखा है, कि यह दुःखद समाचार सुनकर मैं हत्यास्थल पर गया। अबुलफ़ज़ल का बहुमूल्य रत्नोंका सन्दूक और ४।५ लाख के मूल्य की सामग्री वहाँ से निरापद आगरे ले आया।

सलीम ने लिखा है—"अबुलफ़ज़ल को निहत करने के लिये मैंने ही वीरसिंह को आदेश दिया था, प्रचुर पुरस्कार देने का लोभ दिया था। वीरसिंह ने मेरा आदेश प्रतिपालन करके अबुलफ़ज़ल का छिन्नमुण्ड मेरे पास इलाहाबाद भेजा था।"*

इस प्रकार इस महाप्राण ने महाप्रस्थान किया। स्वदेश-हितैषी स्वदेशीय मनुष्यों के षड्यन्त्र से अकालमें ही काल का ग्रास हुआ। भारतभूमि बड़ी हतभागिनी है; तभी तो जो लोग उसको शक्तिशालिनी बनाने के प्रयासी हुए थे, उनको ही एक-एक करके प्रस्थान करना पड़ा। असदबेग ने सत्य ही लिखा है, "अबुलफ़ज़ल अपने समय के प्रतिभान्वित व्यक्तियोंमें अत्युत्कृष्ट थे—उस समय के वह एक दुर्लभ रत्न थे।"

अबुलफ़ज़ल मारे गये, परन्तु इस संवाद को सम्राट् के पास कौन ले जावे? सम्राट् उनको प्राणों से भी अधिक चाहते थे, हृदय से उनकी श्रद्धा करते थे। उस समय ऐसी रीति थी, कि जब कोई राजकुमार मरता था, तो उसका वकील शोकसूचक नील वर्ण का वस्त्र कमर में बाँधकर दीनभाव से सम्राट् के पास जाता था। इसी प्रथा का अनुकरण करके, अबुलफ़ज़ल का वकील उसी भाव से सम्राट् के पास गया। सम्राट् उसको देखकर रोने लगे, नयनयुगल वारिधारा वर्षण करने लगे, प्रिय सुहृद् के लिये उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। पुत्रशोक के समय भी वह इतने कातर नहीं हुए थे, इतना विलाप नहीं किया था! कई दिन तक वह किसी से नहीं मिले, न कोई राज-कार्य ही किया, केवल बन्धु के शोक में म्रियमाण रहे। जिन मुसल्मान अमात्यों ने इस पाप के अनुष्ठान में सलीम की सहायता की थी, वह इस समय सम्राट् की अवस्था अवलोकन करके शङ्कित हुए। उन्होंने सोचा,

कि यदि उनका अपराध प्रकाशित होगा तो अवश्यही सर्वनाश हो जायगा। यह सोचकर और अपनी प्राणरक्षाके लिये व्याकुल होकर उन्होंने यह प्रकाशित किया, कि कुमार सलीमने सिंहासन के लोभ से अबुलफ़ज़लको निहत किया है। सम्राट्ने यह सुनकर विलाप करते हुए कहा,—"हाय! सलीमको यदि सम्राट् होनेकी ही इच्छा थी, तो अबुलफ़ज़ल को न मारकर मुझे ही क्यों न मारा?" हायरे बन्धु-स्नेह!

अनुदार मुसल्मान समझते थे, कि अबुलफ़ज़ल ही अकबर के धर्ममत और शासननीति का मूल कारण था। इसी कारण से वह लोग उनके ही निहत करने के षड्यन्त्र में लिप्त हुए थे। वह इस समय उनके मरने के संवाद से बड़े आनन्दित हुए। सलीमने ही यह महाकार्य्य सम्पादन किया है, यह जानकर वह लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। सुचतुर सलीम भी अवसर समझकर प्रकाशित करने लगा, कि मैंने अबुलफ़ज़लकी हत्या इसी कारणसे की है, कि वह पिताको इसलाम-धर्मके विरुद्ध चलाता था। मुसल्मान लोग यह सुनकर हाथ उठाकर सलीमको आशीर्वाद देने लगे और उसकी उन्नति और मङ्गलके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करने लगे। सलीम इस प्रकार दुष्कार्य्य करके, अनुदार सम्भ्रान्त मुसल्मानोंको और भी अधिक आकृष्ट करने लगा।

सम्राट्ने प्रिय सुहृद्हन्ता कुपुत्रको प्रिय साम्राज्य न देने का निश्चय किया और वीरसिंहको समुचित दण्ड देनेको दृढ़

प्रतिज्ञा की। उन्होंने वीरसिंह के विरुद्ध अबुलफ़ज़ल के पुत्र, राजा राजसिंह, राजा पत्रदास और राय रायन प्रभृति सेना-पतियों के अधीन एक प्रबल सेना भेजी। उन लोगों को विशेष भाव से हुक्म दिया, कि किसी न किसी भाँति वीरसिंह का शिर हमारे पास उपस्थित करना ही होगा। वीरसिंह को कब साध्य था, कि मुग़ल-पराक्रम के सामने खड़ा होता। वह एक स्थान से दूसरे स्थान को भागकर आत्मरक्षा करने लगा, मुग़ल-सेना भी उसका अनुसरण करने लगी। शेषमें वह कोई उपाय न देखकर ४०० सेना देकर एक दुर्ग में आश्रित हुआ। मुग़ल-सेना ने भी उसको शीघ्रही घेर लिया। उस दुर्ग के एक ओर नदी थी। जब रात हुई, चारों ओर घना अन्धकार होगया, सब लोग निद्रा से अभिभूत होगये, उसी समय वीरसिंह नदी-किनारे की प्राचीर को तोड़कर घोड़े सहित नदी में कूद पड़ा और नदी पार करके भाग गया। मुग़ल-सेनापतियों ने एक दूसरे के ऊपर दोषारोपण करके कार्य का विवरण सम्राट् के पास भेजा। सम्राट् इसको सुनकर क्रोध से अधीर होगये, और शीघ्र ही असदबेग को यह निर्णय करने के लिये भेजा, कि किस सेनापति के दोषसे वीर-सिंह भागने में समर्थ हुआ है। असदबेग ने एक विस्तृत वस्त्र पर दुर्ग और नदी अङ्कित की, और जिस स्थान को तोड़ कर वीरसिंह नदीगर्भ में कूदा था वह भी मानचित्र में दिख-लाया। सेनापतिगण अपनी-अपनी सेना लिये हुए रात को

जिन-जिन स्थानों पर पड़े हुए थे, उनको उन लोगों ने उस मानचित्र पर अपनेही हाथों से लिखकर अपने-अपने दस्तख़त और मुहरसे अङ्कित किया। इसी मानचित्र को लेकर असदबेग सम्राट् के पास पहुँचा। ज्योंही वह सम्राट् के पास पहुँचा, त्योंही सम्राट् ने अधीर होकर पूछा,—"किसके दोष से वह भागा है?" असद ने शिर अवनत करके कहा,—"मैं सब हाल कहता हूँ।" सम्राट् और भी अधीर हुए और किसके दोष से बन्धुघातकने परित्राण पाया है, केवल इतना ही सुनने के लिये व्याकुल हो उठे। असद ने विनीत भाव से निवेदन किया,—"मुझे ऐसा ज्ञात नहीं होता है, कि किसी ने इच्छा-पूर्वक ऐसा किया है। सबही की असावधानता से ऐसा हुआ है, मेरा तो यही मत है।" इतने ही में एक सभासद बोल उठा, "असावधानता भी तो अपराध है।" असद ने उत्तर दिया,— "इच्छापूर्वक गर्हित कार्य करनेसे अपराध होता है, परन्तु असतर्कता को अपराध में गिनना उचित नहीं।" सम्राट् ने कहा,—"असद ठीक कहता है।" इस प्रकार असदबेग के कारण सेनापतिगण दण्ड से बचे। वीरसिंह भागकर बच जाने पर भी युद्ध में आहत हो चुका था; उसका सर्वस्व लुटगया था। इधर सम्राट् का समय भी पूरा हो चुका था। यदि वह कुछ दिन और जीवित रहते, तो अवश्य ही दुर्वृत्त को प्राणदण्ड होता।

ग्वालियर से १५ मील, दक्षिण-पूर्व के कोने में, अन्त्रि

नामक स्थानमें, महात्मा अबुलफ़ज़लका समाधिमन्दिर भग्ना-वस्था में खड़ा है। अब कौन यत्न करे? कौन सम्मान करे?

अठारहवाँ अध्याय ।

शासननीति ।

Divine worship in monarchs consists in their justice and good administration. —Akbar.

हमलोग सम्राट्के मनोहर जीवन-उद्यानमें भ्रमण करते-करते अब उसके उत्कृष्ट अंश में पहुँचे हैं। यूरोप ने मुख से प्रचार किया है, कि जो राजा प्रजा के मङ्गल-साधनमें उत्सर्गीकृत नहीं होता है, वह सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है। इस विधान द्वारा विचार करनेसे भी मानना होगा, कि अकबर केवल सिंहासन के उपयुक्त ही नहीं था, वरं उसने सिंहासनको अलंकृत किया था। अकबर-जीवनकी निकुञ्ज में, प्रजा के मङ्गल-साधनरूप सुन्दर फूल वृन्त-वृन्त में खिले थे। उसमें से सुगन्ध निकलती थी, मधुपकुल मधुर गुञ्जन करते थे, विहगगण सुललित स्वरसे दिशायें पूर्ण करते थे। कौन इसकी सुगन्ध, सौन्दर्य और माधुर्य्य पर मुग्ध नहीं होगा ?

शासन-नीति—सम्राट् की शासन-नीति कैसी उच्च, कैसी उदार, कैसी लोकहितकर थी! उन्होंने राजाओं के कर्त्तव्य इस प्रकार प्रकाशित किये हैं—"राजा सब मङ्गलों का निदान है। सब कामों की सफलता उसके ऊपर निर्भर है। गुण का समादर और न्यायानुमोदित शासन-प्रथा द्वारा ईश्वर की कृतज्ञता प्रकाशित करना उसका कर्त्तव्य है। राजाओंको ऐसे कार्यों द्वारा ही ईश्वरकी पूजा करनी चाहिये। अत्याचारी होना सभी के लिये अनुचित है। राजा पृथ्वी की रक्षा करने वाला है, सुतरां उसका अत्याचारी होना अत्यन्त गर्हित है। झूठ बोलना सभी के लिये निन्दनीय है, परन्तु राजाओंके लिये वह अत्यन्त ही गर्हित है। प्राणीजगत् जितना दया से वशीभूत हो सकता है, उतना और किसी वस्तु से नहीं होता है; इसीलिये सब के प्रति दया करना हमारा कर्त्तव्य है। दया और परोपकार समाज के सुख के निदान हैं। भारत की भिन्न-भिन्न जातियों और भिन्न-भिन्न धर्मों को देखकर मेरे चित्त में बड़ी अशान्ति होती है, परन्तु धर्म-मत में किसीको उत्पीड़न करना बहुत अनुचित है। क्योंकि जो ईश्वर के निर्दिष्ट पथपर जारहा है, उसको बाधा देना अत्यन्त अनुचित है और जो मूर्खता के वश होकर कुपथ में जाता है, इस अवस्था में वह भी मेरी दया का पात्र है। सर्व्वोपरि, सभी अपने-अपने विवेक के अनुसार चलने के अधिकारी

हैं। लोगों में मत-भेद होता है और वह आत्मकलह करते हैं, उसका यही कारण है कि वह वर्त्तमान अवस्था, अभाव और उद्देश्य की ओर ध्यान न देकर, सामान्य और बाहरी विषयों में मनोनिवेश करते हैं। जिन राज-कार्यों को प्रजा करने में समर्थ हो, वे राजा को नहीं करने चाहिये। क्योंकि यदि प्रजा भ्रम में पड़ेगी, तो राजा उसका संशोधन कर सकता है;किन्तु यदि राजा भ्रम में पड़ जायगा, तो उसका संशोधन कौन करेगा? राजाको सदा जय करनेका सङ्कल्प रखना चाहिये, नहीं तो प्रतिवेशी उसको पराजित करेंगे। सैन्यगण को सदैव युद्ध में अभ्यस्त रखना चाहिये, नहीं तो अभ्यास के अभाव से वह विलासी हो जायँगे। दरिद्र समाज का सर्वप्रधान शत्रु है, अपने साम्राज्य से उसे विताड़ित कर देना ही मेरा महासङ्कल्प था। मैंने दरिद्र के प्रतिविधान के लिये बहुत से उपाय बहुत से व्यक्तियों के हाथों में अर्पण किये थे;किन्तु हाय, उन लोगोंके अर्थलोभके कारण मेरे महत् उद्देश्य सिद्ध न हुए। ज्ञानानुशीलन सभी के लिये परम कर्त्तव्य है। हिन्दूशास्त्र में लिखा है, कि हम कभी नहीं मरेंगे, यह बात चित्त में रखकर असीम परिश्रम से ज्ञान और धन आहरण करना कर्त्तव्य है। किन्तु विलासी मन में समझता है, कि जब वह निश्चय ही मरेगा, तब परिश्रम क्यों करे? मैं समझता हूँ, कि मनुष्य-समाज का अत्यन्त आवश्यकीय कर्त्तव्य ज्ञान और धन आहरण करना ही

है; क्या जानें कल प्रभात को ही इस नश्वर शरीर को परित्याग करना पड़े; सुतरां आज ही समस्त ज्ञान और धन उपार्जन कर लेना चाहिये; कोई काम कल के लिये नहीं छोड़ना चाहिये। यद्यपि लोग कहते हैं कि ज्ञान-सञ्चय ही सम्पूर्णता-लाभ का कारण है, तथापि यदि उस ज्ञान के अनुसार कार्य-सम्पादन न किया जाय, तो उस ज्ञान का मूल्य क्या है? उससे तो मूर्खता ही श्रेष्ठ है।"

लिखा है, कि सम्राट् प्रातःकालको उठकर निर्जनमें बैठकर गम्भीर चिन्ता में निमग्न रहते थे। कौन सी चिन्ता उनके हृदय पर अधिकार करती थी? वह सोचते थे,—"मैं अपने पूर्ववर्त्ती मुसल्मान सम्राटों की नीति का अनुसरण करूँ, अथवा नई नीति का अनुसरण करूँ, अथवा नई नीति प्रवर्त्तित करके हिन्दू-मुसल्मानों को सम्मिलित करूँ? जब तक हिन्दू-मुसल्मानों में हिंसा-द्वेष प्रज्वलित रहेगा, तब तक किसी भी जाति का स्थायी मङ्गल नहीं होगा, और भारतवर्ष भी शक्तिशाली नहीं होगा।" इसी से उन्होंने सङ्कल्प किया था,—"अपने साम्राज्यको हिन्दू-मुसल्मानोंके सम्मिलित साम्राज्य में रूपान्तरित करूँगा।" इसीलिये उन्होंने सब से पहले अशेष गुणालंकृत राजा टोडरमल को उच्च राजकार्य में नियुक्त किया। इस संवाद का प्रचार होते ही मुसल्मान अमात्यगण विचलित होगये; वह लोग आन्दोलन और आस्फालनमें प्रवृत्त होगये। कुछ दिन हुए, दो बङ्गाली मुसल्मानों

को हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति का पद और कमिश्नरका पद अस्थायी रूपसे प्राप्त हुआ था, उसके लिये अँगरेज़ों ने जो आन्दोलन किया, वह इस आस्फालन की तुलना में कुछ भी नहीं था। मुसल्मान प्रधान पुरुष दलबद्ध हो गये, सब मिलकर सम्राट् के पास पहुँचे और मुसल्मान-साम्राज्य में हिन्दू नियुक्त करने के लिये घोर आपत्ति खड़ी की। सम्राट् ने उनको मीठी-मीठी बातों से सन्तुष्ट करके विदा किया। वह लोग नहीं जानते थे, कि सम्राट् भारत-साम्राज्य से हिन्दू-मुसल्मान-पार्थक्यको दूर करेंगे, और रक्तके बदले गुणके सम्मान को प्रतिष्ठित करेंगे। दिन पर दिन अतिवाहित होने लगे, सम्राट् हिन्दुओं को गुणों के अनुसार अत्युच्च पदों पर नियुक्त करने लगे। बहुत से मुसल्मान हिन्दुओं के अधीन काम करने में अपमान समझने लगे, कार्य ग्रहण करने में अस्वीकृत होने लगे, तथापि सम्राट् विचलित नहीं हुए। अखण्ड भारत के मङ्गलार्थ उन्होंने जो कर्त्तव्य समझा, उसके अनुष्ठानसे विरत नहीं हुए। वर्त्तमान अति उदार अँगरेज़ लोग भी हिन्दुओं को क्षुद्र प्रदेशके क्षुद्र कमिश्नरका स्थायी पद प्रदान नहीं करते हैं, परन्तु सम्राट् उस समय के हिन्दुओं को सुविस्तृत और समृद्धिशाली प्रदेशके अति गौरवयुक्त शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त करने लगे; उन लोगोंको वर्त्तमान गवर्नर और गवर्नरजनरल की अपेक्षा भी अत्यधिक क्षमताके परिचालनमें नियुक्त किया। वर्त्तमान समयमें अँगरेज़ लोग हिन्दुओंको अधीन सेनापतिका

पद भी नहीं देते हैं, परन्तु सम्राट् हिन्दुओंको अपनी विपुल-वाहिनी के सर्वप्रधान सेनापति के पद नियुक्त करते थे। वह हिन्दुओं को चाहते थे, उन का विश्वास करते थे। उन्होंने उनमेंसे सर्वप्रधान बन्धु, सर्वप्रधान सेनापति और सर्व-प्रधान महिषी संग्रह की थी, उन लोगों के मङ्गलके लिये सर्व प्रकार के उपाय अवलम्बन किये थे। परन्तु अनुदार और अदूरदर्शी मुसल्मान इसको किस प्रकार सहन कर सकते थे? वह लोग सम्राट् के कामको देखकर मर्माहत होगये। उनकी नीति के आमूल परिवर्त्तन के लिये निर्ब्बन्ध अनुरोध करने लगे, हिन्दुओं के ऊपर अविराम उत्पीड़न करने के लिये निरन्तर उत्साहित करने लगे। उन लोगोंके सिखलाने से कुमार सलीम तक ने सम्राट् की नीति का प्रतिवाद करके कहा था, "आप हिन्दुओंके मूर्त्ति-मन्दिरों के निर्माण में बाधा डालने से क्यों रोकते हैं?" सम्राट् इन सब अदूरदर्शियों की उत्तेजना से तिलमात्र भी विचलित नहीं हुए; वरं वह दिन दिन उन्हीं आदेशों का प्रचार करने लगे, जिनसे हिन्दू-मुसल्मानों के पार्थक्य का दूर होना सम्भव था।

सम्राट् ने ऐसे कार्य का अनुष्ठान करके कैसा महत् कार्य सुसम्पन्न करने का संकल्प किया था! उस समय के मुसल्मान हिन्दुओं को असन्दिग्ध घृणा की दृष्टि से देखते थे। राजा टोडरमल और राजा बीरबल सदृश समुदय हिन्दूरत्नों को भी बदाऊनी ने 'कुत्ता' शब्दसे अभिहित किया है। उसने लिखा है,—"मैं एक

सुप्रसिद्ध मुसल्मान फ़क़ीर को सम्मान प्रदर्शन करने के लिये गया; परन्तु जब मैंने देखा कि उसने खड़े होकर हिन्दुओंका सम्मान किया, उस समय मेरी सारी भक्ति, सारी श्रद्धा अदृश्य होगई। मुझको ऐसे फ़क़ीर का सम्मान करने में घृणा बोध होने लगी।" और कहाँ तक लिखा जाय; हिन्दू मुसल्मानों के साथ सम्मिलित होकर, एक ही सेना संगठित करके, एक ही शत्रु के विनाश करने के लिये जाते थे; किन्तु युद्ध के समय वही मुसल्मान अपने परमोपकारी स्वपक्षीय हिन्दुओं को निहत करके परम गौरव का अनुभव करते थे। मुसल्मान किसी रूपमें किसी हिन्दू को निहत कर पाने ही से अति गौरव की 'धर्म-वीर' उपाधि ग्रहण करते थे।

जिस भारत में हिन्दू-मुसल्मानों में विवाद होनेपर, मुसल्मान अपराधी होनेपर भी बच जाता था; धनी और दरिद्रमें कलह होनेपर धनी का दोष उपेक्षा की नज़र से देखा जाता था; जनसाधारण लाञ्छित और लुण्ठित होते थे; उसी भारत में सम्राट् जाति, धर्म और पदका विचार न करके सब ही को एक ही विधि द्वारा शासन करने लगे। उन्होंने प्रचार कर दिया, कि विचारक के निकट हिन्दू-मुसल्मान और धनी—दरिद्र का प्रभेद नहीं है। जनसाधारण की स्वाधीनता में हस्तक्षेप करने का सबको निषेध कर दिया था। सभी स्वाधीन हैं, सभी समान हैं, ऐसी हितकर नीति प्रवर्तित कर दी थी। जिस देशका शासक स्वच्छेचारी था, केवल विला-

सिता में ही दिन अतिवाहित करता था, उसी देशमें सम्राट् जनसाधारण की इच्छानुसार शासनदण्ड परिचालन में प्रवृत्त हुए; दिन-रात उनकी उन्नति के लिये अकातर परिश्रम करने लगे। जिस देश में एक प्रदेश के अधिवासी दूसरे प्रदेश के अधिवासियों के साथ निरन्तर संग्राम करते थे, मुसल्मान दिनरात हिन्दुओं को पददलित करते थे, विनष्ट करने के प्रयास में रहते थे, उसी देश में सम्राट् ने शान्ति और सौहार्द्द स्थापन किया। हिन्दू-मुसल्मानों के बीच विवाह-प्रथा प्रवर्त्तित करदी। भारत के बहुत से धर्मों का सामञ्जस्य सम्पादन करके, समग्र भारत के लिये एक धर्म प्रतिष्ठित किया। भारत की विभिन्न जातियों को सम्मिलित करके, एक प्रबल राजनीतिक जाति संगठन करने में सचेष्ट हुए। जिस देश में हिन्दू और मुसल्मान धर्म के अनुशासन को बिना विचारे ही प्रतिपालन करने को बाध्य थे, मुसल्मान कुरान के अनुशासन की अवहेला करने पर अथवा धर्म-सम्बन्ध में कोई नया मत प्रवर्तित करने पर प्राणदण्ड से दण्डित होते थे, स्वाधीन चिन्ता और विवेकवाणी उच्छृङ्खलता और व्यभिचार की जननी कही जाकर तिरस्कृत और निन्दित होती थी, उस देश में सम्राट् ने स्वाधीन चिन्ता की उपकारिता की घोषणा की; सबही अपने-अपने विवेकानुसार चलने के अधिकारी हैं, यह नीति प्रवर्त्तित की। जिस भारत में एक प्रदेश के लोग अन्य देश की भाषा समझ नहीं सकते थे, सुख और दुःख में मौखिक सहानुभूति

भी प्रकाशित नहीं करते थे, उसी भारत में उन्होंने सबके लिये नई भाषा प्रचलित की। जिस से कृषिप्रधान देष में कृषिकार्य विस्तृत हो, शिल्पकी उन्नति हो, वाणिज्यकी श्रीवृद्धि हो, धन बढ़े, सब लोग सुख-स्वच्छन्दतासे कालातिपात करें, वही सब उपाय उन्होंने अवलम्बन किये। जिस देशके सभी लोग ज्ञाना-नुशीलनसे मुख मोड़ बैठे थे, गुणका आदर करनेसे विरत हो गये थे, उसी देशमें उन्होंने ज्ञानका विस्तार किया; सर्व प्रकार के गुणोंका उत्साह बढ़ाया। जिस देशमें युक्ति देवीकी पूजा नहीं होती थी, सम्मान नहीं होता था, उसी देशमें उन्होंने युक्तिका प्राधान्य प्रतिष्ठित किया, युक्तिको परिचालकके पदपर बैठाया। जिस देशमें सामाजिक नियम समाजका अनिष्ट साधन कर रहे थे, धर्म शक्तिकी प्रतिकूलतामें प्रवृत्त होगया था, उसी देशमें उन्होंने समाजका संस्कार किया, धर्मको शक्तिके प्रतिपा-लनमें नियुक्त किया, शिक्षाका विस्तार किया। भारतवर्षमें साम्य, मैत्री और स्वाधीनताकी पूजाकी प्रतिष्ठा की। जो देश वैदेशिकों द्वारा पुनः-पुनः लुण्ठित और लाञ्छित होते थे, उन देशोंके हिन्दू-मुसल्मानोंको ऐसी सेनामें परिणत कर दिया, कि पार्श्ववर्ती सम्राट्गण पर्यन्त शङ्कित भावसे दिन अतिवाहित करने लगे। जिस देशमें रणपोत नहीं थे, उस देशमें रणपोत-माला निर्माण करके यूरोपको भी आतङ्कित कर दिया। अक-बरका मनोहर इतिहास मानो यह कह रहा है, कि भारतवर्ष सङ्कल्प करने पर क्या नहीं कर सकता है। उनके सब कामों

का, सब साधनाओंका एकही लक्ष्य था,—जन्मभूमिको गौरवान्वित करना, जगत्‌में अतुलनीय बनाना। जो महापुरुष ऐसे महान् उद्देश्य, ऐसे साधु सङ्कल्पको लेकर कार्य्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हों, मातृभूमिकी सेवामें प्रवृत्त हों, उनकी पूजामें कौन प्रवृत्त न होगा? कौन उनके उद्देशके सामने अपने उन्नत शिरको अवनत न करेगा?

सम्राट्‌ने भारतवर्षको अपने छत्रके नीचे लानेके लिये बीस वर्ष तक युद्ध किया। इस दीर्घकालमें भी वे प्रजाका मङ्गल साधन करनेमें उदासीन नहीं रहे; राज्यभार अपने हाथमें लेते ही बहुतसे देशहितकर कार्यों में प्रवृत्त हो गये और एक देशहितैषिता द्वारा परिचालित होने लगे।

वकील और वज़ीर—सम्राट् अकबर ऐसे प्रतिभाशाली महापुरुष थे, कि राजकार्य निर्वाह करनेके लिये उनको सहकारीकी सहायता अथवा मन्त्रीके परामर्श की आवश्यकता नहीं होती थी। वह अगाध ज्ञान द्वारा वकील, वज़ीर और पारिषद प्रभृतिको कर्त्तव्यपथपर परिचालन करते थे। वह स्वयं समस्त कार्यों को सम्पादन करते थे, सब कामोंका पर्यवेक्षण करते थे। उनके कर्मचारी केवल उनका आदेश पालन करते थे। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"वकील राजकर्मचारियोंके शीर्षस्थानीय हैं। उनलोगोंकी उन्नति, अवनति, नियुक्ति और कर्मच्युति साधारणतः सम्राट्‌के हाथमें है। जो अगाध ज्ञान द्वारा मन्त्रणा-भवनको आलोकित करते हैं, तीक्ष्ण बुद्धि और प्राज्ञता

द्वारा सब विषयोंमें प्रविष्ट होकर गूढ़ तत्त्वकी उपलब्धि करते हैं, बहुदर्शिता और दूरदर्शिता द्वारा स्थिर सिद्धान्तपर पहुँचते हैं, विवेचना करके वाक्य प्रयोग करते हैं; जो शिक्षित, अति उदार, महत्, स्नेहपरायण, अकपट, कार्य-सम्पादनमें सुदक्ष, दृढ़, लघुहस्त, अतिविश्वासी, बहुतसे काम आजाने पर भी अविचलित, आत्मीय और अपरिचितके प्रति समदर्शी, शत्रु और मित्रके लिये पक्षपातविहीन हैं, जिनका सभी सम्प्रदायोंसे सौहार्द्द है, जो सबके सम्मान योग्य हैं, सम्राट् उनकोही यह पद देते हैं। सभीका मङ्गलसाधन वकीलोंका कर्त्तव्य है। वज़ीर और दीवान सर्वप्रधान राजस्वसचिव हैं। जो गणित विद्यामें सुपण्डित हैं, लोभहीन, सावधान, सुदक्ष, सत्यवादी और साधु हैं, एवं जिनकी लेखन-प्रणाली परिष्कार और मनोहर है, सम्राट् उन्हींको इस काम पर नियुक्त करते हैं। वह राजकीय धनागारका तत्त्वावधान और हिसाब परिदर्शन करते हैं। जो लोग प्राज्ञता, तीक्ष्ण बुद्धि, मनुष्य-चरित्रकी अभिज्ञता, निःस्वार्थपरता, अकपटता, मधुर भाषा और सौजन्य द्वारा दरबारको अलंकृत कर सकते हैं, सम्राट् उनकोही पारिषद नियुक्त करते हैं। उनलोगोंमें दार्शनिक सर्वप्रधान हैं। वह अपने दृष्टान्त द्वारा समाजकी दुर्नीतिका संशोधन करते हैं। कवि, चिकित्सक, विचारपति इत्यादि इसी सम्प्रदायमें हैं।"

सूबा—सम्राट्‌ने सुविस्तृत मुग़ल-साम्राज्यको अठारह सूबोंमें विभक्त किया था:—दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद,

अयोध्या, बिहार, बङ्गाल, लाहौर, मुलतान, काबुल, अजमेर, मालवा, बरार, खाण्डवप्रदेश, अहमदनगर, गुजरात, विदर्भ, हैदराबाद और बीजापुर। उड़ीसा बङ्गालके सूबेमें और काश्मीर काबुलके सूबेके अन्तर्गत था। प्रत्येक सूबा बहुतसी सरकारोंमें और प्रत्येक सरकार बहुतसे परगनोंमें विभक्त थी।

सूबेदार—सूबेदार लोग राजप्रतिनिधि-रूपमें अपने-अपने सूबोंका शासन, संरक्षण और सेनापतित्व करते थे। उनलोगों के नियोगपत्रमें लिखा रहता था,—"तुम्हारे अधीन प्रजा जिन कामोंसे सुखी और निरापद हो, वही काम तुमको करने होंगे। बलवान् दुर्बलके ऊपर अत्याचार न करे, बहुत दिनों की दखली भूमिसे वह लोग वञ्चित न हों, इसकी ओर विशेष मनोयोग करना होगा।" वह लोग सम्राट्-प्रणीत विधानोंके अनुसार कार्य सम्पादन करते थे। उनमेंसे कुछका यहाँ पर उल्लेख करता हूँ,—"तुम न्यायसङ्गत काम करोगे, जिससे जनसाधारण और सैनिकोंका मङ्गल-साधन हो। सदैव सेना का अभाव मोचन करोगे। कभी किसी कारणसे जन-साधारणके हितसाधनसे विरत न होगे। कृषिकार्यकी वृद्धि, देशकी उन्नतिके साधन और अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यके सम्पादन द्वारा प्रजाकी कृतज्ञता उपार्जन करोगे। इस बातको याद रक्खोगे, कि कृषकोंका उपकार-साधन ईश्वरकी तुष्टिका उपाय है। जलाशय, कूप, नहरें, उद्यान, पान्थशाला इत्यादि सर्वसाधारण के हितकर कार्य निर्माण और संस्कार करोगे। राजकोषसे

दरिद्रोंका अभाव पूर्ण करोगे। जो लोग दरिद्र हैं परन्तु याचना नहीं करते हैं, उनके अभाव-मोचन करनेके लिये तत्पर रहोगे। निरपेक्ष लोग नियुक्त करके राजकर संग्रह करोगे। राज-पथोंपर प्रहरी नियुक्त करके पथोंको निरापद करोगे। विद्रोहियोंको पहले सत्परामर्श द्वारा, पीछे, यदि अकृतकार्य होओ तो, दण्डद्वारा वश्यतामें लाओगे। धर्ममतके लिये किसी को उत्पीड़ित न करोगे। सबके साथ सद्व्यवहार और सौजन्य प्रकाशित करोगे। कभी किसीके प्रति कटु वाक्योंका प्रयोग न करोगे। सर्व प्रयत्नोंसे क्रोध, चपलता और इन्द्रियोंका दमन करोगे। बातचीतमें शपथ न करोगे। सत्कार्य-सम्पादनमें कभी उत्साहविहीन न होगे। अपनी आय से व्यय सदैव कम रक्खोगे। तुम दर्शन इत्यादिका अध्ययन करोगे। भाषाके प्रति दृष्टि न करके सारमर्मका संग्रह करोगे। सत्यवादी और साधु व्यक्तिको नियुक्त करके देशके संवाद गुप्तभावसे संग्रह करोगे। यदि ऐसा मनुष्य न मिले, तो भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको एकही प्रदेशमें इस कार्यके सम्पादन करनेमें नियुक्त करोगे ; परन्तु सावधान रहोगे, कि वह लोग एक दूसरेसे परिचय न प्राप्त कर सकें। वह लोग पृथक्-पृथक् भावसे जो संवाद भेजें, उनमेंसे सत्यका निर्णय करोगे। प्राज्ञ लोगोंसे परामर्श करके कार्य सम्पादन करोगे ; किन्तु बहुतसे व्यक्तियों से परामर्श न करोगे। क्योंकि प्राज्ञ और निःस्वार्थपर मनुष्योंको संख्या कम है और

यदि वह लोग तर्क-वितर्क करने लगेंगे तो कार्यका समय अतिवाहित हो जायगा। तुम अपने किसी विश्वासी और विचक्षण बन्धुको अपनी कार्यावली की परीक्षा करनेके लिये नियुक्त करोगे। उससे अनुरोध करोगे, कि वह तुम्हारे भ्रम और दोषोंको गुप्तभावसे संशोधन करे। तुम अपने हाथसे हत्या करके मांसाहार न करोगे। अपने जन्म-दिनसे एक महीने पीछे तक मांसाहार न करोगे। अपने जन्म-दिन और और अपने आत्मीय-स्वजन की मृत्युके दिन दरिद्रोंको आहार कराओगे। संक्षेपमें, जबतक जीवित रहोगे परकालके लिये स्वर्गीय विभव संग्रह करोगे, क्योंकि मरने पर फिर उसे नहीं कर सकोगे।"

सूबेदार लोग अपने-अपने सूबोंमेंसे भूमिका कुछ अंश जागीरकी भाँति पाते थे। उसको वह लोग बिना कर दिये उपभोग करते थे। इसके अतिरिक्त उस सूबेसे जो राजकर संगृहीत होता था, उसका एक अंश भी सूबेदारको मिलता था। सूबेदार अत्यन्त क्षमताशाली न हो जाय, इसलिये सम्राट् प्रति तीन वर्ष पीछे उसको एक सूबेसे दूसरे सूबेमें स्थानान्तरित कर देते थे। सूबेदारोंके अधीन फ़ौजदार लोग कतिपय परगनों का शासनकार्य निर्वाह करते थे।

विचार—मीर आदिल और क़ाज़ी विचारकार्य करते थे। हिन्दू-हिन्दूमें झगड़ा होनेसे ब्राह्मण-जज विचार करते थे। विचार-विभागमें जो मुहर व्यवहृत होती थी, उस पर लिखा

हुआ था,—"साधुताही ईश्वरकी तुष्टिका प्रधान उपाय है। यह कभी नहीं देखा गया है, कि सरल पथपर चलनेवाला कभी विनष्ट हुआ हो।" सम्राट्ने सर्वत्र यह उदार और लोक-हितकर आदेश प्रचार कर दिया था,—"आईन और विचारकके निकट हिन्दू और मुसल्मान, धनी और दरिद्र सभी समान हैं, और सब विचारकोंको न्याय, दया और उदारतासे विचार-कार्य करना होगा। विचार-कार्यमें साक्षियोंकी संख्या और उनके क़सम खाने पर सन्तुष्ट न होना होगा, उनकी आकृति देखकर अपनी अभिज्ञता, अनुसन्धान और प्रश्नद्वारा सत्य-निर्णयकी चेष्टा करनी होगी। सब लोग अपने-अपने विवेकानुसार चलनेके अधिकारी हैं, किसी को भी अपने धर्ममतके लिये उत्पीड़ित न होना पड़ेगा।" सम्राट्ने गुजरातके शासनकर्त्ताको जो आदेश-पत्र भेजा था, वह नष्ट होनेसे बच गया है और सम्राट्की सहृदयताका प्रमाण देता है। उन्होंने शासनकर्त्ताको केवलमात्र बेत, बेड़ी और प्राणदण्डकी क्षमता प्रदान करके लिखा था,—"यदि कभी प्राणदण्डकी क्षमताका परिचालन करो, तो भयङ्कर राजद्रोहके अपराधके भिन्न, बिना मेरी अनुमतिके, किसीको प्राणदण्ड न देना और दण्ड देनेके पहले दण्डितके हाथ-पैर काटना अथवा और कोई निठुर शास्ति हरगिज़ मत देना।" बहुत लिखना बाहुल्यमात्र है, उस युद्धमें अतिलोमहर्षण दण्डविधान-पद्धति प्रचलित थी। सम्राट् सिंहासनके पास खड़े होकर दयाके साथ विचार-कार्य करते थे।

पुलिस—प्रधान-प्रधान नगरोंकी पुलिस कोतवालोंके अधीन थी और गाँवोंकी पुलिस ग्राम्यकर्मचारियोंके अधीन रहती थी। कोतवाल लोग जिन आदेशोंके अनुसार कार्य निर्वाह करते थे, उनमेंसे कुछका उल्लेख करता हूँ,—"जिससे अधिवासीगण परस्पर सहायता करें, परस्पर सुख-दुःखमें सहानुभूति प्रदर्शन करें, वह उपाय अवलम्बन करने चाहियें। रातको सतर्क रहकर और प्रहरीका कार्य करके चोरी निवारण करनी चाहिये। चोरी गयी हुई वस्तुके न मिलनेपर उसकी क्षति पूरी करनी चाहिये। आलसी मनुष्योंको काममें लगाना चाहिये। लोगोंके धनप्राण निरापद करने चाहियें। कोई किसी की स्वाधीनतामें हस्तक्षेप न करें; दासोंका क्रय-विक्रय न हो; कोई किसी विधवाको बलपूर्वक सती न करें; बारह वर्षसे पहले किसी मुसल्मान लड़केकी सुन्नत न हो; बाल्यविवाह न हो; कोई मनुष्य किसी रमणीको कुपथमें न डाले; कोई गाय, घोड़ा, ऊँट और भैंस को न मारे; वणिकगण बहुतसा अनाज जमा करके भाव न बढ़ा दें; राजपथ अथवा द्वारपर कूड़ा न जमा होवे, और क़ब्रस्तान नगरके बाहर पश्चिमकी ओर बनाने चाहियें।" कोतवालोंके नियमपत्रोंमें लिखा रहता था,—"तुमको ऐसा काम करना होगा, जिससे प्रजा हमारे राजत्वकालके ऊपर आशीर्वाद वर्षण करे और उसके स्थायी होनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करे।"

संवाददाता—सम्राट् के समय में संवादपत्र नहीं थे, सुविस्तृत साम्राज्य के एक प्रदेशसे अन्य प्रदेशमें गमनागमन करके, अल्प समय में संवाद संग्रह करना सम्भव नहीं था। इसी से उन्होंने देश को अवस्था, अभाव और सर्व प्रकारके संवाद पाने की वासना से संवाद-विभाग स्थापन किया था। अति विश्वासी राजपुरुष साम्राज्य के विविध स्थानों में रहकर सर्व प्रकार के संवाद नियमित रूपसे सम्राट् के पास भेजते थे। वह संवाद सर्वसाधारण को मालूम नहीं होते थे।

कलक्टर—कलक्टर लोग निम्नलिखित विधिके अनुसार काम करते थे :—"तुमलोगों को सब कामों में सत्यवादी और उत्साहशील होना चाहिये। ऐसा वासस्थान और सुभीता रखना चाहिये कि, सभी तुम्हारे पास आकर अपना वक्तव्य कह सकें। ऐसी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे देशमें मूल्यवान् द्रव्य उत्पन्न होसकें। जो लोग उन कामों में परिश्रम करें, उनके उत्साहित करनेके लिये उनको राजकर में से कुछ भाग छोड़ देना चाहिये। इस बात की ओर दृष्टि रखनी चाहिये, कि पड़ी हुई भूमि कर्षित होवे, और कर्षित भूमि पड़ती न रहे। दरिद्र किसानों को राजकोष से सहायता देनी चाहिये, और उसको क्रम-क्रम से वसूल करना चाहिये। तुम ग्राममण्डल अथवा कर्मचारी का भरोसा न करके, स्वयं न्याय-संगत रूप से भूमि को नापकर, कर देने वाले किसानों से स्वयं मिलकर, उनके मुखसे उनकी आपत्तियों को सुनकर, सहृद-

यता के साथ कर संग्रह करो। ऐसा नियम मत बनाओ, कि राजकर में रुपयाही लिया जायगा। असमय में राजकर मत लो। राजकर के अतिरिक्त उपहार-स्वरूप कुछ मत लो। लोगों की अवस्था क्या है, बाज़ार की दर क्या है, खज़ाने में कितना जमा है, दरिद्रों की अवस्था कैसी है, इत्यादि विषयों की प्रतिमास रिपोर्ट करते रहो। सर्वोपरि यह है, कि प्रति वर्ष कृषकों की अवस्था उन्नत होती रहे, इसका अवलम्बन करो। उनको सन्तुष्ट रखने का यत्न करते रहो, उनके बन्धु होकर रहो। याद रक्खो, कि कृषकों का उपकार-साधन ईश्वर की तुष्टि का उपाय है।"

कृषि——सम्राट्ने राज्य की समुदय उपजाऊ भूमि को नाप कर, उत्पादिका शक्तिके अनुसार, उसे विभिन्न श्रेणियों में विभक्त कर दिया था, और प्रति बीघे की उपज का तृतीयांश राजकर नियत किया था। प्रजागण अपनी इच्छानुसार अनाज अथवा उसके मूल्य द्वारा राजकर दे सकते थे। पहले यह कर हर साल निर्धारित होता था, फिर प्रति दस वर्ष पीछे निर्धारण की प्रथा कर दी गयी। जितनी भूमि कर्षित होने पर राजकर एक करोड़ दाम (२॥ लाख रुपया) होता था, उतनी भूमिके तत्त्वावधान का भार सम्राट् ने करोड़ी नामक कर्मचारी को दिया था और आदेश दे दिया था, कि तीन वर्षके भीतर उसके अधीन समुदय भूमि कर्षित हो जानी चाहिये। जिस प्रदेश में विजन वनभूमि थी, अथवा बहुत दिनों से पड़ी हुई

थी, उसको सम्राट् ने इस प्रकार से राजकीय व्यय से कृषि-योग्य कर दिया। वह सब भूभाग सुन्दर शस्य-शोभा से सुशोभित होगये। सम्राट् के समय की भारत की अवस्था देखकर अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"यद्यपि भारतवर्ष अति विस्तृत महादेश है, तथापि समुदय प्रदेश कर्षित होता है। दो मील पथ पर चलो, तो तुम को जनाकीर्ण नगरी, ऐश्वर्य-शाली मुहल्ले, निर्मल जल, आनन्ददायक श्यामल शस्यक्षेत्र और मनोहर सड़कें मुग्ध कर लेंगी।" सम्राट् ने दूरवर्त्ती तुर्क और फ़ारस देश से, बड़े यत्न से और बहुत व्यय करके विचक्षण किसान भारत में बुलाये थे, और उनके द्वारा यहाँ अङ्गूर इत्यादि भाँति-भाँति के सुमधुर फलों की खेती कराई थी। पञ्जाब में आमों के उद्यान लगवाकर बहुत उन्नति की थी। भूमि की उन्नति के लिये बहुत से जलाशय, नहरें और कुए बनवाये थे।

अन्नागार——सम्राट् ने प्रति ज़िले में राजकीय अन्न-कोठार स्थापन किये थे। जिस भूमि में अन्न उत्पन्न होता था, उसमें से प्रति बीघे पीछे दस सेर अन्न लेकर यह कोठार भरे जाते थे। वहीं से दरिद्र कृषकगण बीज लेते थे, दुर्भिक्ष पड़ने पर बहुत थोड़े मूल्य पर सर्वसाधारण को यह अन्न बेचा जाता था। यहीं से राज्य के दरिद्राश्रमों में भी अन्न भेजा जाता था, राजकीय पशु भी यहीं से आहार प्राप्त करते थे। सम्राट् की कार्य-परम्परा से उस समय की कृषकमण्डली का बहुत बड़ा उपकार साधित हुआ था।

शिल्प——सम्राट् ने शिल्प की भी बहुत उन्नति की थी। भारत के सर्व प्रकार के शिल्प को उत्साह प्रदान किया था। दरी बनाने के लिये बहुत से स्थानों पर राजकीय शिल्पशालायें स्थापन की थीं। दूरवर्त्ती फ़ारस, मङ्गोलिया और यूरोप से उनके बनाने के हथियार इत्यादि मँगाये थे। राजकीय शिल्पशालाओं में ऐसी सुन्दर दरियाँ, तोपें और बन्दूकें तय्यार होती थीं, कि वैदेशिक भ्रमण करने वालों को देखकर विस्मित होना पड़ता था। सम्राट् ने भारत में रेशम और पशमीने के वस्त्र बनाने के काम को भी बहुत उन्नत अवस्था में पहुँचाया था। काश्मीर और लाहौर में शाल की उन्नति साधन के लिये बहुत से उपाय अवलम्बन किये थे। सैकड़ों राजकीय शिल्पशालाओं में बहुत सी वस्तुयें राजकीय व्यय और तत्त्वावधान से प्रस्तुत होती थीं।

सम्राट् ने चित्रशिल्प की उन्नति की कामना से बहुत से चित्रकारों को चित्रविद्यामें नियुक्त किया था। सप्ताहभर में जितने चित्र वह लोग तय्यार करते थे, एक दिन सम्राट् उनकी परीक्षा करते थे और गुण के अनुसार चित्रकारों की वेतन-वृद्धि करते थे अथवा उन्हें पुरस्कार देते थे। इन चित्रकारों में से सौ से भी अधिक ने प्रसिद्धि लाभ की थी। उनमें हिन्दू चित्रकार सर्वश्रेष्ठ थे। उन लोगों ने सम्राट् और प्रधान अमात्यों की तस्वीरें तय्यार की थीं। फ़रासीसी बर्नियर साहब ने भी भारत की उस समय की चित्रकला की अत्यन्त प्रशंसा की है।

वाणिज्य—सम्राट् ने सर्व प्रकार के वाणिज्य को उत्साह प्रदान किया था। वैदेशिक वणिकों को भारत में आनेके लिये उत्साहित किया था। वह उन लोगों के ऊपर अतिशय सौजन्य प्रदर्शन करके अत्यधिक मूल्य देकर वस्तु क्रय करते थे। वह कहते थे,—"यदि ऐसा नहीं करेंगे तो वे लोग भारत में नहीं आवेंगे, भारतवासी भी उन वस्तुओं का प्रस्तुत करना न सीख सकेंगे।"

सम्राट् के समय में सूरत, गोवा इत्यादि समुद्रतीरवर्त्ती स्थानों में यूरोप के वणिक वाणिज्य करते थे। यूरोप, एफ्रिका फ़ारस, अरब, चीन, जापान और भारत-महासागर के द्वीप-पुञ्ज के साथ भारतवर्ष का वाणिज्य होता था। वैदेशिक वणिक भारत की सामग्री से अपने-अपने देशों की सामग्री को बदलते थे। भारतवासी भी दूरदेशों में जाकर वाणिज्य करते थे।

राजकर—अबुलफ़ज़ल ने लिखा है,—"शेरशाह के समय से सम्राट् के समय में प्रजा को भूमिकर कम देना पड़ता है। दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अयोध्या, अजमेर, मालवा, अहमदाबाद, काबुल (काश्मीर इस के अन्तर्गत है), लाहौर, मुलतान, बिहार एवं बङ्गाल (उड़ीसा इसके अन्तर्गत है),—इन बारह सूबों से नौ करोड़ से कुछ अधिक रुपया आता था।" टामस साहब के मत से अकबर की सर्व प्रकार की आय ३२ करोड़ रुपया थी। अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"सूबा

बङ्गाल और उड़ीसा का राजकर प्रायः डेढ़ करोड़ रुपया है।" स्टूआर्ट साहब ने लिखा है कि १८११-१२ ई० में, अँगरेज़ोंने बङ्गाल और उड़ीसा से दो करोड़ दो लाख रुपया राजकर और ५० लाख रुपया नमक और अफ़ीम के महसूल का वसूल किया है। अकबर के समय से अँगरेज़ों के समय में कई एक कर बढ़ गये हैं।

अन्यकर——सम्राट् ने जज़िया, तीर्थकर, बन्दर का कर, लवण, वृक्ष, बैल, चुल्हे, पगड़ी, शिल्प, हाट, गृह-क्रय-विक्रय, गाय, सन, तेल, चमड़ा, उपहार प्रभृति के कर तथा दारोग़ा, कोषाध्यक्ष, तहसील्दार का कर, भूमि के बन्दोबस्त के समय का कर—बहुत से कर उठा दिये थे। सम्राट् किसी अभियान में, विश्राम के लिये यदि किसी के घर उतरते थे, तो वह अपनी भूमि के कर से सदैव के लिये मुक्त कर दिया जाता था।

सम्राट् ने पान, नील, ईख इत्यादि पर कर स्थापन किये थे। नौका पर नदी पार करने के लिये, प्रति घोड़ा, गाय इत्यादि के लिये ८ कौड़ी और प्रति १० मनुष्यों के लिये एक पैसा देना पड़ता था। जो कुछ आय होती थी, उसका एक तिहाई अथवा आधा राजकोष में आता था; शेष नौका चलाने वालों को मिलता था। इनके अतिरिक्त विवाह-कर भी था। मन्सबदार लोग अवस्थानुसार चार रुपयों से दस मुहरों तक, धनी लोग चार रुपये, मध्यश्रेणी के लोग एक रुपया और सर्व साधारण दो पैसे प्रति विवाह देते थे। काबुल कन्दहार और

फ़ारससे जो लोग उत्कृष्ट घोड़े बेचनेके लिये भारतमें आते थे, उनसे दो से तीन रुपयेतक प्रति घोड़ा लिया जाता था।

टकसाल—सम्राट्ने राज्यके विभिन्न स्थानोंमें ४२ टकसालें स्थापन की थीं। वहाँ सोने, चाँदी और ताम्बेके सिक्के बनते थे। सम्राट्के समयमें सिक्के विशुद्ध धातुके बनते थे। पहले रुपयेका नाम तंका था। सम्भव है कि, शेरशाहने उसके मुग्धकर रूपके कारण 'रूपिया' नाम रक्खा हो। तबहीसे हिन्दी भाषामें यह नाम प्रचलित है।

धनागार—सम्राट्के बारह धनागार थे। तीनमें नक़द मुद्रा और एकमें बहुमूल्य मणिमुक्ता, एकमें सोना और एकमें सोने और मणिमुक्ता-निर्म्मित द्रव्य इत्यादि रहते थे। वहाँ जो असंख्य मणिमुक्ता और हीरा इत्यादि रहते थे, वह सब बहुत ही अच्छी तरतीबसे रक्खे जाते थे। धनगारोंसे जागीरदार और सेनापतिलोग ऋण पाते थे। लिखित आदेशके बिना राजकोषसे कोई रुपया न पाता था।

सिंहासन—सम्राट्के विभिन्न प्रकारके सिंहासन थे। बहुमूल्य मणिमुक्ता-खचित स्वर्णनिर्म्मित सिंहासनके ऊपर बहुमूल्य रत्नयुक्त राजछत्र शोभायमान रहता था।

शिक्षा—विस्तृत भारतमें बहुतसी भाषायें प्रचलित थीं। सम्राट्ने समग्र भारतमें एक भाषा कर देनेकी इच्छासे संस्कृत,

हिन्दुस्तानी और फ़ारसी भाषाके आधारपर "उर्दू" नामकी एक नई भाषा गठन की थी। फ़ारसी भाषाकी वर्णमालाकी सहायतासे, अल्प समयमें, अल्प स्थानमें, अनेक विषय लिखे जा सकते हैं, ऐसी भावना करके सम्राट्ने इस नई भाषाकी वर्णमाला फ़ारसी भाषासे ग्रहण की थी। उसके अधिकांश शब्द हिन्दुस्तानी थे, जिनको सब लोग सहजमें समझ सकते थे। राजा टोडरमल इस भाषाके जनक कहे जाकर कीर्त्तित हुए थे।

सम्राट्ने सब प्रकारकी शिक्षाओंको उत्साह प्रदान किया था। उन्होंने बहुतसे विद्यालय खोले थे। उनमें हिन्दू और मुसलमानोंको शिक्षा दी जाती थी। सम्राट्ने विद्यालयके सम्बन्धमें निम्नलिखित आदेश प्रचारित किये थे,—"सभी बालकोंको ईश्वर-स्तोत्र और सुनीति-सम्बन्धी सुन्दर गाथायें कण्ठस्थ करनी होंगी। प्रत्येक बालकको क्रमसे ये सब विषय सीखने पड़ेंगे—नीति-पुस्तक, पाटीगणित, कृषिविद्या, ज्यामिति, ज्योतिःशास्त्र, आकृति देखकर प्रकृति निर्णय करनेकी विद्या, गृहस्थी-सम्बन्धी विषय, आईन, चिकित्सा, न्याय, विज्ञान और इतिहास। जो लोग संस्कृत अध्ययन करेंगे, उनको व्याकरण, न्याय, वेदान्त और पातञ्जल दर्शन अवश्य पढ़ने होंगे।" बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट्के समयमें अरबी भाषाका अनुशीलन अपराध गिना जाता था। मुहम्मदी आईन, आचार-पद्धति और कुरानका पाठ दोषावह था एवं दर्शन,

चिकित्सा, गणित, काव्य, उपन्यास और ज्योतिष पढ़ना अत्यावश्यक समझा जाता था।" सम्राट्की शिक्षानीति भारत के लिये कैसी हितकर थी!

सम्राट्ने स्त्रीशिक्षाको भी उत्साह प्रदान किया था। उनके अन्तःपुरमें एक लाइब्रेरी थी। रमणीगण उसकी पुस्तकोंको सम्राट्के निकट पढ़ा करती थीं। बैरमखाँकी विधवा पत्नी उत्तम कविता रचना कर सकती थी। सम्राट्के अन्तःपुरके आय-व्ययका हिसाब वहाँकी रमणी-कर्म्मचारीगण रखती थीं। पहले लिख चुके हैं, कि रूपमती भी शिक्षिता रमणी थीं। उस समय भारतमें शिक्षिता महिलाओंका अभाव नहीं था।

गुणका आदर—सम्राट् सर्व प्रकारके ज्ञानोंको उत्साह प्रदान करते थे। वह कवियोंको और ज्ञानान्वेषण-प्रवृत्त लोगोंको नियमित रूपसे आर्थिक सहायता देते थे। सम्राट् कहते थे,—"इस श्रेणीके पेटकी चिन्ता करनेसे बहुतसा समय वृथा नष्ट होगा। अतएव इनको राजकोषसे नियमित रूपसे सहायता देनी होगी।" सम्राट्के दरबारमें ५९ कवि थे। सम्राट् सबको ही आर्थिक सहायता देते थे। इनमें कविवर फ़ैज़ी सर्व्वश्रेष्ठ थे। राजा मनोहर फ़ारसी भाषामें मनोहर कविता रचना कर सकते थे। इसलिये उनको "मुहम्मद मनोहर" कहकर सब लोग बड़े आदरसे सम्भाषण करते थे। इनके अतिरिक्त, १५ कवि राज्यके विभिन्न स्थानोंसे कविता

रचना करके सम्राट्के पास भेजते थे। सम्राट् उनको भी पुरस्कृत करते थे। कवियोंके अतिरिक्त सम्राट्के दरबारमें १४२ पण्डित और चिकित्सक थे। उनमेंसे पैंतीस हिन्दू थे। उनमें तीन मनुष्य भट्टाचार्य्यके नामसे प्रतिष्ठित हैं। इससे ज्ञात होता है, कि वह बङ्गाली थे। चन्द्रसेन नामक एक व्यक्ति उत्कृष्ट अस्त्र-चिकित्सक था। उसको भी हम बङ्गाली कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त कितने ही ऐतिहासिक, कितने ही साहित्य-सेवकोंने सम्राट्के राजत्व-कालको अलंकृत किया था। भारतमें अबुलफ़ज़लको भाँति मुसल्मान गद्य-लेखक और नहीं जन्मा। फ़ैज़ीने मुसल्मान होनेपर भी संस्कृत पढ़ी थी। सम्राट्ने एक इतिहास-विभाग स्थापन किया था। चौदह विचक्षण व्यक्ति इतिहास लिखनेको नियुक्त हुए थे। सम्राट्ने एक अनुवाद-विभाग भी स्थापन किया था। उसमें बहुतसे व्यक्ति विविध ग्रन्थ भाषान्तरित करते थे। एक-एक मनुष्यने एक-एक ग्रन्थको भाषान्तरित करके जो अर्थ पुरस्कारमें पाया है, उसको भावना करके विस्मयसे अभिभूत होना पड़ता है। ज्ञान-वृद्धिके लिये सम्राट्का इतना व्यय करना मनुष्यको मुग्ध कर देता है। इस विषयका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

सम्राट् रक्तकी अपेक्षा गुणका सम्मान अधिक करते थे। गुण देखते ही पात्रका भेद न करके उसको पुरस्कृत करते

थे। प्रति रविवारको गुणके लिये पुरस्कार वितरित होता था। हाथी, घोड़ा, परिच्छद, अर्थ और मूल्यवान् द्रव्य-सामग्री पुरस्कार रूपसे दी जाती थी। कोई-कोई विशेष गुणका परिचय देनेपर भूसम्पत्ति भी पाता था।

सम्राट् बहुत यत्नसे साम्राज्यके विभिन्न भागोंसे गुणी मनुष्योंको बुलाते थे; उनके ऊपर सम्मान, सौजन्य और अर्थ वर्षण करते थे। यह पहले वर्णन हो चुका है, कि उन्होंने फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल और तानसेनको किस प्रकार बुलाकर रक्खा था। उन्होंने तानसेनके अतिरिक्त और बहुतसे सङ्गीतज्ञ बुलाये थे। तानसेनके दूसरे नम्बरपर बाबा रामदास सर्व्वप्रधान सङ्गीताध्यापक थे। उन्होंने एकबार सङ्गीतसे बैरमख़ाँको मुग्ध करके एक लाख रुपया पुरस्कार पाया था। सम्राट्को सङ्गीतसे बड़ा प्रेम था, वह इस विद्यामें अत्यन्त अभिज्ञ थे। सङ्गीतज्ञ लोग सात श्रेणियोंमें विभक्त थे। सम्राट् गम्भीर रातमें प्रतिदिन एक-एक सम्प्रदायका सङ्गीतालाप सुनते थे। औरङ्गज़ेबने सङ्गीतको मुसल्मान-धर्म्मके विरुद्ध कहकर सङ्गीतज्ञोंको दरबारसे विताड़ित कर दिया था। काफ़िख़ाँने लिखा है,—"इससे सङ्गीतज्ञ बहुत मर्म्माहत हुए, उन्होंने दलबद्ध होकर एक कृत्रिम शव ले जाकर औरङ्गज़ेबके प्रासादके पास रखकर विलाप करना आरम्भ किया। सम्राट् विलाप सुनकर खिड़कीकी राह निकल आये और विलापका कारण पूछा। उन्होंने उत्तर दिया,—'सम्राट्! रागिनी सुन्दरी

की मृत्यु हो गई है, हम उसको क़ब्रस्तानको लिये जारहे हैं।' सम्राट्ने कहा,—'अच्छा हुआ, किन्तु सावधान रहना और रागिनीको इतने गहरे खड्डेमें दफ़नाना, कि उसका स्वर फिर कभी न उठे और कभी भी मेरे कानोंमें न आवे।" औरङ्गज़ेब ने केवल रागिनी हीको नहीं, मुसल्मान-राजलक्ष्मीको भी ऐसे गहरे गड्ढेमें गाड़ा, कि वह भी फिर कभी न निकल सकी।

जनसाधारण से मित्रभाव—सम्राट् जनसाधारणके अकृत्रिम बन्धु थे। वह सम्भ्रान्तलोगोंकी अपेक्षा जनसाधारण को अधिक चाहते थे। उनलोगोंके प्रति अधिक सदय व्यवहार करते थे, जिससे दीन-दरिद्र भी अपना-अपना दुःख स्वयं आकर उनसे कह सकें। सम्राट् बहुधा छद्मवेश धारण करके सर्व-साधारणसे मिलते-जुलते थे। उनकी कुटीरोंमें जाकर, उनसे प्रेमसहित बातें करके, उनके दुःखोंसे अवगत होते थे और उनके मोचन करनेका यत्न करते थे। वह बहुधा पहले से संवाद न देकर, राजधानीसे बाहर निकलकर, देशकी अवस्था अपनी आँखोंसे देखते थे, देशका अभाव दूर करते थे, जनसाधारण पर होते हुए अत्याचारको रोकते थे और अत्या-चारीको दण्डित करते थे।

फ़ारस-राजके भतीजे जब भारतमें आये, तब सम्राट्ने उनको महान् आदरसे ग्रहण किया, 'फ़रज़न्द"की उपाधि देकर पञ्चहज़ारी सेनापतिका पद और सम्बल प्रदेश उन्हें जागीरमें दिया। समुदय कन्दहारकी अपेक्षा संबल बहुत बड़ा

था। मन्सबदारने प्रजापीड़न आरम्भ किया, तो वह लोग सम्राट् के पास फ़रियाद लेकर आये। यदि सर्वसाधारण पर कोई उत्पीड़न करता था, तो सम्राट् अत्यन्त क्रुद्ध होते थे और गुरुतर दण्ड देते थे, इससे मन्सबदार मक्का जानेका अभिलाषी हुआ। उसने समझा, कि मक्का जानेकी अभिलाषा प्रकाश करनेसे सम्राट् प्रसन्न होंगे और मुझको मक्का जानेसे निषेध कर देंगे। परन्तु सम्राट् प्रजापीड़नके कारण उससे इतने अप्रसन्न हो गये थे, कि उसको मक्का जानेका आदेश दे दिया। मन्सबदार अपनी अभिसन्धि पूरी होती न देखकर अनुताप करने लगा। जो कुछ भी हो, सम्राट्ने उसकी पदमर्य्यादाका ध्यान करके, उसका पहला अपराध क्षमा कर दिया और जनसाधारणपर उत्पीड़न करनेको निषेध कर दिया। परन्तु उसने फिर प्रजापीड़न आरम्भ कर दिया। सम्राट्ने यह संवाद पाते ही उसको जागीरसे वञ्चित कर दिया। और इस बातसे तनिक भी विचलित नहीं हुए, कि उनके पिताने फ़ारस देशसे ऋण लिया था। उन्होंने मन्सबदारका वेतन १००५) रुपया कर दिया।

सम्राट् अकबर सदैव प्रजाका पक्ष अवलम्बन करते थे। पहले उनके राजकर-विभागके कर्म्मचारी कर लगानेमें और उसके संग्रह करनेमें बहुत अत्याचार करते थे। सम्राट्ने इससे अवगत होकर राजा टोडरमलको इसके अनुसन्धानके लिये नियुक्त किया। राजपुरुषोंका अपराध प्रमाणित

हुआ। उस समय राजाने सम्राट्के आदेशसे अपराधियोंको ऐसा कठोर दण्ड दिया, बदाऊनीने लिखा है, कि उससे बहुतसे व्यक्ति मृत्युमुखमें चले गये। सम्राट् इस प्रकार दृढ़ हस्तसे राजपुरुषोंका अत्याचार निवारण करते थे!

सम्राट् प्रजाके मङ्गलसाधनमें कभी उदासीन नहीं हुए। एक बार संवाद आया, कि बहुतसे डाकू एक स्थानपर इकट्ठे होकर अधिवासियोंपर अत्याचार कर रहे हैं और राजपुरुषगण उनको वन्दी करनेमें असमर्थ हैं। सम्राट् तत्क्षणात् वहाँसे धावित हुए। डाकू लोग सम्राट्से संग्राम करनेपर उद्यत हुए। सम्राट् उनमेंसे बहुतोंको समुचित दण्ड देकर और अनेकोंको निहत करके आनन्दसे लौट आये।

दया—सम्राट्की दया कहावतमें आ गई थी। जर्मन-राजकुमारने लिखा है,—"सम्राट्की क्षमता अक्षत रखनेके लिये जितने रक्तपातकी आवश्यकता हो सकती है, सम्राट्ने उससे अधिक रक्तपात कभी नहीं किया।" बदाऊनीने लिखा है,—"उनमें इतनी दया थी, कि वह दोषमें गिनी जाने लगी थी।" सम्राट्की विविध कार्य्यावली उनके हृदयके महत्त्वकी शतमुखसे घोषणा कर रही है। सम्राट् जिस समय दरबारमें बैठते थे, उस समय एक कोषाध्यक्ष बहुत सी मुहरें और रुपये लेकर सम्राट्के पास खड़ा रहता था, और उनके आदेशसे आये हुए दरिद्री मनुष्योंमें उन्हें वितरण किया करता था। सम्राट् जिस समय राजपथपर निकलते थे, उस समय भी

एक कोषाध्यक्ष बहुत सा अर्थ लिये हुए साथ रहता था और सम्राट् के आदेशानुसार उसे दरिद्र व्यक्तियोंमें बाँटता जाता था। सम्राट्ने फ़तेहपुर-सीकरी में एक छोटी सी पोखरी बनवाई थी। उसको सर्व प्रकारकी मुद्राओंसे परिपूर्ण रखते थे। वही विपुल अर्थ प्रभातसे गंभीर रजनी पर्यन्त जाति और धर्म, पण्डित और मूर्ख एवं दरिद्र के भेद बिनाही सर्वसाधारणमें वितरण किया जाता था। जो लोग सम्भ्रान्तवंशमें जन्मग्रहण करके, शिक्षा के अभाव से जीविका उपार्जनमें असमर्थ होते, अथवा कठिन पीड़ा और वृद्धावस्थाके कारण परिश्रम करनेमें अक्षम होते, वह भी सम्राट्से प्रचुर अर्थ-सहायता पाते थे। बीच-बीचमें सम्राट् लाख-लाख मनुष्योंको इकट्ठा करके उनमें प्रभूत धन वितरण करते थे।

सम्राट् ने साम्राज्यके बहुत से स्थानोंमें दरिद्राश्रम निर्माण किये थे। वहाँ से असंख्य दरिद्र प्रतिदिन अन्न पाया करते थे। सम्राट् ने फ़तेहपुर-सीकरी में जो आश्रम प्रतिष्ठित किये थे, उनमें से जिसमें हिन्दू रहते थे उसका नाम धर्मपुर और जिसमें मुसल्मान रहते थे उसका नाम ख़ैरपुर था। जिस अट्टालिका में हिन्दू योगी रहा करते थे, उसका नाम योगीपुर था। इन आश्रमोंमें प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य आते थे, और राज्य के व्ययसे आहार पाते थे। सम्राट्की दानशीलताका वर्णन करना शक्तिके बाहर है।

सम्राट् ने अनेक बार अपनी हाथोंसे अपने कर्मचारियों के

घावों की मरहम-पट्टी की थी। सुविशाल भारतवर्ष के महान् सम्राट् इन कामों से घृणा नहीं करते थे। अपने अधीन हिन्दू-मुसल्मान अमात्यगण के घरों पर जाकर उनको सम्मानित करते थे। सम्राट्को देखने से यह प्रतीत नहीं होता था, कि वह ऐसे महान् सम्राट् हैं। विद्रोही जब उनसे युद्ध करके आहत और बन्दी होते थे, तो सम्राट् उनकी चिकित्सा करवाते थे। जिन लोगों ने बारम्बार विद्रोह किया है, उनको भी सम्राट् ने क्षमा प्रदान की है।

देश में दुर्भिक्ष पड़ने पर सम्राट् चारों ओर बहुतसे कर्मचारी और अर्थ भेजकर अधिवासियों की सहायता करते थे; राजकर में से बहुतसा छोड़ देते थे। खेती के जलप्लावित होने पर, किसानोंको उस सालका कर छोड़कर, और-और सालोंमें धीरे-धीरे उसे वसूल करते थे।

युद्धव्यय—युद्ध में उत्पीड़न और अत्याचार करके युद्धका ख़र्च संग्रह करना सम्राट् की नीति नहीं थी। सेना के अभियान में अधिवासियोंको कुछ भी क्षति नहीं होती थी। सेना किसी के ऊपर उत्पीड़न नहीं कर सकती थी। सेना के साथ दूकानदार रहते थे, वहाँ बाज़ार लगता था, वहीं से सेनाको प्रयोजनीय वस्तुयें मिलती थीं। बहुत बड़े मैदान में छावनी स्थापित होती थी। उस भूमि के अन्न का मूल्य सेना के साथ के राजपुरुषगण तत्क्षणात् कृषकोंको देदेते थे। छावनी के चारों ओर प्रहरीगण नियुक्त रहते थे, जिससे कि छावनी

के निकटवर्त्ती खेतोंको हाथी-घोड़े इत्यादि न बिगाड़ सकें। सम्राट् से पहले भारत में यह नियम प्रचलित था, कि मुसल्मान सेना जिस प्रदेशपर आक्रमण करती अथवा जिसे विजय करती थी, वहाँ के अधिवासी स्त्री-बच्चों इत्यादि को वन्दी कर लाती थी और अपनी इच्छानुसार उनको चिरदासत्व में परिणत करके, यथेच्छस्थान में यथेच्छ मूल्य पर बेच डालती थी। इस लोमहर्षण प्रथा से मुसल्मान-सैनिकों द्वारा मुसल्मानों की अपेक्षा हिन्दू ही अधिक उत्पीड़त होते थे। सम्राट् ने अपने राजत्वके सातवें वर्षमें यह गर्हित और निष्ठुर प्रथा बन्द कर दी थी। पिता के अपराधमें पुत्र दण्डार्ह नहीं और स्वामी के दोष की स्त्री अपराधिनी नहीं, यह अति उदार हेतुवाद प्रदर्शन करके सम्राट् ने सर्व्वत्र आदेश प्रचार कर दिया था, कि राजकीय सेना कभी भी किसी को इस प्रकार वन्दी न कर सकेगी। विद्रोहीगण के सम्राट् की सेना और अर्थ ध्वंस करने पर भी, शेषमें वश्यता स्वीकार करलेने पर, सम्राट् उनका अपराध क्षमा करके उन्हें जागीरें तक दे देते थे। सम्राट् शत्रु-नगरी पर अधिकार करके व्यक्ति-विशेष की धनसम्पत्ति पर हस्तक्षेप नहीं करते थे। वे सेनाको नगर के विभिन्न स्थानोंमें स्थापन करके, नागरिकगण के धन-प्राण की रक्षा करते थे। प्रतिहिंसा सम्राट् के हृदय में स्थान नहीं पाती थी। शत्रु-पक्षावलम्बी के क्षमा माँगने पर, बिना दण्ड दिये ही उसे क्षमा कर देते थे। विद्रोहियों के शत्रुतासाधन से विरत होने परही,

सम्राट् सन्तुष्ट हो जाते थे। वह शत्रु देश पर अधिकार करके, सर्वसाधारण का अपराध क्षमा करके घोषणापत्र प्रचार करते थे।

तोप-बन्दूक—सम्राट्ने सैकड़ों शिल्पशालायें स्थापित की थीं, जिनमें उत्कृष्ट तोप, बन्दूक, बारूद, गोला, गोली, बर्छी, तलवार, ज़िरह, ढाल, इत्यादि सभी युद्धोपकरण प्रस्तुत होते थे। सम्राट् की शिल्पशालाओं में ऐसी वृहत् तोपें निर्मित होती थीं, कि उनसे १२ मन का गोला चल सकता था। बहुत से हाथी और सहस्रों बैल एक-एक तोप को खींचते थे। उस समय ऐसी-ऐसी तोपें भी तय्यार होती थीं, कि जो तीस मन का लोहे का गोला बहुत दूर तक फेंक सकती थीं। डाओ साहब ने लिखा है,—"यदि ढाका और अर्काट में सुवृहत् तोपें दृष्टिगोचर न होतीं, तो अकबर की इन अति वृहत् तोपों के विवरण पर विश्वास भी न होता।" भारत में ऐसी उत्कृष्ट बन्दूकें तय्यार होती थीं, कि फ़रासीसी बर्नियर साहबने अकबर के ५० वर्ष पीछे लिखा है,—"भारतसे बढ़कर बन्दूक यूरोप में तैयार होती हैं कि नहीं, इसमें सन्देह है।" सम्राट् अकबर उत्कृष्ट बन्दूकें तैयार कराने के लिये जैसा परिश्रम और यत्न करते थे, उसको पढ़ने से विस्मित होना पड़ता है। उनकी शिल्पशालाओं में ऐसे ज़िरहबख़्तर तैयार होते थे, कि बन्दूक की गोली उनको भेद नहीं कर सकती थी। सम्राट् और उनकी सेना इन्हीं को पहना करती

थी। सम्राट् ने अपनी प्रतिभा के बल से यह उन्नति साधन की थी। उनकी तोपें एक चक्र के ऊपर रक्खी रहती थीं। उन्होंने एक तोप ऐसी निर्माण कराई थी, जो ले जाने के समय कई खण्डोंमें विभक्त होजाती थी और युद्ध के समय बहुत ही थोड़े समय में एकत्र संयुक्त हो जाती थी। उन्होंने एक ऐसा यन्त्र तय्यार किया था, कि जिसकी सहायतासे सत्रह तोपोंमें एक मूहूर्त्तमें अग्नि दे दी जाती थी और सत्रहों तोपें एक ही समय गोले और अग्निवर्षण करती थीं। उन्होंने एक और भी यन्त्र बनाया था, उसकी सहायतासे एकही समय में एकही व्यक्ति द्वारा १६ बन्दूकें परिष्कार की जासकती थीं। सम्राट् ने एक घोड़ेकी गाड़ी तैयार की थी, जिसके द्वारा अनाज-मड़ाईका कार्य्य सम्पन्न होता था।

रणनौकाएँ—वर्णित समय में, यूरोप की जातियोंने भारत-समुद्र पर एकाधिपत्य स्थापन कर लिया था। उनकी रण-नौकायें भारत के दोनों किनारे पर प्रतिद्वन्द्वीविहीन थीं। भारतवर्ष और मक्का से यूरोपवासियोंका कुछ भी सम्पर्क न होने पर भी, उनकी अनुमति और अनुकम्पाके बिना मुसल्मान समुद्रपथसे मक्का नहीं जा सकते थे। पोर्चुगीज़ लोग परितुष्ट होने पर उनको अनुमति-पत्र प्रदान करते थे, जिसके शिरपर ईसामसीह और उनकी जननीकी प्रतिमूर्त्तियाँ अङ्कित कर देते थे। मुसल्मान लोग और कोई उपाय न देखकर उसको ग्रहण करते थे।

सम्राट् इसको किस प्रकार सह सकते थे ? उन्होंने पोर्चुगीज़ोंसे प्रतिद्वन्द्विता करने की इच्छासे, उनकी रण-नौकायें देखकर, उन्हींके अनुकरणसे, बड़े-बड़े ज़हाज़ तैयार कराये। विविध समुद्रतीरवर्त्ती स्थानोंपर सुवृहत् अर्णवयान तैयार होने लगे। इलाहाबाद और लाहौरमें निर्मित हुई नौकायें भी वर्षा-कालमें नदीकी सहायतासे समुद्रमें पहुँचने लगीं। प्रत्येक जहाज़के कर्मचारियोंकी संख्या देखनेसे उसकी लम्बाई-चौड़ाई समझमें आसकती है।

प्रत्येक रणनौका में बारह श्रेणी के कर्मचारी रहते थे। जो नाविक समुद्र के ज्वार-भाटे के सम्बन्ध में अभिज्ञ थे, जो कह सकते थे कि कहाँ कितना जल है, जो जानते थे कि किस समय में, किस ओर से, किस कारण से वायु प्रवाहित होती है, जिनका स्वास्थ्य उत्तम होता था, जो तैरने में पटु होते थे, जो परिश्रमी, क्लेशसहिष्णु, और दयालु होते थे, केवल वही इन जहाज़ोंपर नियुक्त किये जाते थे। (क) अध्यक्ष जहाज़ की गति का निर्णय करता था। (ख) कप्तान जहाज़ का परिचालन करता था। (ग) सारं कप्तान को साहाय्य करता था और जहाज़ के चलने के समय और उसके किनारे लगने के समय तत्त्वावधान करता था। (घ) पोत की द्रव्य-सामग्री का तत्त्वावधायक होता था। (ङ) जहाज़वालों को ईंधन प्रदान करता और जहाज़ पर द्रव्यादि के चढ़ाने और उतारने में साहाय्य करता था। (च) किरानी

जहाज़ का सारा हिसाब रखता और पीनेके जलको अपने तत्त्वावधान में रक्षा करता और जहाज़वालोंको देता था (छ) कर्णधर,जिनकी संख्या किसी-किसी जहाज़में बीस तक होती थी। (ज) जो मस्तूल पर बैठे रहते थे और तीरभूमि, तथा अन्य जहाज़ और तूफ़ानके पूर्वलक्षण प्रभृतिका संवाद समय पर देते थे। (झ) जो जहाज़में पानी आजाने पर उसको बाहर निकालते थे। (ञ) तोपके काममें कार्यकुशल लोग थे। जलयुद्ध आरम्भ होने पर ये लोग युद्ध करते थे। इनकी संख्या पोत के आकार के अनुसार कम और ज़ियादा होती थी। (ट) प्रधान ख़लासी। (ठ) साधारण ख़लासी। इनके वेतन भिन्न-भिन्न बन्दरोंमें भिन्न-भिन्न हुआ करते थे। हुगलीके निकटवर्ती सप्तग्राम के बन्दरका अध्यक्ष ४००),कप्तान २००), प्रधान ख़लासी १२०), साधारण ख़लासी ४०) और सैनिक १२) पाता था। प्रत्येक अर्णवयानमें विविध कक्षायें रहती थीं। किसी कक्षामें यात्री और किसीमें वाणिज्यकी वस्तुयें रहती थीं। प्रधान कर्मचारियों को पूर्वोक्त वेतनके अतिरिक्त कई एक कक्षायें बिना मूल्य के ही मिलती थीं। इन कक्षाओंमें वह अपनी वाणिज्य-वस्तुयें भरकर एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाते और बेचकर लाभवान् होते थे। सम्राट् के समयमें सप्तग्राम, खम्बात और लाहाड़ी इत्यादि बहुतसे समुद्रतीरवर्ती स्थानोंमें बन्दर थे। लाहाड़ी बन्दर वर्त्तमान कराचीके पास था। सम्राट् के ये सब जहाज़ पुर्त्तगाल, मलाका और सुमात्रा द्वीपपुञ्ज और पेगु प्रभृति

स्थानोंमें आते-जाते थे। सम्राट्ने ऐसे बहुसंख्यक पोत बनवाये थे। उन्होंने बहुतसे बन्दरोंकी उन्नति की थी।

दुर्ग—सम्राट्ने नाना स्थानोंमें खाइयोंसे परिवेष्टित दुर्ग निर्माण कराये थे। उनमें से अटक, आगरा और इलाहाबाद के दुर्ग उल्लेख-योग्य हैं। इनके अतिरिक्त ग्वालियर, अजमेर, चित्तौड़, असीरगढ़, सूरत, चुनार, रुहतासगढ़ और पुरानी दिल्लीका दुर्ग इत्यादि बहुसंख्यक दुर्ग उनके अधिकारमें थे। उन्होंने कितनीही नगरियाँ निर्माण कराई थीं, कितनेही राजपथ प्रस्तुत कराये थे। कितनीही पान्थशालाओंकी प्रतिष्ठा कराई थी, कितनीही नहरें और जलाशय खुदवाये और प्रासाद बनवाये थे। कितनी ही अट्टालिकाओं और उद्यानों द्वारा देशको अलंकृत किया था।

सेना—सम्राट्ने कुमार सलीमको दश हज़ार, कुमार मुरादको आठ हज़ार, कुमार दानियालको सात हज़ार और सलीमके पुत्र खुसरोको पांच हज़ार सेनाका मन्सबदार या सेनापति नियुक्त किया था। राज्यके सर्व प्रधान व्यक्ति पाँच हज़ार सेनाके मन्सबदार तकका पद पा सकते थे। हिन्दू और मुसल्मानोंमें राजा मानसिंह को ही सब से पहले सातहज़ारी मन्सबदारीका पद प्राप्त हुआ था। ये सब पद केवल सम्मानसूचक थे। इन सबने ज़रूरतके समय बहुसहस्र सेनाका सेनापतित्व किया था।

अबुलफ़ज़लने लिखा है, कि सम्राट्के पास ४४ लाख सेना

थी। इसमेंका अधिकांश जागीरदार लोग देते थे। सम्राट्के सेनापतिके अधीन ५ हज़ार गज-सेना, चालीस हज़ार अश्वारोही सेना और बहुतसी पैदल सेना रहती थी।

सम्राट्ने उच्च श्रेणीके लोगोंकी एक सेना सङ्गठन की थी। दरबारके कर्मचारी, चित्रकार, शिल्पशालाओंके अध्यक्ष प्रभृति इस दलमें रक्खे गये थे। उनमेंसे अनेक ५००) मासिक वेतन पाते थे। उनके ऊपर एक प्रधान अमात्य और उसके ऊपर सम्राट् स्वयं सेनापतित्व करते थे। वर्तमान वालण्टियर सेना इस सेनाकी तुलनीय है।

मन्सबदारोंको जागीरें मिलती थीं, और वह निर्दिष्ट-संख्यक सेना रखनेको अङ्गीकार होते थे। जो जागीरदार वास्तवमें सेना नहीं रखते थे, वह सेनाके परिदर्शनके समय औरोंके घोड़े, वणिक और श्रमजीवी प्रभृति द्वारा आवश्यकीय संख्या पूरी कर देते थे। सम्राट्को जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने मन्सबदारोंके हाथी, घोड़े प्रभृतिकी पीठोंपर चिह्न बनवा दिये, और उनको जागीर के बदले वेतन देनेका नियम प्रचलित किया। पञ्चहज़ारी सेनाके मन्सबदार प्रतिमास २८०००-३००००, रुपया तक वेतन पाते थे। उनको अपने व्यय से ३४० घोड़े, ५० हाथी, १०० भारवहनोपयोगी पशु और १६० गाड़ियाँ रखनी पड़ती थीं। एक हज़ार सेना के मन्सबदार ८०००—८२००)तक मासिक वेतन पाते थे। उनको अपने व्ययसे १०४ घोड़े, ३१ हाथी, २५ भारवाही पशु और ४२ गाड़ियाँ

रखनी पड़ती थीं। सम्राट् के समयमें ४१५ मन्सबदारों में ५७ हिन्दू थे। हिन्दुओंकी संख्या कम देखकर कोई सम्राट्के ऊपर दोषारोपण न करे। हिन्दू-विद्वेषी बदाऊनीके लिखा है,—'बहुत चेष्टा करनेपर भी सम्राट्को हिन्दू प्राप्त नहीं हुए हैं, तथापि वह शीघ्रही सेनाके तथा और सब पदोंके अर्द्धांशको हिन्दुओंसे पूर्ण कर देंगे, इसमें सन्देह नहीं है।" उस समय हिन्दू लोग वर्त्तमान समयकी भाँति राजकार्यके लिये लालायित नहीं थे, दूरदेशसे दिल्ली और आगरा पहुँचना भी सहज नहीं था, इसी कारण हिन्दुओंकी संख्या आशानुरूप वृद्धिको प्राप्त नहीं हुई। मन्सबदारोंमें उड़ीसाके कुछ ज़मीन्दारोंका नाम तो पाया जाता है, परन्तु बङ्गालके किसीका भी नाम नहीं पाया जाता है। जो कुछ भी हो,सम्राट्के समय में बहुत से हिन्दू सर्व्वोच्च राजकार्य पर नियुक्त थे। उनके पौत्र शाहजहाँके समयमें, हिन्दू लोग प्रथम और द्वितीय श्रेणीके उच्च पदोंसे एकबारगीही विताड़ित कर दिये गये थे। और औरङ्गज़ेब (सम्राट्के प्रपौत्र) के समय में, हिन्दू लोग साम्राज्य के सभी कार्यों से दूर कर दिये गये थे, एकमात्र मुसल्मानही मुसल्मान रखनेकी आज्ञा प्रचारित होगई थी।

जो लोग सैनिक-विभागमें प्रवेश करने के अभिलाषी होते थे, उनकी सम्राट् स्वयं परीक्षा लेते थे। वह आकृति देखकर प्रकृतिका निर्णय कर सकते थे। लिखा है, कि सम्राट् देखकर ही बतला सकते थे, कि कौन मनुष्य सैनिक है और कौन वणिक।

वर्तमान समय में कुछ अश्वारोही सेना सैन्यदलके आगे और दूर-दूर चलकर शत्रु के आकस्मिक आक्रमणकी सम्भावना निवारण करती है, और शत्रु का सन्धान पाते ही संवाद देकर पश्चाद्वर्त्ती सेनाको सतर्क करती है। सम्राट्ने भी अपनी सेनामें यही प्रथा चलाई थी। किसी-किसी अभियानमें, मुग़लसेना विजन वनभूमिको परिष्कार करके, उसमें राजपथ निर्माण करती हुई, शत्रु के अनुसन्धानमें अग्रसर हुई है।

सम्राट्के समयमें हाथी अत्यन्त उपकारी थे। वह बड़ी-बड़ी तोपोंको रणक्षेत्रमें लेजाते थे। सैनिकगण बन्दूकें लेकर उनके ऊपर बैठकर शत्रु-संहार करते थे। छोटी-छोटी तोपें उनकी पीठों पर से गोले बरसाती थीं। वह ज़िरहसे मढ़ी हुई सूँड़ोंमें बड़ी-बड़ी तलवारें लेकर उनसे विपक्षियोंका विनाश करते थे। सम्राट् मातङ्गोंको तोपध्वनि और अग्नि से विचलित न होने और अस्त्र-सञ्चालन करने की शिक्षा देते थे।

पशु—सम्राट्के सुविस्तृत फ़ीलख़ानेमें सदैव ५००० अति उत्कृष्ट गजराज रहा करते थे। उन्होंने विभिन्न देशोंसे, बहुत व्यय और अनेक यत्नों से अति उत्कृष्ट हाथी संग्रह किये थे। एक-एकका मूल्य एक-एक लाख रुपया तक दिया था।

सम्राट्की अश्वशाला में ५०००—६००० अति उत्कृष्ट घोड़े सदैव रहा करते थे। उन्होंने अरब, फ़ारस, तुर्क, काबुल और काश्मीरसे सर्वोत्कृष्ट घोड़े मँगाये थे। वह एक-एक अत्युत्कृष्ट घोड़ेका मूल्य ५०० स्वर्णमुद्रा तक प्रदान करते थे।

सम्राट् के घोड़े और हाथी विविध प्रकार के मणिमुक्ता-खचित सोने के आभूषणोंको परिधान करके सम्राट्को वहन करते थे। उनके घोड़ेकी ज़ीन मणिमुक्ता-विखचित सोनेकी बनी हुई थी। वह अश्व अथवा गज पर आरोहण करते ही उसके पालनेवाले को पुरस्कार देते थे। सम्राट्ने आज्ञा देदी थी, कि कोई घोड़ा भारतवर्ष से बाहर न जाने पावे, इसके लिये उन्होंने कोतवाल नियुक्त कर दिये थे।

सम्राट् के पास असंख्य ऊँट और खच्चर थे। सैनिक लोग बन्दूकें लेकर ऊँटों पर सवार होकर शत्रु का विनाश करते थे। सम्राट् उत्कृष्ट ऊँटका मूल्य १२ स्वर्णमुद्रा तक देते थे।

उस समय गुजरात की गायें बहुत बढ़िया होती थीं। बङ्गाल और दक्षिण प्रदेश में भी उत्तम गायें मिलती थीं एक-एक गाय प्रतिदिन २० सेर दूध देती थी। सम्राट् गोजाति की उन्नति के लिये सभी को उत्साहित करते थे। इसके लिये उन्होंने एक बार ५००० रुपये में दो गायें ख़रीदी थीं। हाथी, घोड़े प्रभृतिको निर्दिष्ट आहार नियमित रूप से मिलता है कि नहीं, इसको भी सम्राट् स्वयं देखते थे।

उत्कृष्ट जीवके संयोगसे अत्युत्कृष्ट जीव उत्पन्न हो सकता है, इसको हिन्दू लोगोंके अपने भाग्य-दोष से न समझने पर भी, अकबर ने सुप्रसिद्ध डारविन साहबके बहुत पहले ही, इसका आविष्कार कर लिया था। उन्होंने इस उपायको अव-लम्बन करके भारत के घोड़े, खच्चर, ऊँट, गौ और

कबूतर इत्यादि की जाति की बहुत कुछ उन्नति की थी ।

खाद्य-सामग्रीका मूल्य—सम्राट् के समय में द्रव्यादि का क्या भाव था, वह नीचे की पँक्तियाँ देखने से मालूम हो जायगा :—प्रति मन गेहूँ ।~), जौ ≶)।, चावल ॥)से २॥)तक, मूँगकी दाल ।≶),तेल २), नमक ।~), शक्कर १।~), दूध ॥~), घी २॥~) और तीन-तीन सेरकी भारी उत्कृष्ट ईंटें ॥) में एक हज़ार मिलती थीं ।

मजदूरी—नीचे दृष्टि करनेसे ज्ञात होगा, कि उस समय मज़दूरोंका क्या भाव था—बढ़ई १॥) से ५।) तक, छप्पर छाने वाले २।), साधारण श्रमजीवी १॥), महावत ५), बन्दूक़धारी सैनिक २।।।) से ६।) तक, प्रति दश बन्दूक़धारी सैनिकों के ऊपर एक मिरदहा अथवा प्रधान रहता था वह ६।।) से ७।।) तक पाता था । पैदल सैनिक २॥) और पालकी के कहार ३) से ४।।।) तक पाते थे ।

उत्तराधिकारी—यदि कोई व्यक्ति मर जाता और यदि वह राज्य का ऋणी नहीं होता था, तो उसकी सम्पत्ति को उसका उत्तराधिकारी पाता था । यदि उत्तराधिकारी न होता था, तो वह सम्पत्ति राजकोषमें जाती थी ।

सुनीति—सम्राट् अभिसारिकाओं को नगर के जिस किसी स्थान में नहीं रहने देते थे । उनके लिये जो स्थान

निर्दिष्ट किया था, उसका नाम सम्राट्ने शैतानपुर रक्खा था। वहाँ पर सम्राट्ने एक आफ़िस बना दिया था। जो लोग वहाँ जाते-आते थे, अथवा वेश्याओंको अपने घर ले आते थे, उनके नाम-धाम इस आफ़िसके कर्मचारी लिख लेते थे। इस प्रकार सम्राट् दुराचारके मार्गको संकुचित करते थे।

सुगन्ध—सम्राट् सुगन्धित द्रव्योंके बड़े पक्षपाती थे। राज-प्रासाद सदैव नई-नई कुसुम-मालाओं और कुसुम-स्तवकोंसे सुशोभित रहता था। स्वर्णपात्रों में धूप, अगर, चन्दन इत्यादि सदैव प्रज्वलित रहते थे। सम्राट् स्वयं भी सुगन्धित द्रव्य प्रस्तुत करना जानते थे, और अनेकों सुगन्धित द्रव्य व्यवहार करते थे।

अभिमत—सम्राट् जिस प्रकार अपने सुविस्तृत साम्राज्य की शासन-प्रणाली की रचना करते थे, उसी प्रकार अपनी पशुशाला में कौन पशु किस समय किस रूपसे आहार पाता है, इसका भी विधान करते थे। और उनके नियम अक्षर-अक्षर प्रतिपालित होते हैं कि नहीं, इसको वह स्वयं परीक्षा करते थे। एक बन्दूकके निर्माण होते समय, वह पाँच बार उसको देखकर परीक्षा करते थे। उस समयके सम्राटोंमें से किसीने भी इतना परिश्रम और परिदर्शन नहीं किया है। ब्लाकमैन साहबने लिखा है, कि हर एक कामको बारम्बार निरीक्षण करने के कारण ही सम्राट्को शासनप्रथामें इतनी कृतकार्यता हुई थी।

मेलसन साहबने लिखा है,—"अकबर युद्धमें लिप्त होनेसे आनन्दित नहीं होते थे। वह युद्धको अनिवार्य दुष्कार्य समझते थे। वह युद्ध के बदले शासन-संस्कार द्वारा जनसाधारण की उन्नति साधन करने को सहस्र गुण अच्छा समझते थे। वह समझते थे, कि जनसाधारण की चमता से ही साम्राज्य भी स्थायी होगा। उन्होंने बाहुबल से जो साम्राज्य सङ्गठन किया था, उसको जनसाधारण की इच्छानुसार शासन करते थे। उन्होंने जिस प्रदेश को विजय किया, उसमें सुशृंखला स्थापन करके सुशासन-पद्धति प्रवर्तित की। चिन्ता, कार्य और धर्मानुष्ठानमें सब को स्वाधीनता प्रदान की थी, न्याय-विचार प्रतिष्ठित किया था। इन्हीं सब कामोंके चलाने की वासना से उन्होंने जयलाभ किया था। उनके निकट सब व्यक्ति समान थे, जाति और धर्मके लिये तारतम्य नहीं था। उन्होंने सर्वत्र आदेश प्रचार किया था, कि आईन के निकट सभी मनुष्य समान हैं, इसवास्ते विचारक हिन्दू-मुसल्मान का पार्थक्य प्रदर्शन न करें। उन्होंने सर्वसाधारणके लिये एक प्रकारकी शासन-पद्धति प्रवर्तित करके, सभी अपने-अपने विवेकानुसार चलनेके अधिकारी हैं, यह मत प्रचार करके भारत में नवयुग प्रवर्तित कर दिया था। वह रक्तपात से घृणा करते थे, दया के साथ न्याय-विचार करना पसन्द करते थे, प्रतिहिंसा के बदले चमा करते थे, और आवश्यकता होने पर हृदय को स्वाभाविक करुणा को छोड़कर काठिन्य भी प्रदर्शन करते थे। जबतक

संशोधन की आशा रहती, तब तक दण्ड न देकर क्षमाही करते थे। 'जाओ अब पाप मत करना,' यही उनके उपदेश और चरित्रकी मूलनीति थी। वह स्नेहशील और बन्धु-वत्सल थे, अन्यको आकृष्ट और मुग्ध करना जानते थे। वह शत्रु के ऊपर सम्मान और सौहार्द्द प्रदर्शन करके उसको अपने पक्ष में कर लेते थे। उनका लक्ष्य था,—सम्मिलन और एकता-स्थापन। अकबरकी अपेक्षा और मङ्गल के सहृदय उत्साहदाता ने भारत में जन्मग्रहण नहीं किया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है, कि उन्होंने अपनी वंशावली की सुखसमृद्धि की वृद्धि की थी।

फ़रासीसी बर्नियर साहबने देखकर लिखा है,—"भारतमें ऐसी उत्कृष्ट बन्दूक़ तय्यार होती है, कि उससे बढ़कर यूरोप में भी बनती है कि नहीं, इसमें सन्देह है।" हण्टर साहब ने लिखा है,—"सोलहवीं शताब्दी में जब यूरोपके वणिकगण पहलेही पहल समुद्र-तीरपर उतरे थे, उस समय उन्होंने हिन्दू-मुसल्मानोंकी सभ्यता अपने देशकी सभ्यता के अनुसार समुन्नत देखी थी। स्थपति-विद्या, सूत और रेशम के कपड़े बनाने, सोने और मणिमुक्ता के अलंकार बनानेमें पृथ्वी की और कोई जाति भारतवासियों को अतिक्रम नहीं कर सकती थी। परन्तु तब से भारत शिल्प-विषय में निश्चल रहा है, और यूरोप ने अपनी बहुत कुछ उन्नति करके मानवजाति की उन्नति के इतिहास में शीर्षस्थान प्राप्त किया है।

सम्राट् अकबरने चेष्टा द्वारा, कार्यद्वारा भारतवर्षको रसातलसे उन्नतिके उच्च शिखर पर पहुँचा दिया था। उनका भारतवर्ष सब विषयोंमें यूरोपका तुलनीय था। अब यूरोप उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुँच गया है, और भारतवर्ष अकबरके प्रदर्शित पथको छोड़कर अवतरण करते-करते रसातल तक पहुँच गया है। यदि भारत अकबरकी नीतिको परित्याग न करता, तो इस समय महाशक्तिशाली राज्योंमें परिगणित होता।

उन्नीसवाँ अध्याय ।

धर्मनीति ।

Reason is the only basis of religion. —AKBAR.

धर्मका उद्देश्य क्या है? मनुष्य-समाजका मङ्गल करना। धर्मको मूल क्या है? अकबरने कहा है, ज्ञान और युक्ति। तब क्यों इसलाम और ईसाई धर्म अपनेको प्रत्यक्ष ईश्वरसे उत्पन्न हुआ कहकर, गौरवसे अधीर होकर, एक धर्म तलवारके बलसे और दूसरा कूटनीति और चातुर्य्यसे पृथ्वीके अमङ्गल-साधनमें प्रवृत्त हुआ है। किसी एक धर्मके ईश्वरसे प्रत्यक्षभावसे उत्पन्न होने पर, पृथ्वीके और सब धर्म क्या उस ईश्वर-धर्मसे प्रतिद्वन्द्विता करके संसारमें रह सकते थे? क्या वे ईश्वरेच्छा की प्रतिकूलता करके प्रतिष्ठित हो सकते थे? यदि ईश्वर को कोई धर्म प्रत्यक्षभावसेही प्रेरण करना होता, तो सहस्रों वर्ष पहले जब मनुष्योंकी सृष्टि हुई थी, उसी समय वह उस धर्मको प्रदान करते। ऐसा न करके और सहस्रों वर्ष नीरव रहकर, जगत्‌में जो करोड़ों मनुष्य जन्म ग्रहण करके विल-

यको प्राप्त होगये उनके लिये उदासीन रहकर, आधुनिक समयमें क्यों एक धर्म प्रेरण करेंगे? बहुभाषा और बहु-जातिमय सुविस्तृत पृथ्वीके केवलमात्र एक क्षुद्र अंशमें क्यों उसका प्रचार करेंगे? मनुष्य-जातिकी सभ्यता और धर्मके इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे प्रतीत होता है, कि जिस प्रकार मनुष्य धर्मभावविहीन स्वाभाविक अवस्थासे सभ्यतामें आया है, और अज्ञानताकी वनभूमिसे ज्ञानराज्यमें उसने जिस प्रकार प्रवेश किया है, उसी प्रकार उसने धर्मकी भी सृष्टि की है। जिस प्रकार उसकी युक्ति दोषशून्य हुई है, उसी प्रकार धर्मको भी उसने शुद्ध किया है। अकबरने असाधारण प्रतिभाके बलसे इस सत्यको समझकर लिखा है,—"केवल ज्ञान और युक्ति से धर्म प्रस्तुत हुआ है, मनुष्यने धर्मकी सृष्टि की है।" अकबरने भावना की थी,—"भारतके असंख्य धर्म भी इसी प्रकार उत्पन्न होकर, आज भारतवासियोंका महा अनिष्ट कर रहे हैं, परस्पर प्रतिहिंसा-विद्वेषको पोषण कर रहे हैं, समग्र भारतके सम्मिलन-पथमें पर्वतकी भाँति आड़े खड़े हुए हैं। यदि यह सत्य है, तो प्रत्येक स्वदेशहितैषीको इसका प्रतिकार करना कर्त्तव्य है। इस कठिन समस्याको दूर करनेके लिये, प्रत्येक चिन्ताशील भारत-सन्तानको अपने समय और शक्तिका व्यय करना उचित है। यदि ऐसा नहीं किया जायगा, तो भारतकी विभिन्न जातियाँ सम्मिलित न होंगी, और जब सम्मिलित न होंगी; तो भारतवासी जगत्में

एक प्रबल जातिकी भाँति शिर उठानेमें समर्थ न होंगे, दिग्-दिगन्त में गौरव उद्भासित न कर सकेंगे। मेरा एक यही उद्देश्य है, कि किसी भाँति अखण्ड भारतका महामङ्गल साधित होवे। मैं कुछ नहीं चाहता हूँ, केवल हतभाग्य भारतकी महोन्नति देखना चाहता हूँ। इस अति अभिलषित फलके लिये, महासाधनाके लिये, अतीतमें भारतवासियोंने जिस ज्ञान और जिस युक्तिको लगाकर धर्मकी सृष्टि की थी, वर्त्तमान समयमें भी, मैं उसी ज्ञान और उसी युक्ति द्वारा भारतकी दुरवस्था को स्मरण करके, भारतकी विभिन्न जातियोंको सम्मिलित करने के लिये, सभी धर्मों का सामञ्जस्य क्यों न सम्पादन करूँ? अखण्ड भारतके मङ्गलके लिये एकही धर्मको क्यों न प्रवर्त्तित करूँ?" सम्राट् बड़े चिन्ताशील और स्वदेशहितैषी थे, इसी से सदैव कहा करते थे,—"भारतमें बहुतसी जातियों और बहुतसे धर्मोंको देखकर मुझे शान्ति नहीं होती है।" भारतका शिक्षित-सम्प्रदाय भी इसीलिये रोता रहता है। भेद केवल इतनाही है, कि सम्राट् इनकी भाँति निश्चेष्ट नहीं रहे, केवल वाक्य और विलापमेंही समय और शक्तिका सद्व्यवहार नहीं करते रहे। वह भारतके दुःखसे अत्यन्त दुःखी होते थे, उसके प्रतिविधानके लिये सर्वप्रकारके उपाय अवलम्बन करते थे। सम्राट् कहते थे,—"धर्मोंके विविध और विभिन्न होनेपरभी, सत्य की सुदृढ़ नींव स्थापित करके, उन सबका सामञ्जस्य सम्पादन किया जा सकता है।" उन्होंने जातीय जीवनका माहात्म्य

उपलब्ध कर लिया था और समझ लिया था, कि धर्म जातीय जीवन संगठन करनेमें प्रधान सहायक है। इसीलिये वे राजनीति के अनुरोधसे, शक्ति-सञ्चय की वासनासे, हिन्दू-मुसल्मानोंको एक धर्म द्वारा सम्मिलित करनेमें अग्रसर हुए थे, एक महाबल-पराक्रान्त राजनैतिक जातिके सङ्गठनमें अग्रसर हुए थे। हम जितनीही अकबर-चरितकी आलोचना करते हैं, उतनाही यह विश्वास होता है, कि भारतके राजनैतिक आकाशमें अकबरके समान अत्युज्ज्वल नक्षत्र और उदय नहीं हुआ।

भारतकी और भी कितनीही सुसन्तानोंने भारतवर्षमें बहुतसे धर्म और बहुतसी जातियाँ देखकर, मर्माहत होकर, यहाँ एक धर्म और एक जाति करनेका कितना प्रयास किया है! ईसा से ६०० वर्ष पहले, विभिन्न हिन्दू जातियोंके सम्मिलित करनेके लिये, बुद्ध देव*ने बौद्ध-मतका प्रचार किया था। उसके पीछे तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दीमें, महात्मा रामानन्दने विभिन्न हिन्दू-जातियोंको एक जातिमें परिणत करनेकी

* महात्मा बुद्धदेव हम हिन्दुओंके दश अवतारोंमे गिने जाते हैं। उन्हें हम लोग भगवान् बुद्धदेव कहते हैं। उन्होंने किस भाँति अपना राज्य और सब प्रकारके सुखैश्वर्य्योंको परित्याग करके, अपने बालक प्रियपुत्रका मोह न करके, अपनी परम रूपवती प्राणोपम प्यारी रानीको सोती हुई छोड़कर वैराग्य ले लिया; उन्होंने कैसे-कैसे घोर कष्ट सहन किये, परन्तु ज़रा न डिगे! आज पृथ्वीपर उन्हींके मतानुयायी सर्व्वापेक्षा अधिक हैं इन सब बातोंसे अवगत होनेके लिये, "महात्मा बुद्ध" नामक पुस्तकको अवश्य देखिये। दाम ॥) डाक महसूल ⁄)

इच्छासे एक धर्म चलाया था! पन्द्रहवीं शताब्दीमें, कबीर और नानकने हिन्दू और मुसल्मानोंके सम्मिलनके लिये भारतमें नये-नये मत चलाये थे। सोलहवीं शताब्दीमें गौरांगने सब जातियोंको सम्मिलित करनेके लिये, प्रेम और भक्ति-प्रधान धर्म भारतमें प्रवर्तित किया था। बङ्गदेशके गौरव राजा राम-मोहन राय*का प्रयास स्वदेशहितैषीमात्रके विचारने योग्य है। भारतके और एक रत्न गुरु गोविन्दसिंह, हिन्दू और मुसल्मानोंको सौहार्द्में सम्मिलित करके, महाबली पराक्रान्त सिक्ख-जाति सङ्गठन कर गये हैं, उसको वीरत्वसे अनुप्राणित और जगत्में अतुलनीय कर गये हैं।

सम्राट् अकबर भी ऐसीही उच्च आशाको हृदयमें रखकर कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। वेगवान् नदी जिस प्रकार दूसरेकी बनाई हुई राह पर न चलकर, अपना पथ अपने आप ही प्रस्तुत कर लेती है, महापुरुष भी उसी प्रकार औरोंके

---

* जिन्हें बङ्गदेशके गौरव राजा राममोहनरायका विस्तृत जीवनचरित देखना हो, जिन्हें उनके अदम्य उत्साह, अभूतपूर्व साहस और अलौकिक पाण्डित्यका नमूना देखना हो, वे हमारे यहाँसे 'राजा राममोहन राय' को मँगाकर अपनी इच्छा पूरी करें। प्रत्येक स्वदेशहितैषीको उनका जीवन-चरित पढ़कर, उनके चरित्रसे स्वदेशहितैषिताका सबक़ सीखना चाहिए। राजा साहब उस ज़मानेमें हुए हैं, जिस ज़मानेमें हमारे वर्त्तमान प्रभु अँगरेज़राज भारतमें अपना साम्राज्य स्थापन कर रहे थे। इस पुस्तकके पढ़नेसे हज़ारों बातें सीखनेको मिलेंगी। अवश्य देखिये, देखनेही योग्य है। पृष्ठ संख्या २०२ दाम ॥) डाक-महसूल ≈)

प्रदर्शित पथपर जानेमें असमर्थ होकर, अपनीही प्रतिभाके बलसे नये-नये पथोंका आविष्कार कर लेते हैं। अकबर भी ऐसाही पथ आविष्कार करके, युक्ति और ज्ञानकी आराधनामें प्रवृत्त हुए।

सम्राट् सभी धर्मों, सभी भाषाओंके ग्रन्थोंसे ज्ञान आहरण करनेमें प्रवृत्त हो गये। उन्होंने कहा था,—"यदि मेरा मत विशुद्ध है, तो प्रतिकूल युक्तिसे क्या भय है? यदि विशुद्ध नहीं है, तो विरुद्ध युक्ति देखकर उसका संस्कार करूँगा।" इसी कारण वह संस्कृत, हिन्दी, काश्मीरी, फ़ारसी, अरबी और ग्रीक इत्यादि भाषाओंके रत्नगर्भ साहित्य-भण्डारसे रत्नराजि संग्रह करने लगे। उन्होंने भाँति-भाँतिके ग्रन्थोंको भाषान्तरित करनेके लिये, कृतविद्य व्यक्तियों द्वारा एक अनुवाद-विभाग स्थापित किया था। वह लोग दिनरात विविध ग्रन्थोंके अनुवाद करनेमें प्रवृत्त रहते थे। सम्राट् स्वयं बीच-बीचमें उन अनुवादोंकी परीक्षा करते थे और दुर्बोध विषयोंके अनुवादमें स्वयं सहायता करते थे। सम्राट्ने ग्रीक भाषा की पुस्तकोंका अनुवाद करनेके लिये, सुदूर गोवा नगरसे, ग्रीकभाषाविद् एक पोर्चुगीज़को बुलाया था और बहुतसे कर्मचारियोंको ग्रीक भाषा सिखलाई थी। संस्कृतज्ञ कविवर फ़ैज़ीने महाभारतका फ़ारसी भाषामें अनुवाद किया था, अबुलफ़ज़लने उनकी सहायता की थी। सम्राट् महाभारतको पढ़कर मुग्ध हो गये, उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसा की, मुसल्मान अमीर-

उमराओंको उसकी एक-एक कापी देकर पढ़नेका अनुरोध किया। किन्तु हिन्दू-विद्वेषी अनुदार बदाऊनीने लिखा है,—"इसमें ऐसी अप्रयोजनीय और अयौक्तिक बातें लिखी हैं, कि जिनसे ऐसी-ऐसी अठारह हज़ार पृथ्वी डाँवाडोल हो सकती हैं। जो लोग इस पुस्तकके अनुवादके दुष्कार्यसे बचे हैं, उन पर ईश्वर प्रसन्न होगा।" कविवर फ़ैज़ीने नलदमयन्तीके उपाख्यानके अवलम्बन पर, फ़ारसी भाषामें एक मनोहर काव्यरचना करके सम्राट्को उपहार दिया था। इसके अतिरिक्त सम्राट्के आदेश और व्ययसे कई एक प्रधान उपनिषद्, कथासरित्सागर, रामायण, हरिवंश, अथर्ववेद, सिंहासनबत्तीसी, बीजगणित, लीलावती और काश्मीरका इतिहास राजतरङ्गिणी इत्यादि बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ फ़ारसी भाषा में अनुवादित हुए थे। सम्राट्ने विगत एक हज़ार वर्षका इतिहास लिखनेके लिये बहुतसे विचक्षण मनुष्य नियुक्त किये थे। सम्राट्के ज्ञानानुशीलनका वर्णन करना असम्भव है। बदाऊनीने लिखा है,—"एक रात सम्राट् अपने शयनकक्षमें सो रहे थे। वहाँ कोई नहीं जा सकता था। उन्होंने मुझको वहाँ बुलाया। मेरे पहुँचनेपर मुझसे पूछा कि 'राजतरङ्गिणी का अनुवाद शेष हो गया?' मैंने विनीतभावसे कहा—'शेष हो गया।' वह उस वृहत् ग्रन्थके प्रत्येक अध्यायका विवरण एक-एक करके पूछने लगे, मैं सबको विवृत करने लगा। इसी प्रकार समस्त रजनी व्यतीत हो गई। सम्राट्ने सन्तुष्ट होकर, इस

ग्रन्थके अनुवादके लिये मुझको दस सहस्र रुपये और एक अश्व पुरस्कारमें दिया ।" बदाऊनीने जब रामायणको भाषान्तरित किया था, तब सम्राट्ने उसको १५० स्वर्णमुद्रा और दश सहस्र रुपये दिये थे । इससे सम्राट्के अनुवाद-विभागके व्यय का अनुमान हो सकता है । दिनभरके परिश्रमके पीछे, वह रातमें भी किस प्रकार ज्ञान प्राप्त करते थे, यह भी प्रमाणित होता है । बङ्गालके अध्यायमें वर्णन हो चुका है, कि वह सैन्य-अभियानमें भी रातके समय ज्ञानानुशीलन करते थे । उनका एक सुवृहत् पुस्तकालय था । उसमें पूर्वोक्त भाषाओंके बहुविध ग्रन्थ अति सुशृङ्खलासे रक्खे रहते थे । एक-एक भाषाकी पुस्तकें एक-एक आधार पर रक्खी रहती थीं । एक-एक विषयकी पुस्तकें एक-एक स्थान पर शोभायमान रहती थीं । सम्राट् भारतके जिस स्थानमें, जिसी लाइब्रेरीमें जो ग्रन्थ पाते थे, उसे बड़े आदरसे लाकर अपनी लाइब्रेरीमें रखते थे । वह लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे । ये सब ग्रन्थ रातमें नियमित रूपसे उनके पास पढ़े जाते थे । पुस्तक जहाँतक पढ़ ली जाती थी, वहाँ पर सम्राट् अपने हाथसे चिह्न बना देते थे । दूसरे दिन उसी चिह्न से फिर पाठ आरम्भ हो जाता था । इसी प्रकार एक-एक ग्रन्थ समाप्त होता था । सुप्रसिद्ध ग्रन्थोंमें ऐसा कोई ग्रन्थ भारतमें नहीं था, जिसका पाठ सम्राट्के सामने न हुआ हो । ऐसा इतिहास कोई नहीं था, जिसने अपने सदुपदेश द्वारा सम्राट् को समय पर

सावधान न किया हो। सम्राट्के सामनेही स्वर्ण पात्रमें स्वर्णमुद्रायें रक्खी रहती थीं। पाठके अन्तमें वे पाठकको अपने हाथसे प्रचुर स्वर्णमुद्रा प्रदान करते थे। उनके अन्त:पुरमें भी बहुतसी पुस्तकें रहा करती थीं। अन्त:पुरमें रहते समय भी वह ज्ञान आहरण करते थे। महिषीगण उनको पुस्तकें पढ़-पढ़ कर सुनाती थीं! सम्राट् दर्शनशास्त्रसे बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने कहा है,—"दर्शनशास्त्र मुझको इतना प्रिय है, कि और आवश्यक कामोंको छोड़कर मैं उसकी आलोचना को सुनता हूँ। केवल यह ध्यान करके मुझको उसका सुनना बन्द करना पड़ता है, कि कोई कर्त्तव्य कर्म सम्पादित करना न भूल जाऊँ।"

सम्राट् जिस प्रकार विविध ग्रन्थोंसे ज्ञान आहरण करते थे; उसी प्रकार पण्डितोंसे आलाप करके, उनसे तर्कवितर्क करके, बहुतसे विषयोंकी शिक्षा ग्रहण करते थे। कोई भी पण्डित, कोई धर्मावलम्बी उनके पास जा सकता था। वह हर एकको बड़े आदरसे ग्रहण करते थे। भिन्नमतावलम्बी कहकर किसीकी उपेक्षा नहीं करते थे। प्रतिकूल युक्तिद्वारा यदि कोई सम्राट्के मतका खण्डन करता, तो वह अप्रसन्न नहीं होते थे। सम्राट् सब विषयोंको एकमात्र युक्तिद्वारा परीक्षा करके ग्रहण करते थे। उनके तुल्य युक्ति-सेवक आधुनिक समयमें भारतमें दूसरा नहीं हुआ। सम्राट् सदैव कहा करते थे,—"प्रत्येक सम्प्रदाय, अपने धर्ममतको इतना सत्य समझता है, कि उस विश्वास

में प्रमत्त होकर अन्य सब मतों के संहार करने का संकल्प कर लेता है और इसीलिये शत्रुता-साधन करके, विवादमें प्रवृत्त होकर, पृथ्वी को मनुष्य-शोणित से रञ्जित करता है, और अहङ्कार से समझता है, कि वह कोई अति महत् कार्य सम्पादन करता है। युक्ति का उपदेश ग्रहण करने पर मनुष्य को अपनी भूल ज्ञात होती है, और अन्य के विश्वास में हस्तक्षेप करने से अनुतप्त होता है। मनुष्य केवल ज्ञान-सञ्चय को ही सम्पूर्णता-लाभ का कारण समझते हैं, परन्तु उस ज्ञानके अनुसार कार्य सम्पादन न करने से उस ज्ञान का मूल्य क्या है? उससे तो मूर्खता भी अच्छी है। मनुष्य की श्रेष्ठता उसके ज्ञानके कारण है। उसकी उन्नति करना और उसका अनुकरण करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। हिताहितज्ञानशून्य होकर दासकी भाँति दूसरे के मत का अनुसरण करना अनुचित है। यदि यही उचित होता, तो प्रत्येक धर्म्म-प्रवर्त्तक पूर्ववर्त्ती का अनुसरण करता, और नया मत न चलाता। बहुत से मनुष्य अन्धों की भाँति देशाचार का अनुसरण करते हैं, और अहंकार से मनमें समझते हैं, कि वे युक्ति का अनुसरण कर रहे हैं। परन्तु परीक्षा करने से ज्ञात होता है, कि वे युक्ति के पास भी नहीं गये हैं। जिनलोगों में विवेक है, वे सब कामों में न्याय और साधुता से काम लेते हैं। लोगों का आपसमें मत-भेद होता है और वह केवल इस कारण से विवाद करते हैं, कि वह वर्तमान अवस्था, अभाव और उद्देश्य को भूलकर

सामान्य और बाह्य विषयों पर अधिक ध्यान देते हैं। विज्ञ लोग केवल सुफल की ओर दृष्टि करके कर्त्तव्यकार्य का निर्णय करते हैं।"

सम्राट् ने भारत की भिन्न-भिन्न जातियों के सम्मिलन-रूप सुफल को लक्ष्य करके, कर्त्तव्य स्थिर किया था। बङ्गाल के अभियान से लौटकर समुदय धर्मों के सामञ्जस्य-सम्पादन में नियुक्त हुए थे (१५७५ ई०)। उन्होंने सब धर्मों को प्रकाश्य समालोचना के लिये फ़तेहपुर-सीकरी में 'इबादतख़ाना' या धर्मालोचना-गृह नामक एक मनोहर महल बनवाया था। उसमें सब लोगों के बैठने के लिये मञ्च बने थे। मैंने इस गृह को देखा है। जिस गृह को लोग दीवान-ख़ास कहते हैं, सम्भव है कि वही इबादतख़ाना होगा। यह इकतल्ला मकान दोतल्ले के बराबर ऊँचा है। इसके भीतर चारों ओर दीवार से लगा हुआ दो हाथ चौड़ा मञ्च बना हुआ है। नीचे खड़े होकर, हाथ बढ़ाकर छूना चाहो, तो उस मञ्च को छू नहीं सकते। गृह के मध्यस्थल में एक स्तम्भ उसी ऊँचाई का बना हुआ है, उसके ऊपर भी बैठने का स्थान है। उसके चारों किनारे रेलिंग से अलंकृत हैं। यह आसन पूर्वोक्त मञ्च के चारों कोनों से अप्रशस्त सेतु द्वारा संयुक्त है। सम्राट् इस स्तम्भ पर आसन ग्रहण करते थे, तार्किकगण मञ्च के ऊपर चारों ओर बैठते थे। सुनने वाले नीचे गृह में बैठते थे; सम्राट् हिन्दू और

मुसल्मान इत्यादि सबही धर्मावलम्बियों को इस गृह में बुलाते थे। भारत के महापण्डित वहाँ आते थे। सम्राट्ने सुदूरवर्त्ती फ़ारस देश से अग्नि-उपासक पारसी पुरोहितों को एवं बारह सौ मील से भी अधिक दूर गोवा नगर से ईसाई-याजकों को और सुदूर तिब्बत से बौद्धधर्मावलम्बियों को बड़े आदर से और बहुत व्यय से बुलाया था। ब्राह्मण और बौद्ध, दार्शनिक और नास्तिक, ईसाई और मुसल्मान सभी वहाँ अपने-अपने मतका समर्थन और विपक्ष मत का खण्डन करते थे। इस प्रकार इस गृह में विभिन्न धर्मों को, विभिन्न आचार-अनुष्ठानों को, प्रकाश्य समालोचना होती थी, और सत्य पर पहुँचने के लिये पथ परिष्कृत होता था। सम्राट् उन तार्किकों के मध्य में योगासन लगाकर प्रशान्त भाव से बैठे हुए भिन्न-भिन्न धर्मों को, भिन्न भिन्न मतों को, विभिन्न आचार-अनुष्ठानों को समालोचना सुना करते थे। वह समागत पुरुषों को बड़े आदरसे ग्रहण करके गुणानुसार पुरस्कार देते थे। सबही सम्राट्के व्यवहार से मुग्ध और अनुरक्त होते थे।

इस गृह में मौलवी लोग इसलाम-धर्मका समर्थन और अबुलफ़ज़ल उसके दोषों का बखान करते थे। मौलवी लोग अबुलफ़ज़ल से युक्ति-युद्ध और पाण्डित्य में हारकर सम्राट्के सामने ही नेत्रों को रक्तवर्ण करके, बल-विक्रम दिखलाकर, गालियों की वर्षा करने लगते थे। उन लोगों का सामान्य

ज्ञान और गवेषणा, असामान्य अहङ्कार और स्पर्द्धा दिन पर दिन प्रकाशित होते जाते थे, और एकमात्र गुण के पक्षपाती सम्राट् को उनके ऊपर अश्रद्धा होती जाती थी। ये लोग किसी-किसी विषय को लेकर अपने ही सम्प्रदाय में घोर विवाद करने लग जाते थे। कुरान में आज यह अर्थ और कल वह अर्थ निकालने लगते थे। बदाऊनी ने लिखा है,—"सम्राट् इबादतखाने में ज्ञानी मनुष्यों के साथ बहुतसा समय अतिवाहित करते थे। विशेष करके शुक्रवार की समस्त रात्रि जागकर धर्मालोचना करते थे। तर्क-वितर्क होते-होते शेष में कलह आरम्भ हो जाता था। मौलवी लोग आपस में मत-भेद होने से एक दूसरे को मूर्ख और अविश्वासी कहकर गालियाँ देने लगते थे। एक मुसलमानने मुहम्मद की निन्दा की थी, दूसरे मुसल्मानने शियाधर्म ग्रहण कर लिया था, इसी सन्देह में अब्दुलनबी ने उन दोनों को प्राणदण्ड दिया। मौलवी लोगों ने इस काम को अत्यन्त गर्हित कहकर एक पुस्तिका प्रकाशित की। मौलवी लोग इस समय दो दलों में विभक्त होकर आत्मकलह में प्रवृत्त होगये। बहुत से मौलवी अन्याय को न्याय कहकर और मिथ्या को सत्यके वेशसे सजाकर सम्राट्के सामने उपस्थित करने लगे। एक मौलवी जिस काम को धर्मसंगत कहता था, उसीको दूसरा धर्मविरुद्ध कहकर प्रचार करता था। मौलवियों में इस प्रकार मतभेद होनेके कारण मुसल्मान जनसाधा-

रण इसलाम-धर्म में अविश्वासी होने लगे। सम्राट् का अत्यन्त महत् अन्तःकरण था, वह अकपट हृदय से सत्य का अनुसन्धान करते थे। किन्तु उनकी बुद्धि स्थिर न रहे इसके लिये, अविश्वासी और नीचमना व्यक्ति उनको हमेशा घेरे रहते थे और उनके मनमें सन्देह पर सन्देह उत्पन्न करते थे। इस प्रकार इसलाम-धर्म की प्राचीर सैकड़ों स्थानों से फट गई थी।" बदाऊनी भी सम्राट् के दरबारके एक मौलवी थे। उन्होंने अपनी प्राज्ञता और युक्ति द्वारा इसलाम-धर्म का समर्थन करने में असमर्थ होकर, इस प्रकार सम्राट् की प्राज्ञता पर दोषारोपण किया है!

मौलवी लोग राजकोष से आर्थिक सहायता पाते थे, और धर्मके नाम से मनुष्यों पर अत्याचार करते थे। किसी मुसल्मान ने यदि क़ुरानके शासन की अवहेला की, अथवा धर्म-सम्बन्ध में नया मत प्रचार किया, इसको सुनते ही वहलोग अपनी क्षमताके अनुसार प्राणदण्ड तक दे देते थे। सम्राट् इससे अवगत होकर बहुत दुःखित होते थे, उन्होंने इस धर्म-सम्बन्धी क्षमता को अपने हाथ में लेने की अभिलाषा की। अबुलफ़ज़ल प्रभृति ने समझा, कि धर्म-सम्बन्धी क्षमता से मौलवियों को वञ्चित करके यदि वही क्षमता सम्राट् को अर्पण की जाय, तो महामङ्गल हो सकता है। भारतके हितके लिये बहुतसे धर्मों के बदले एक धर्म का प्रवर्त्तन सहज हो जायगा। शेष में, शेख़ मुबारक और अबुलफ़ज़ल प्रभृतिके यत्न और परिश्रम

से अभिलषित परिवर्तन होगया। एक घोषणापत्र में लिखा गया, "* * हमलोगों ने निश्चय कर लिया है, कि भविष्यत् में यदि कभी धर्म-सम्बन्धी मतभेद उपस्थित होगा, तो सम्राट् राजनीति के अनुरोध से और सर्वसाधारणके मङ्गलके लिये जो कुछ मीमांसा करेंगे उसको हमलोग और हमारी समग्र जाति प्रतिपालन करेगी। सम्राट् यदि धर्म-सम्बन्धी कोई नया अनुशासन प्रचार करेंगे और यदि वह सर्वसाधारण के लिये हितकर और क़ुरानके विधानके अनुसार होगा, तो उसको भी हमारी समग्र जाति और हम सब लोग बिना किसी आपत्तिके प्रतिपालन करेंगे * * "। इस सुप्रसिद्ध पत्र पर महात्मा मुबारक, अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी इत्यादि सम्राट्के अकृत्रिम बन्धुओंने आनन्दपूर्वक हस्ताक्षर किये। मौलवी लोगोंने सम्राट् की प्रतिकूलता करनेके साहसी न होनेके कारण, अति अनिच्छापूर्वक, उसके ऊपर अपने-अपने हस्ताक्षर किये। इसके द्वारा सम्राट् को इसलाम-धर्म्म की सर्व्वप्रधान क्षमता प्राप्त होगई और राजनीति द्वारा परिचालित होकर, बहुधर्म्म और बहुजातिमय भारतवर्ष में, सर्व्वसाधारणके मङ्गलके लिये जो प्रयोजनीय समझा जाय, उसके क़ुरानके किसी न किसी विधानसे सम्मत होने पर, उसके प्रचार करनेके वे अधिकारी होगये।

सम्राट् दिनरात स्थिर और शान्तभावसे मौलवियोंके मुखसे इसलाम-धर्म्म की पक्षपाती युक्तियाँ सुनने लगे। शेष में

अपना मत प्रचार किया कि,—"मुहम्मद ईश्वर-प्रेरित नहीं है, क़ुरान ईश्वर-प्रदत्त नहीं है, इसलाम-धर्म ईश्वर से प्रत्यक्ष भाव से उत्पन्न नहीं हुआ है। परन्तु मुहम्मदने ५३ वर्ष की वयस में ८ वर्ष की बालिका से पाणिग्रहण किया और अपने दत्तकपुत्र की स्त्री से विवाह करके अत्यन्त गर्हित कार्य किया था। मुहम्मद* ने अपनी प्रतिभा के बलसे अरबी भाषा में क़ुरान की रचना की थी। उन्होंने क़ुरान में लिखा है, कि वह स्वप्न में स्वर्ग पहुँचे और जिबराईल नामक स्वर्गीय दूत उनको ईश्वर के पास ले गया, ये सब बातें अप्राकृत हैं। स्वर्ग नाम का कोई स्थान नहीं है, स्वर्ग में कोई दूत नहीं है, ईश्वर सर्वत्र सब पदार्थों में समभाव से विराजमान है।"

सम्राट् मुहम्मदी धर्मको नहीं मानते थे। फिर भी, उनको एक प्रतिभान्वित व्यक्ति समझकर उनका सम्मान करते थे। सम्राट् के नये धर्म के प्रचार करने के पीछे, एक अमात्य मक्का से मुहम्मद के पदचिह्न-युक्त एक पत्थर लाया। सम्राट् ८ मील आगे गये और बड़े ही आदर से उस पत्थर को ग्रहण किया। सम्राट् के आत्मीयगण मक्का जाने के अभिलाषी होते, तो सम्राट् उनको वहाँ भेज देते थे। जब सम्राट् के कर्मचारी

* जिन्हें मुसलमानी मज़हब के जन्मदाता मुहम्मद साहब का जीवन-वृत्तान्त जानना हो, उन्हें हमसे "हज़रत मुहम्मद साहब' नामक पुस्तक मँगाकर अवश्य देखनी चाहिये। उसके देखने से मुसलमानी मत के अनेक ज्ञातव्य विषय मालूम हो जायँगे। दाम ॥) आना, डाक-व्यय

मक्का जाते, तो वह उनके साथ बहुतसा रुपया रख देते थे, जो मक्का के दरिद्रों में बाँट दिया जाता था। सम्राट् आजीवन साधुओं पर श्रद्धा प्रकट करते रहे।

ईसाई-धर्मावलम्बी पोर्चुगीज़ लोग गोवा से सम्राट् के पास आकर बड़े आदरपूर्वक ग्रहण किये जाते थे। सम्राट् उन लोगोंसे यूरोप, उसके राज्यशासन की प्रथा और ईसाई धर्म के सम्बन्धमें बहुत ज्ञान आहरण करते थे। सम्राट् ने गोवाके शासनकर्ताके पास अपने दूत द्वारा जो पत्र भेजा था, उससे उनके हृदय की उदारता का परिचय मिलता है। उन्होंने लिखा था,—"ईसाई धर्म के अध्ययन करने की मुझे बड़ी अभिलाषा है, आप अनुग्रह करके दो पादरियों को भेज दीजिये। वह लोग अपने साथ बाई-बिल और धर्मसम्बन्धी प्रधान-प्रधान पुस्तकें भी लेते आवें। जो लोग यहाँ आवेंगे, उनका यहाँ बहुत आदर-सत्कार होगा। मैं उनको देखकर अपार सुख प्राप्त करूँगा। जिस समय वह लोग यहाँ से जाना चाहेंगे, उसी समय उनको बड़े सत्कार-पूर्वक वापिस भेज दूँगा। यहाँ आनेके लिये कोई भयभीत न हो, क्योंकि मैं उनकी रक्षा करूँगा।" सुविस्तृत भारत-वर्ष के अधीश्वर को ईसाई-धर्म में दीक्षित करने के लिये, तीन अति विचक्षण पोर्चुगीज़ पादरी चले। वह लोग ४३ दिन के परिश्रम के पीछे फ़तेहपुर-सीकरी पहुँचे। सम्राट् ने उनको बड़े सौहार्द से ग्रहण किया। उन्होंने सम्राट् को बहुत से उपहार प्रदान किये, जिनमें एक बाइबिल और

ईसामसीह और उनकी जननीकी मूर्त्ति भी थी । इसलिये कि मनुष्य उनके ऊपर किसी प्रकारका अत्याचार न करें, सम्राट् ने उनको अपने प्रासादकी प्राचीरके भीतर ही वासस्थान दिया। एक आज्ञा विशेष प्रचार कर दी, कि आये हुए पादरियोंकी, उनकी उपासना-पद्धति की एवं ईसा और मेरी की तस्वीरोंकी अवज्ञा कोई न करे। प्रति शुक्रवारको रातको पादरी लोग धर्म्मालोचना-गृहमें ईसाई-धर्म्मका समर्थन और अन्य धर्म्मों का दोष कीर्त्तन करते थे। सम्राट्ने बाइबिलको भाषान्तरित करनेके लिये अबुलफ़ज़लको नियुक्त किया। सम्राट्को फारसी भाषामें धर्मोपदेश करनेके लिये एक पादरी फ़ारसी भाषा सीखने लगा। पादरियोंने फ़तेहपुर-सीकरीमें एक दातव्य औषधालय खोल दिया और उसमें वह अकातर भावसे औषधि वितरण करने लगे। वह लोग पवित्र और परोपकारी चरित्र द्वारा हिन्दू और मुसल्मान सभी श्रेणीके मनुष्यों-को मुग्ध करने लगे। पादरियोंने सर्वत्र ईसाई-धर्म्म प्रचारित करनेकी अनुमति माँगी, परन्तु इससे वह विपद्में पड़ सकते थे इस आशङ्कासे सम्राट्ने उनको मना कर दिया। परन्तु यह आज्ञा प्रचार कर दी, कि यदि कोई स्वेच्छासे ईसाई धर्म्म ग्रहण करे, तो कोई उसके ऊपर उत्पीड़न न कर सकेगा। सम्राट्ने अपने पुत्र मुरादको पोर्त्तुगीज़ भाषा और ईसाई-धर्म्म के अध्ययनके लिये पादरियोंके हाथमें अर्पण कर दिया। सम्राट्ने उनके लिये आगरेमें एक गिरजाघर बनवा दिया।

एक दिन उन्होंने वहाँ उपस्थित होकर ईसाई रीतिके अनुसार अपने किरीटको उतारकर और घोंटू भुकाकर और पीछे मुसल्मानोंकी रीतिके अनुसार बैठकर और खड़े होकर ईश्वर की उपासना की थी। केथोलिक धर्म्म-प्रचारकोंका यह गिरजा अब भी आगरेमें वर्त्तमान है। एक बार पादरियोंको ईसामसीहका ईश्वरत्व प्रतिपादन करते देखकर सभासद्‌गण बहुत विस्मित हुए। सम्राट्‌ने कहा,—"ईसाई लोग बाल्यकाल से ही ईसामसीहसे प्रेम करते हैं, इसीलिये वह उनके ऊपर ईश्वरत्व आरोप करते हैं। इसके लिये आप लोग विस्मित क्यों होते हैं ? इस हिन्दुस्तानमें सिद्धिमत संन्यासी को भी तो आप लोग अति पवित्र समझते हैं!" एक बार पादरी लोग ईसाई-धर्म्म और मौलवी लोग इसलाम-धर्म्मका समर्थन कर रहे थे। शेषमें एक पादरीने कहा,—"मैं बाइबिल लेकर अग्निमें प्रवेश करता हूँ, आप भी कुरान लेकर प्रवेश कीजिये। जो जलकर भस्मीभूत न हो, उसीका धर्म्म सत्य है।" मौलवी लोग यह सुनकर स्तम्भित होगये, तर्क-युद्ध रुक गया। शेषमें, पादरियोंने सम्राट्‌से ईसाई धर्म्म ग्रहण करनेका अनुरोध किया। सम्राट्‌ने कहा,—"मैं आपलोगोंका सम्मान करता हूँ, आपके धर्म्मके किसी-किसी अंशकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूँ; परन्तु मैं इस बातका विश्वास नहीं कर सकता हूँ, कि ईश्वरके एक पुत्र था और वह मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुआ था; मेरा विश्वास नहीं है, कि ईसामसीह परित्राणदाता

थे।" जब सम्राट्के मुखसे ये शब्द सुने तो पादरियोंको समझ में आया, कि सम्राट्को दीक्षित करना सम्भवपर नहीं है। इसके बाद वे प्रस्थान करनेके अभिलाषी हुए। सम्राट्ने उनको बहुतसा पुरस्कार प्रदान किया। परन्तु प्रधान पादरीने कुछ नहीं लिया और कहा,—"धर्म्मप्रचार मेरा जीवनव्रत, कर्त्तव्य-कर्म्म है।" हिन्दू-मुसल्मान धर्म्म-व्यवसायीगण उनके निःस्वार्थ भावको देखकर विस्मयमें डूब गये। सम्राट्-जननीकी सेवामें कुछ रूस देशकी रमणियाँ नियुक्त थीं। पादरीप्रवरने उनकी स्वाधीनताके लिये प्रार्थना की। सम्राट्ने अति सन्तोष से उनकी अभिलाषा पूर्ण की। इसके पीछे सम्राट्के बुलाने पर पादरी लोग फिर गोवासे लाहोर आये, वहाँ भी सम्राट्ने उनके लिये गिरजा बनवा दिया। सम्राट् ईसामसीहको परित्राता न मानकर भी, उनको एक असाधारण मनुष्य मानते थे, उनकी तस्वीरको सम्मान प्रदर्शन करते थे।

सम्राट्के धर्मालोचनागृहमें पारसी पुरोहित, बौद्ध पण्डित और महाप्राज्ञ ब्राह्मण लोग अपने-अपने धर्मोंका प्रचार करने लगे। उस समयके ब्राह्मणोंने मुसल्मान-सम्राट्को हिन्दूधर्म्म में दीक्षित करनेकी वासनासे जो चेष्टायें की थीं, वह निश्चय ही आजकल बड़े विस्मयकी बात है! निश्चय ही हमलोगोंके पूर्वपुरुष हमारी भाँति अनुदार नहीं थे। बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट् और व्यक्तियोंकी अपेक्षा ब्राह्मण और बौद्ध पण्डितों से अधिक साक्षात् और अधिक सहवास करते थे।" उन ब्राह्मणों

में महात्मा पुरुषोत्तम और देवीदास विशेष रूपसे उल्लेखयोग्य हैं। सम्राट् उनका अत्यन्त सम्मान करते थे। केवल दिनमेंही उनका उपदेश श्रवण करके तृप्त नहीं होते थे, वरं रजनीमें भी उनको अन्तःपुरमें लेजाते थे। नीरव और निस्तब्ध गृहमें, महिषीगणके साथ बैठकर, ब्राह्मणोंके मुखसे हिन्दू-धर्म्मतत्त्व सुनते थे। जिस द्वितलगृहमें सम्राट् महिषीगणके साथ बैठते थे, उस गृहके बाहरी भागमें, द्वारके नीचे, देवीदास बैठा करते थे। रस्सीसे उनकी चारपाई बाँधकर, ऊपर खींचकर द्वारसे बाँध दी जाती थी। देवीदास ॐ मन्त्रका उच्चारण करके, अति उदार हिन्दूधर्म्मका कीर्त्तन करते थे। सम्राट्को हिन्दू-धर्म्ममें दीक्षित करनेके लिये विविध युक्तियाँ प्रदर्शन करते थे। सम्राट् सुन-सुनकर पुलकित होते थे। उन्होंने एक पौत्रको शिक्षाका भार ब्राह्मणोंके हाथमें अर्पण किया था। हिन्दू-योगी सम्राट्को हिन्दूधर्म्ममें दीक्षित करनेके लिये दलके दल आने लगे और हिन्दू-धर्म्मका माहात्म्य प्रचार करने लगे। प्रतिवर्ष शिवचतुर्द्दशीकी रातको बहुतसे हिन्दू-योगी सम्राट्के पास इकट्ठे होकर धर्म्मालाप करते थे। वह लोग हिन्दू होनेपर भी यवन-सम्राट्के सत्यव्यवहारसे, और उससे भी अधिक उनके गुणोंके कारण, उनसे आन्तरिक प्रेम करते थे। उनके साथ एक जगह बैठकर खाना-पीना करते थे। बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट्ने आकृति देखकर प्रकृति निर्णय करनेकी जो क्षमता पाई थी, वह उन्हें हिन्दू-योगियोंने ही सिखायी थी।" वस्तुतः स-

म्राट् ने उसे बहुदर्शितासे प्राप्त किया था, किन्तु हिन्दू-योगी उनको बहुत चाहते थे—उनसे गाढ़ स्नेह रखते थे; इसीसे लोग ऐसा समझते थे, कि वह उन्हें हिन्दू-योगियोंसे प्राप्त हुई थी।

सम्राट् ने बहुतसे धर्म्मतत्त्वोंसे अवगत होकर, १५७८ ई० में "ईश्वरधर्म्म" नामक किञ्चित् परिवर्त्तित हिन्दू-धर्म्मका प्रथम प्रचार किया था। जो लोग बिना किसी दबावके यह धर्म्म ग्रहण करना चाहते थे, सम्राट् केवल उनको ही दीक्षित करते थे। वह लोग रविवारके दिन दोपहरको, शिर खोलकर पगड़ी हाथमें लेकर, सम्राट् के पास खड़े होते थे और सम्राट् के चरणोंमें मस्तक अवनत करते थे। सम्राट् उनको अपने हाथोंसे उठाकर उनकी पगड़ी उनके शिरोंपर रखते थे और ईश्वर-नामाङ्कित पदक प्रत्येकको प्रदान करते थे। अबुल-फ़ज़लने लिखा है,—"सम्राट् कहते थे, कि एक ईश्वरके सिवा अन्य कोई भी मनुष्यका प्रभु नहीं हो सकता है, इसीलिये वह शिष्योंको सेवक न कहकर चेला कहते थे। शेख़ मुबारक, अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, अज़ीज़-कोका और राजा बीरबल इत्यादिने यह धर्म्म ग्रहण किया था। ये नये धर्मावलम्बी अधिकांश शिक्षित व्यक्तिही थे। कोई दार्शनिक, कोई प्रधान सचिव, कोई कवि, कोई ऐतिहासिक, कोई साहित्यसेवक, कोई अध्यापक और कोई प्रधान सेनापति थे। वास्तवमें शिक्षित व्यक्तियोंके अतिरिक्त भारतके अभावको कौन समझ सकता है? राजनीतिक जातिकी आवश्यकताको कौन समझ सकता है?

अभाव पूर्ण करनेको कौन अग्रसर हो सकता है ? अबुलफ़ज़ल ने लिखा है, कि सभी सम्प्रदायोंके सहस्रों मनुष्योंने यह धर्म ग्रहण किया था। बदाऊनीने लिखा है,—"पाँच-छः वर्षोंके भीतर इसलामधर्मका चिह्नपर्य्यन्त विलुप्त होगया था, सब ही विषयोंने और की और मूर्त्ति धारण करली थी।" इससे प्रमाणित होता है कि, भारतवर्षसे इसलाम-धर्म एक प्रकारसे विदा ही हो गया था। बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट्ने अपने साम्राज्यके धर्मसंस्कारकी इच्छासे एक सभा बनवाई थी, उसमें बहुतसे हिन्दू-मुसल्मानोंको इकट्ठा किया था। सम्राट् किसीको बलपूर्व्वक इस धर्म्ममें दीक्षित नहीं करते थे। जबतक कोई अपनीही इच्छासे प्रार्थना न करता, तबतक वह उसे यह धर्म्म प्रदान नहीं करते थे। उन्होंने नूतन धर्म्म चलानेपर भी अपने मुखसे यह कभी नहीं कहा कि,—"मैं ईश्वर-प्रेरित हूँ, और मैं अभ्रान्त हूँ।" वरं वह सदैव कहा करते थे,—"मैं आप ही अन्धा हूँ, दूसरेको किस प्रकार परिचालित करूँगा ? निश्चय रूपसे कौन कह सकता है, कि मैं सत्यका अनुसरण करता हूँ ?" वह कहते थे,—"भारतके मङ्गलके लिये जो कुछ मैंने ठीक समझा है, वही तुमलोगोंके सामने रखता हूँ। तुम लोग उसको अखण्ड भारतका हितकर समझकर ग्रहण कर सकते हो।" बदाऊनीने लिखा है,—"किसी-किसी नीच-प्रकृति मनुष्यने सम्राट्को नया धर्म्म प्रचार करनेके लिये, तलवारका उपयोग करनेके लिये भी उत्साहित किया था।

परन्तु उनलोगोंकी बातको न मानकर सम्राट् केवल समय और सदुपदेश पर निर्भर रहे। यदि सम्राट् कुछ खर्च करते, तो बहुतसे अमीर-उमरा उस धर्मको रुपयेके लोभसे ग्रहण कर लेते। इसके बदले सम्राट्ने प्रचार कर दिया था कि,—"सब ही अपने-अपने विवेकके अनुसार चलनेके अधिकारी हैं, कोई अपने धर्ममतके लिये उत्पीड़ित न होगा। सबही अपनी इच्छाके अनुसार गिरजा, यहूदी-मन्दिर, अग्नि-मन्दिर अथवा हिन्दू देवालय बना सकते हैं। कोई उनके काममें बाधा नहीं डाल सकता है।" यूरोप जिस समय अनुदार धर्ममतको ग्रहण करके नररक्तसे कलङ्कित होरहा था, ईसाई-धर्मकी विभिन्न शाखायें परस्पर एक दूसरेको नष्ट करनेकी इच्छासे यूरोपको मनुष्य-शोणितसे रञ्जित कर रही थीं, उसी समय भारतमें ऐसी उदारता प्रचारित हुई थी, इस प्रकारकी उदारता प्रदर्शित हुई थी।

सम्राट् यदि हिन्दू-धर्म्मका समर्थन करते, तो मुसल्मान उसको ग्रहण न करते; यदि वह मुसल्मान-धर्म्मका समर्थन करते तो हिन्दू उसमें दीक्षित न होते। इसीसे उन्होंने हिन्दू-मुसल्मानके सम्मिलनके लिये ईसाई, मुसल्मान, बौद्ध और पारसी-धर्म्मसे किञ्चित् और हिन्दू-धर्म्मसे बहुतसा उपकरण संग्रह किया था। सब धर्म्मोंसे थोड़ा-थोड़ा ग्रहण करके, उसको हिन्दू-धर्म्मके मनोहर वेशसे सुसज्जित करके तय्यार किया था। उनका धर्म्म किञ्चित् परिवर्त्तित हिन्दू-धर्म्म मात्र था। हिन्दू-

प्रधान भारतवर्षमें उनकी यह नीति अत्यन्त प्रशंसनीय थी। इस नये धर्म्मने हिन्दू और मुसल्मानोंको, जातिके अभेदसे, गोदमें लेनेके लिये दोनों भुजायें फैला रक्खी थीं। इस धर्म्मने जातिभेदसे रहित करके भारतके समुदय अधिवासियोंको एक जातिमें परिणत करनेकी चेष्टा की थी। सम्राट् कहते थे,—"एकमात्र परमेश्वर ही सब मनुष्योंके प्रभु हैं। वह एक हैं, सर्व-शक्तिमान् हैं, सर्वत्र सदैव वर्त्तमान हैं और परम करुणामय हैं। चिन्ता द्वारा उनकी उपासना करना उचित है। मनुष्य-समाजकी दुःख-दुर्गति दूर करना और उसकी उन्नति साधन करना, ईश्वरकी पूजाका सर्वोत्कृष्ट उपाय है। दूसरेका अनिष्ट हो और मेरी श्रीवृद्धि हो, ऐसी प्रार्थना ईश्वरसे करना बहुत ही अनुचित है। मनुष्यका ज्ञान जबतक अपरिपक्व रहता है, तभीतक वह किसी विषयके लिये सुखसे और किसी विषयके लिये दुःखसे अधीर हो जाता है। जब उसकी ज्ञानदृष्टि उन्नतिलाभ करती है, तब वह किसीसे भी दुःख अथवा सुखका बोध नहीं करता है। हिन्दू-ललना-गण शिरके ऊपर जलकी कलसी, एकके ऊपर एक, रखकर सहचरियोंके साथ हास्य-परिहास करती-करती ऊँचे-नीचे पथको अतिवाहित करती हैं। मनुष्य यदि अपनी विभिन्न प्रवृत्तिके प्रति ऐसी ही समदर्शिता प्रदर्शन करके चल सके, तो उसकी विपद्की सम्भावना न रहे। ईश्वर और संसारके प्रति समदृष्टि प्रदर्शन करना, मनुष्यका एकान्त कर्त्तव्य है।

सम्राट् ईश्वरोपासनाके लिये प्रभात और मध्यरात्रिके समयको अच्छा कहते थे। बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट् किसी किसी दिन समस्त रजनी ईश्वर-चिन्तामें अतिवाहित करते थे। कितने ही दिन प्रभातके समय, प्रासादके पास, निर्जन स्थानमें, एक प्रस्तरखण्डके ऊपर अकेले बैठकर अपने शिरको झुकाये हुए, ईश्वर-चिन्ताका विमल सुख उपभोग करते रहते थे।" सम्राट् कहते थे,—"चिन्ताद्वारा ईश्वरकी उपासना करना कर्त्तव्य है। केवल निद्रितको जगानेके लिये ईश्वर-पूजाको बाहरी आयोजन प्रयोजनीय है; नहीं तो ईश्वर-स्तुति प्राणोंके भीतरसे निकलती है, बाह्य क्रियाकी कोई आवश्यकता नहीं होती है। यदि ईश्वर-पूजाके लिये प्रत्यक्ष वस्तुकी आवश्यकता हो, तो सूर्य्य, अग्नि और नक्षत्रोंको ग्रहण करना चाहिये!"

सम्राट्ने राजा बीरबलसे सूर्य्यकी आराधना करना सीखा था। बीरबल कहते थे,—"सूर्यके कारण ही मनुष्यके नित्य प्रयोजनीय फल और शस्यादि पकते हैं, विश्वको आलोक प्राप्त होता है, एवं मनुष्य जीवन धारण करता है।" सम्राट् ब्राह्मणोंकी भाँति प्रभातको, पूर्वकी ओर मुख करके खड़े-खड़े सूर्यकी आराधना करते थे, उसके नामको १००१ बार संस्कृतमें उच्चारण करते थे। एक ब्राह्मण नामोच्चारणमें उनकी सहायता करता था। वर्षके जिस दिन, दिन और रात बराबर होते हैं, उस दिनको उसी सूर्यकिरणसे सूर्यकान्तमणिके संयोग द्वारा अग्नि उत्पादन करके, एक स्वतन्त्र मन्दिरमें यत्नपूर्वक रक्खी

जाती थी। इस अग्निगृहके तत्त्वावधानका भार अबुलफ़ज़ल को दिया गया था। सन्ध्या होनेपर भृत्यगण उसी अग्निके संयोगसे बारह शुभ्र मोमबत्तियाँ जलाकर, मनोहर सुनहरी और रुपहली शमादानोंमें स्थापन करके, उनको सम्राट्‌के सामने रखते थे। सुललित गानेवाला उनमेंसे एक दीपकको हाथमें लेकर, मधुर स्वरसे ईश्वर-स्तोत्रका गान करता था। सम्राट्‌के राजत्वकालकी वृद्धिकी प्रार्थना करके गानका आरम्भ और शेष करता था। सम्राट्‌के रन्धन इत्यादि सभी कामोंके लिये, अग्नि इसी यत्नसे रक्खी हुई अग्निसे संगृहीत होती थी। सम्राट्‌ने अग्नि-पूजक पारसी, हिन्दू-संन्यासी और हिन्दू महिषीगणसे अग्निकी अर्चना सीखी थी। वह हिन्दुओंकी भाँति होम करते थे।

सम्राट् हिन्दुओंकी भाँति विश्वास करते थे, कि मृत्युके पीछे आत्मा एक शरीरसे अन्य शरीरमें जाता है। दूसरे कालमें पुरस्कार अथवा दण्डप्राप्तिका जो प्रवाद प्रचलित है, उसपर वह विश्वास नहीं करते थे।

बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट् अनेक हिन्दू आचार-व्यवहार करते थे। जिन कामोंसे हिन्दुओंके दुःखित होनेकी सम्भावना होती, उन कामोंको वह नहीं करते थे। इसके विपरीत वह उन कामोंको करते थे, जिनसे हिन्दू लोग उनके प्रति अनुरागी हों। सम्राट् दाढ़ी नहीं रखते थे और जो मुसल्मान दाढ़ी नहीं रखते थे उनके ऊपर बहुत प्रसन्न होते थे। इस कारण मुसल्मानों

में दाढ़ी मुँड़वानेकी रीति हो गई थी। वह हिन्दुओंकी भाँति हाथमें राखी बाँधते थे, ललाटपर चन्दनका तिलक लगाते थे। हिन्दू-रीतिके अनुसार वह शिरके मध्यभागमें मुण्डन कराकर, उसके दोनों ओर और पीछेकी तरफ़ केश रखते थे। दरबारमें भी उन्होंने अनेक हिन्दूरीतियाँ प्रचलित की थीं।"

अबुलफ़ज़लने लिखा है, कि सम्राट् ब्राह्मणोंकी भाँति दिनमें एक बार आहार करते थे। बदाऊनीने लिखा है,—"उन्होंने खाने और पीनेकी मात्रा घटा दी थी। लहसून, प्याज़ और गोमांस नहीं खाते थे।" सम्राट् मांसाहारकी अपेक्षा निरामिष भोजनको अच्छा समझते थे। वह कहा करते थे कि, "मनुष्यके उदरको जीवजन्तुका समाधिभवन नहीं बनाना चाहिये। मेरा शरीर यदि इतना बड़ा होता, कि मनुष्य एकमात्र मुझकोही खाकर और जीवोंको भक्षण करनेसे विरत हो सकते, तो कैसे सुखका विषय होता। अथवा मेरे शरीरका एक अंश काटकर मनुष्योंको खिलादेने पर, यदि वह अंश पुनः प्राप्त हो जाता तो भी मैं बड़ा प्रसन्न होता। मैं अपने एकही शरीर द्वारा मांसाहारियोंको तृप्त कर सकता।" सम्राट् रविवारको, चन्द्र और सूर्य-ग्रहणके दिन एवं और भी अन्यान्य अनेक समय कोई मांस नहीं खाते थे; रविवार तथा और भी कई दिनोंमें पशु-हत्याका सर्वसाधारणके लिये निषेध था।

सम्राट् बीच-बीचमें उपवास भी रखते थे, वह कहते थे,—

"बीच-बीचमें, उपवास रखना कर्त्तव्य है। इससे इन्द्री इत्यादि प्रशमित और आत्माकी उन्नति होती है।" बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट् दीर्घजीवन-लाभके लिये बौद्ध लामाओंका अनुकरण करके स्त्री-सहवास कम करते थे। अन्तःपुरमें बहुत थोड़े समयके लिये जाते थे।"

सम्राट् गङ्गाजलके अतिरिक्त और कुछ नहीं पीते थे। उनके रन्धनकार्यमें भी गङ्गाजल व्यवहृत होता था। दिल्ली और आगरेसे जाह्नवीके बहुत दूर होनेपर भी, गङ्गाजल बड़े यत्नसे मँगाया जाता था। उच्चकर्मचारीगण बड़े-बड़े पात्रोंको गङ्गाजलसे पूर्ण करके, उनके मुखपर सील-मुहर लगाकर लाते थे। जिस समय सम्राट् पञ्जाब इत्यादि दूर देशोंमें रहते थे, उस समय भी वहाँ गङ्गाजल पहुँचता था। गङ्गाजलका अभाव होनेपर उसमें और जल मिलाया जाता था। अबुल-फ़ज़लने लिखा है,—"गङ्गाजल मधुर, हलका और स्वास्थ्यकर होता है। यदि पात्रमें रक्खा जावे, तो वह बहुत वर्षों तक दूषित नहीं होता है।"

सम्राट्के आवासस्थलमें प्रतिदिन धूप और धूना सोने और चाँदीके पात्रोंमें जलाये जाते थे।

सम्राट् बीच-बीचमें महोत्सव भी सम्पन्न करते थे। कई दिनोंतक ये आमोदोत्सव होते रहते थे। उस समय बड़ा भारी मेला होता था। विविध विचित्र और मनोहर दृश्य सर्वसाधारणको दिखलाये जाते थे। सम्राट् उस समय एक बहुमूल्य मनोहर

पटमण्डपमें बैठते थे। उनमें रेशम और स्वर्णनिर्मित दरी बिछी रहती थी। मणिमुक्ता और स्वर्णसुशोभित, स्वर्णकारुकार्य-विखचित पर्दे पटमण्डपकी शोभा सम्पादन करते थे। सम्भ्रान्तगण भी अत्युत्कृष्ट शिविरोंमें रहते थे। सम्राट् उन-लोगोंमें परिच्छद और बहुमूल्य रत्न इत्यादि, उत्कृष्ट घोड़े और हाथी वितरण करते थे। इन उत्सवोंके दिनोंमें सम्राट् मनोहर वेशभूषा धारण करके सिंहासनपर बैठते थे। उनके पात्र-मित्र, अमात्य और सम्भ्रान्तगण बहुमूल्य पोशाकें पहन-पहनकर, मणिमुक्तासे खचित होकर उनके चारों ओर बैठते थे। आकाशकी नक्षत्रमालाकी भाँति, अत्युज्ज्वल मणि-मुक्ता उन लोगोंके शरीरोंपर जगमगाते थे। सैकड़ों उत्कृष्ट हाथी बहुमूल्य और सुन्दर वेशभूषासे अलंकृत और श्रेणीबद्ध होकर सुशृङ्खलासे चलते थे। उनमें सबसे आगेका हाथी मणिमुक्ता-खचित स्वर्णाभरणोंसे विभूषित रहता था। उसके पीछे अलंकृत अश्व-श्रेणी, पीछे सिंह, व्याघ्र, गेंड़ा इत्यादि श्रेणीबद्धभावसे चलते थे। सबके अन्तमें अश्वारोही सैनिक सुनहरी कामके वस्त्रोंसे अलंकृत असंख्य उद्दाम घोड़ोंपर आरोहण करके नाचते-नाचते श्रेणीबद्धभावसे जाते थे।

सम्राट् प्रतिवर्ष हिन्दुओंके तुलाव्रतका अनुष्ठान करते थे। अपनी तौलसे बारह गुना अधिक सोना, चाँदी, ताम्बा, लोहा, पारा, रेशम, सुगन्ध, दूध, घी, नमक, चाँवल इत्यादि बहुतसे द्रव्य ब्राह्मणों और दरिद्रोंमें वितरण करते थे। राजकुमारोंको

तुलवाकर भी उतना ही बहुविध द्रव्य प्रतिवर्ष वितरण करते थे। ऐसे उत्सवोंपर राज्यके प्रधान-प्रधान कवि सुन्दर-सुन्दर कवितायें रचना करके सम्राट्को उपहारमें देते थे। सम्राट् उनको गुणानुसार पुरस्कार देते थे। इसके अतिरिक्त सबही सम्प्रदायोंके मनुष्य अपने-अपने गुणोंके अनुसार पुरस्कार पाते थे। सम्राट् अकबरके अतिरिक्त किसी भी राजाने गुणको इतना उत्साह प्रदान नहीं किया। सम्राट् इस उत्सवके दिन बहुतसे अपराधियोंको छोड़ देते थे।

हिन्दू और मुसल्मान सम्राट्को ऋषिवत् मानते थे। उन को ईश्वरानुगृहीत, दैवशक्ति-सम्पन्न समझते थे। सबलोग विश्वास करते थे, कि वह परम धार्मिक और सिद्ध पुरुष हैं। सबलोग समझते थे, कि वह दैवशक्तिके प्रभावसे अजेय दुर्ग पर अधिकार करते हैं। कठिन पीड़ा शत्रुमण्डलमें प्रेरण करते हैं। सम्राट् जिस स्थानपर ठहरते थे, उसी स्थानपर सहस्रों मनुष्य इकट्ठे हो जाते थे। कितनेही रोगी जलके पात्र भर लाते थे, सम्राट् उनमें फूँक देदेते थे। उस जलको पीकर बहुतसे व्यक्ति कठिन पीड़ासे आरोग्य लाभ करते थे। सबलोग समझते थे, कि सम्राट् अभिलाष पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। इसीसे कितने ही मनुष्य कितने ही प्रकारकी कामना करके पुत्र-लाभ प्रभृति के लिये प्रार्थना करते थे। उनलोगोंकी कामनायें पूर्ण होती थीं और वह लोग भाँति-भाँतिके उपहार सम्राट्को प्रदान करके कृतार्थ होते थे।

सम्राट् जो हिन्दू और मुसल्मानोंको सम्मिलित करके, दोनों हीके मङ्गल-साधनके लिये अग्रसर हुए थे, भारतवर्षको महाशक्तिशाली करनेको सचेष्ट हुए थे, उसको अदूरदर्शी और अनुदार मौलवी लोग न समझ सके, स्वदेशहितैषिता द्वारा तनिक भी परिचालित न हुए। वह लोग सम्राट्की प्रतिकूलतामें प्रवृत्त होगये। उनके ऊपर तलवार उठाई। सम्राट्ने कुछ मौलवियोंको मक्काको निर्वासित कर दिया। बहुतसे मौलवी लोग विद्रोही होगये। जौनपुरके सर्वप्रधान मौलवीने घोषणा कर दी, कि सम्राट्के समान विधर्मीके विरुद्ध विद्रोही होना धर्मसङ्गत और ईश्वरानुमोदित है। बहुतसे मुसल्मान उनसे मिलकर भीषण विद्रोहानल फैलाने लगे। उस विद्रोहका परिणाम बङ्गालके अध्यायमें वर्णित हो चुका है। उस विद्रोहको देखकर सम्राट् भयभीत नहीं हुए; अखण्ड भारतके मङ्गलके लिये जो कर्त्तव्य समझा उसके अनुष्ठान करनेसे विरत नहीं हुए। सम्राट्ने जो कुछ कहा था, वह मानों अभी तक कानोंमें गूँज रहा है। उन्होंने कहा था,—"क्या तुम लोग निपतित रहोगे, हिंसा-विद्वेषको लेकर विच्छिन्नभावसे कालातिपात करोगे, या जगत्में महाशक्तिशाली जातिके रूपमें शिरको ऊपर उठाओगे? गौरवसे दिग्दिगन्तरको उद्भासित करोगे? यदि मनमें उच्चाभिलाष हो तो सर्व प्रकारका त्याग स्वीकार करके, विभिन्न धर्म और रीति-नीतिका सामञ्जस्य सम्पादन करके सम्मिलित हो जाओ। भारतकी विभिन्न

जातियो ! एक जातिमें परिणत हो जाओ, एक मन एक प्राण हो जाओ। भारतमें बहुधर्म और बहुजातियोंके रहनेसे सम्मिलनकी सम्भावना नहीं, भारतके उत्थानकी आशा नहीं।"

अनुदार बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट्ने जो इसलाम-धर्म परित्याग किया था, उसके कई कारण थे। नाना देशदेशान्तरोंसे नानाविध धर्म-सम्प्रदायभुक्त भाँति-भाँतिके मनीषीगण अवाध्यरूपसे राजदरबारमें आते थे। सम्राट् सबहीसे साक्षात् और आलाप करते थे। दिनरात सबलोगोंका और कोई काम नहीं था, केवल अनुसन्धान ही अनुसन्धान था। दर्शनशास्त्रका दुर्बोध तर्क, ईश्वरसे प्रत्यक्षभावसे धर्मकी उत्पत्ति, और इतिहास और विज्ञानकी सदैव आलोचना होती रहती थी। सम्राट् सभी आये हुए मनुष्योंसे तत्त्व संग्रह करते थे। उनमेंसे जो बातें उनको प्रीतिकर मालूम होती थीं, उनको वह ग्रहण कर लेते थे; जो अप्रीतिकर होती थीं, उनको परित्याग करदेते थे। इस प्रकार होते-होते उनकी धारणा हुई, कि सभी धर्मसम्प्रदायोंमें विज्ञ लोग विद्यमान हैं, सबही धर्मोंमें सत्य छिपा हुआ है, और यदि सब धर्मोंमें ही सत्य छिपा हुआ है तो अपेक्षाकृत आधुनिक और जो हज़ार वर्षका भी पुराना नहीं है उस इसलाम-धर्म्मको प्रधानता क्यों दीजावे ? सम्राट् अन्यान्य सम्प्रदायोंकी अपेक्षा बौद्ध संन्यासियों और ब्राह्मणोंसे निर्जनमें अधिक साक्षात् करते थे, उनके सहवासमें अधिक समय

अतिवाहित करते थे। वह लोग अपने धर्मग्रन्थ, धर्मतत्त्व और नीतिशास्त्रमें ऐसे पण्डित थे, उनकी भविष्यत् दृष्टि ऐसी हो गई थी, धर्मसम्बन्ध में इतने उन्नत होगये थे, मनुष्य-जीवनकी सम्पूर्णता इतनी लाभ कर ली थी, कि अन्य सम्प्रदायों के प्रधान-प्रधान मनुष्यों को वह अनायास ही अतिक्रम कर जाते थे। वह अपने मत की सत्यता के प्रमाण में और इसलाम-धर्म के दोष-प्रदर्शन में ऐसी युक्तियों की अवतारणा करते थे और ऐसे प्रमाण प्रदान करते थे, ऐसी दृढ़ता और दक्षता के साथ अपने मतका समर्थन करते थे, कि उनका मत स्वतःसिद्ध प्रतीत होता था, और चिन्ता करने का विषय कहा जाता था। इसका परिणाम यह होता था, कि कोई दूसरा व्यक्ति इन सब मतों को भ्रमसङ्कुल कहकर सम्राट् के मन में सन्देह का संचार न कर सकता था। पर्वत के चूर्ण हो जाने पर भी, आकाश के सहस्रों टुकड़े होजाने पर भी, सम्राट् के मन में सन्देह उदय नहीं होता था। इन्हीं सब कारणों से सम्राट् इसलामधर्म के बहुत से अंशोंमें अविश्वास करते थे, और दर-बार में यदि कोई मनुष्य हमारे सुपवित्र, गौरवान्वित और अनायास-साध्य धर्म की निन्दा करता था, तो वह सम्राट् की प्रसन्नता को प्राप्त करता था।" बदाऊनी ने ब्राह्मणों को ऐसी प्रशंसा की है और परिताप करके लिखा है,—"ये काफ़िर अपने असंख्य धर्मग्रन्थों के अपवित्र और निन्दनीय मत सम्राट् को सुनाते थे और उनके परिणाम में ऐसा दिन कोई

नहीं जाता था, जिस दिन इस विषवृक्षमें नये-नये विषफल न उत्पन्न होते हों।"

और बदाऊनीके समसामयिक महात्मा अबुलफ़ज़लने इस अभिनव वृक्षके उत्कृष्ट फलके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—"सब प्रकारके धर्मावलम्बी सम्राट्के पास आते थे। सब ही धर्मों के सत्य और उत्कृष्ट अंश प्रशंसित, समर्थित और गृहीत होते थे। किसी एक धर्ममें कोई अपकृष्ट अंश होनेसे, उसके कारण से उसका श्रेष्ठ अंश भी दूषणीय और वर्जनीय नहीं माना जाता था, सबही अपने-अपने विवेक और मतानुसार चलने की स्वाधीनता पाये हुए थे। नीच-प्रकृति मनुष्य सम्राट् के निःस्वार्थ और हितजनक सङ्कल्पको देखकर दुःख से म्रियमाण होते थे।"

सम्राट्ने काश्मीरमें सर्व प्रकार के धर्मावलम्बियोंके लिये एक साधारण धर्ममन्दिर बनवाया था। अबुलफ़ज़लने एक कविता लिखकर उस मन्दिर पर अङ्कित करदी थी। इस कवितासे उन दोनोंहीके धर्मतत्त्वका पता चलता है। उसका मर्म इस प्रकार है:—

"पिता परमेश्वर! देवालयमें जाऊँ, मसजिद में जाऊँ, और गिर्जेमें जाऊँ, देखता हूँ, सभी तुम्हारा ही अनुसन्धान करते हैं, सारी भाषायें तुम्हारा ही स्तुतिगान करती हैं। हिन्दू और मुसल्मान दोनोंही धर्म तुम्हारे लिये व्याकुल हैं, दोनोंही धर्म एक-कण्ठसे कहते हैं, कि तुम 'एकमेवाद्वितीयम्' हो। मसजिदमें

भक्तगण नाति उच्चस्वरसे तुम्हारे पवित्र नामका उच्चारण करते हैं, खीष्टमन्दिर में साधक मधुर मङ्गल घण्टाध्वनि से तुम्हारे प्रेमका कीर्त्तन करते हैं। मैं मसजिद में भी जाया करता हूँ, खीष्टमन्दिरमें भी जाया करता हूँ, किन्तु मैं सर्वत्र तुम्हारी ही खोजमें रहता हूँ। जिसने तुमको जान लिया है, तुम्हारा मर्म समझ लिया है, उसके निकट हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही धर्म बराबर हैं, वह सबही धर्मों से सत्यका संग्रह करता है। इत्रका व्यवसायी जिस प्रकार गुलाबका मर्म समझता है, उसी प्रकार वह व्यक्ति तुम्हारा मर्म समझता है। सम्राट् के आदेश से, भारतवर्ष के एकेश्वरवादी धर्मावलम्बियों के सम्मिलन के लिये और विशेषकर काश्मीर के ईश्वरोपासकों के निमित्त यह पवित्र मन्दिर बनवाया गया है। जो कोई धर्मावलम्बी इस मन्दिर को नष्ट करेगा, वह अपनेही धर्म-मन्दिर को ध्वंस करेगा। सबही यदि अपने-अपने विवेकके अनुसार चलें, तो किसीसे किसीका विवाद न हो। बाहरी वस्तुके लक्ष्य करनेही से अनर्थ उत्पादित होता है। हे न्यायवान् परमेश्वर! तुम उद्देश्य देखकर कार्यका विचार करते हो, तुम अवगत हो कि किसका उद्देश्य क्या है, तुमही सम्राट्के हृदयमें महदुद्देश्य प्रेरण करते रहते हो।"

अबुलफ़ज़ल-विरचित निम्नलिखित ईश्वर-स्तोत्र कैसा सुन्दर है! "प्रभु परमेश्वर, तुम्हारा तत्त्व, तुम्हारा रहस्य सदैव प्रच्छन्न रहेगा। तुम सर्व गुणोंके आधार हो, तुम सम्पूर्ण हो। तुम्हारा

आदि नहीं है, अन्त नहीं है। तुम्हारे इस विशाल विश्वराज्य का भी प्रारम्भ नहीं हैं, शेष नहीं है। वाक्य तुम्हारी महिमा प्रचार करनेमें असमर्थ है। रसना उसको कीर्त्तन करके शेष करने में अशक्त है, मेरे पद-द्वय भी शक्तिहीन हैं। प्रभु, इस अनन्त व्यवधानको अतिक्रम करके किस प्रकार तुम्हारे पास आसकूँगा? मेरी चिन्ता भी तुम्हारी धारणा नहीं कर सकती है! केवल चित्त एक ध्यानानन्दमें मग्न रह कर तुम्हारे सत्वको उपलब्धि कर सकता है। इसमें ही तुम्हारी विचित्र महिमा प्रकाशित होती है।"

महान् परमेश्वर! हतभाग्य भारत के प्रति प्रसन्न हो, प्रसन्न हो।

बीसवाँ अध्याय ।

समाजनीति ।

In a religion which forbids the re-marriage of the widow the hardship is grave. —**Akbar.**

रजनी गभीर है, आकाश मेघाच्छन्न है, चारों ओर अन्धकार है। ऐसे समय में सामाजिक नियम-सकल महासमुद्रों की अन्धेरी और उत्ताल तरङ्गों की भाँति चारों ओर से उद्वेलित होकर और भी आतङ्कित कर रहे हैं। भारत के विभिन्न जातीय पोत सब के सम्मिलित होने में बाधा डाल रहे हैं; यूरोप, अमेरिका और जापान से ज्ञान-रत्न आहरण करने में, आत्मोन्नति के उपाय सीखने में बाधा डाल रहे हैं; मङ्गल-पथ पर धावित होनेमें प्रतिकूलता कर रहे हैं।

ये सब सामाजिक नियम कहाँ से आये? किसने इनकी सृष्टि की? किस उद्देश्यसे इनकी सृष्टि हुई? मनुष्यने इनको

बनाया है, प्रत्येक जातिने अपने मङ्गल के लिये इनका गठन किया है। मनुष्य इन सब का प्रणेता है, मनुष्यका मङ्गल-साधनही इन सबका एकमात्र लक्ष्य है। भारतके असंख्य सामाजिक नियम, अगणित रीति-नीति वर्त्तमान अवस्थामें क्या उसके लिये मङ्गलप्रद हैं ?

जिस देशमें बहुत सी जातियोंका वास है, प्रत्येक जातिकी रीति-नीति और सामाजिक नियम विभिन्न हैं; जिसकी प्रत्येक जाति अपनी रीति-नीति को, सामाजिक नियमको, सर्वोत्कृष्ट समझती है, और दूसरी सब जातियों से घृणा करती है; सर्व प्रयत्नोंसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करती है; सब रीति-नीति और सामाजिक नियमों का सामञ्जस्य सम्पादन करके, सम्मिलित होकर शक्ति सङ्गठन करनेको अगौरवका काम समझती है, वह देश यदि एक दिन अति उन्नत भी होवे, तोभी उसका पतन अवश्यम्भावी है। जिस देशमें बहुत सी जातियोंकी बस्ती है, और जिसकी प्रत्येक जाति त्यागको स्वीकार करके सम्मिलित होनेको लालायित है, वह एक दिन अति अवनत होने पर भी, अति अवज्ञाका विषयीभूत होनेपर भी, शीघ्रही अति उन्नत देशको भी अतिक्रम करेगा, इसमें सन्देह नहीं है। पहले का दृष्टान्त हतभागिनी भारतभूमि है, दूसरेका गरीयसी ग्रेट-ब्रिटन है। वहाँ की आदिम निवासिनी पिक्टस, स्कॉट्स, वेल्स प्रभृति जातियाँ हैं। ये सब जातियाँ विभिन्न समयमें केल्ट्स, रोमन्स, जुट्स, सैक्सन्स, एङ्गिल्स, डेन्स, नारमेन्स प्रभृति विभिन्न

जातियोंसे उपर्य्युपरि पराजित हुई हैं, और इन सब विभिन्न जातियोंके सम्मिलित होने से ही महापराक्रमशाली वर्त्तमान अँगरेज़ जातिका गठन हुआ है। यदि वह लोग पार्थक्य-रक्षा को गौरवका विषय समझते, तो आज पृथ्वीमय आधिपत्य स्थापन करने में समर्थ न होते, वरं दूसरों के पैरों के नीचे विमर्द्दित होते।

वे ही प्रकृत स्वदेषहितैषी हैं, जिनके सब काम स्वदेश के मङ्गल-साधन की इच्छा द्वारा ही परिचालित होते हैं। अकबर इसी श्रेणी के स्वदेशहितैषी थे। वह परिताप करके कहते थे,—"भारत में इतनी विभिन्न जातियोंको देखकर मेरे हृदय में शान्ति नहीं है।" वह विद्वेष-भावापन्न हिन्दू और मुसल्मान जातिको सम्मिलित करके,एक जातिमें परिणत करके, भारतवर्ष को महाशक्तिशाली बनाने की इच्छा से, दोनों जातियों के समाज-संस्कार में प्रवृत्त हुए थे। वह सदैव कहा करते थे,—"मनुष्य को सदैव युक्ति द्वारा चलना चाहिये,किसी विषय में युक्ति की उपेक्षा न करनी चाहिये।" वह युक्ति के अनुसार अखण्ड भारत के मङ्गल के लिये, हिन्दू-मुसल्मानों के सम्मिलनके लिये, कार्य्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। उनका सङ्कल्प साधित नहीं हुआ, इसी कारण हमलोग उनके गुरुत्वको उपलब्ध करने में असमर्थ हैं। गुरु गोविन्दसिंह का सङ्कल्प साधित होगया था, इसीसे वह समग्र भारत में आज सहस्र कण्ठ से प्रशंसित हैं।

सम्राट् हिन्दू-मुसल्मानों को सम्मिलित करने की इच्छा से दोनों को विवाह-सूत्रमें बाँधने के लिये अग्रसर हुए थे। उन्होंने सोचा था, कि उच्च श्रेणीमें यह प्रथा चलजाने पर निम्न श्रेणी भी उनके अनुसरणको व्यग्र होगी। शीघ्रही अति अभिलषित हिन्दू-मुसल्मान-सम्मिलन सम्भव-पर हो जायगा। यह सोचकर ही उन्होंने अम्बरराज बिहारीमल से उनकी तनया के पाणिग्रहण की प्रार्थना की थी। यदि वह रमणीरूपपर मुग्ध होकर इस नीतिका अनुसरण करते, तो कल्पनामयी रूपमाधुरीकी लीलाभूमि काश्मीर ही उनको सबसे पहले आकृष्ट करती। सम्राट् के इस विवाह का परिणाम कुमार सलीम या सम्राट् जहाँगीर थे।

जोधपुराधिपति महाराजा उदयसिंह, राजस्थानमें, चित्तौड़ के महाराणा के दूसरे नम्बर पर प्रबल नरपति थे। वह सम्राट् से प्रतियोगिता करने में असमर्थ होने के कारण बहुत दिन पहले ही वश्यता स्वीकार कर चुके थे, जोधपुर राज्य विस्तृत मुग़ल-साम्राज्य के अधीन होगया था। सम्राट् ने इस समय उनकी कन्या के साथ कुमार सलीम का विवाह करने का प्रस्ताव प्रेरण किया। गौरवान्वित हिन्दू राजाने अगौरवान्वित यवन-भूपति का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। सम्राट् बाहुबलसे अपनी अभिलाष पूर्ण करने को सर्वथा समर्थ थे। परन्तु उस उपायके अवलम्बन करनेसे उनका लक्ष्य पूर्ण नहीं होता; हिन्दू-मुसल्मानों में सम्मिलन-सौहार्द स्थापित नहीं होता।

इसी कारण वह विपुल क्षति स्वीकार करके, हिन्दू-मुसल्मानों के सम्मिलन-साधनको अग्रसर हुए। सम्राट् ने जोधपुर के राजा को उस समय के २० लाख रुपये की आय के चार सुविस्तृत प्रदेश प्रदान किये। महाराज उदयसिंह ने उस समय अति-आनन्द से अपनी तनयाके साथ कुमार सलीमका शुभ विवाह सम्पन्न करना गौरव का विषय समझा। सम्राट् के इस क्षति-स्वीकार और उनके महत् अन्तःकरण और उच्चलक्ष्यके निदर्शन और सम्मिलन का परिणाम सम्राट् शाहजहाँ थे।

इसके अतिरिक्त अम्बरदेशाधिपति राजा भगवानदास, बीकानेर के राजा रायसिंह, उनके भतीजे राजा केशवदास, राजा मानसिंह के पुत्र राजा जगत्सिंह, जैसलमेर के राजा रावलभीम, बुन्देलखण्ड के राजा रामचन्द्र बघेला ने आनन्द से अपनी-अपनी तनयाओं के विवाह कुमार सलीम से किये थे।

मुसल्मान लोग यदि भिन्न-धर्मावलम्बिनी रमणी से विवाह करना चाहते हैं, तो क़ुरानके अनुशासनके अनुसार, विवाहके पहले, उसको इसलामधर्म में दीक्षित करलेते हैं। सम्राट्ने देखा कि ऐसा करनेसे हिन्दू लोग विवाह करनेमें अग्रसर नहीं होंगे; इसी कारणसे उन्होंने उस नियममें परिवर्त्तन किया। हिन्दू-ललनागण हिन्दू-रीतिके अनुसार मुसल्मानों से विवाहित होने लगीं। राजा भगवानदास की तनया के साथ कुमार सलीम का विवाह किस प्रकारसे सम्पन्न हुआ था, उसको हम

बदाजनी के इतिहास से उद्धृत करते हैं । "सम्राट्ने हिन्दुओं के साथ विवाह-सूत्रमें आबद्ध होने के लिये जो रीति प्रवर्त्तित की थी, उसके अनुसार उन्होंने राजा भगवानदास की लड़की के साथ सलीम का विवाह किया था। सम्राट् स्वयं राजा के घर पर गये और हिन्दू एवं मुसल्मान सम्भ्रान्त मनुष्यों के सामने विवाह सम्पन्न किया। हिन्दुओंके विवाहमें जो क्रिया-कलाप सम्पन्न होते हैं, इस विवाह में भी वह सब अनुष्ठित हुए थे। अग्नि-प्रज्वलन प्रभृति सारे ही कार्य्य सम्पादित हुए थे। सम्राट् ने दो करोड़ रुपये दहेज़ में दिये। राजा भगवानदास ने बहुविध रत्न, रत्नमण्डित सर्वप्रकारके स्वर्णपात्र, विविध स्वर्ण और रौप्यपात्र, अपरिमेय सब प्रकार के वसनभूषण, सौ हाथी, बहुसंख्यक घोड़े, भारतवर्ष और एबीसीनिया प्रभृति देशोंके बहुतसे बालक-बालिका (दास-दासी) दहेज़में दिये। इस विवाह में जो हिन्दू-मुसल्मान सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे, राजा भगवानदासने उनमें से प्रत्येक को, उनकी पदमर्यादा के अनुसार, सुनहरी ज़ीनसे सुशोभित फ़ारस, तुर्की और अरब देश के घोड़े प्रदान किये। जिस समय राजबाला को पितृ-गृह से सम्राट् के प्रासाद में ले जारहे थे, उस समय समुदय पथ में उसकी पालकी के ऊपर से स्वर्ण लुटानेका सम्राट् ने आदेश दिया था। इतना स्वर्ण और रत्न फेंके गये थे, कि लोग उनको उठाते-उठाते थक गये थे।"

हिन्दू ललनाओं ने विवाहोपरान्त सम्राट् के प्रासाद में

जाकर भी, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-रीति-नीति आजीवन पालन की। वह वहांपर होम करती थीं, उन्होंने ही सम्राट् को होम करना सिखलाया था। फ़तेहपुर-सीकरी में, अकबर की महिषी जोधाबाई का भवन रुद्राक्षमालाओंसे सज्जित हिन्दुओंकी भाँति हिन्दू-चिह्न धारण किये हुए, हिन्दूके मनमें आनन्द उद्दीप्त करता है। हिन्दू-ललनाओंके इसलामधर्म ग्रहण न करने पर भी, उनके गर्भजात पुत्र दिल्लीके सिंहासन पर बैठे थे। सम्राट् जहाँगीर ने इन्हीं जोधाबाईके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। मुसल्मान ऐतिहासिकोंने लिखा है,—"जोधाबाई हिन्दू होने पर भी ईश्वर की दया को प्राप्त होगी; क्योंकि सम्राट् जहाँगीरने भारतमें पुनः मुसल्मानधर्म की प्रतिष्ठा की थी। उनकी जननी हिन्दू होने पर भी नरकमें जाने योग्य नहीं है।" जोधाबाई विवाह होने पर इसलामधर्म ग्रहण करलेती, तो उसके लिये ऐसी प्रार्थना की आवश्यकता न होती।

सम्राटोंमें एकमात्र अकबरने ही हिन्दू-मुसल्मानोंके इस प्रकार शुभ सम्मिलन की चेष्टा की थी। वे अपने आत्मीयगणों का भी हिन्दू-राजाओंके साथ विवाह करने लगे। इससे कोई विस्मित न होवे। मगधाधिपति हिन्दू-महाराज चन्द्रगुप्तने ग्रीक सेलूकस की कन्या का पाणिग्रहण किया था। फ़ारस देशके यवन अधिपतिके सिंहासन से विताड़ित होकर भारत आने पर, कन्नौजके हिन्दूराजाने अपनी तनयासे उनका विवाह किया था। भारतके हिन्दू-

नरपति यवन-ललनाओं को उपहारमें पाकर परम परितुष्ट होते थे। यवन-ललनाओंके हिन्दू-नरपतिगण की पार्श्वचर होने का विवरण संस्कृत नाटकोंमें भी मिलता है। पहले हिन्दू ऐसे अनुदार नहीं थे, विभिन्न जाति की कन्या ग्रहण करनेसे उनकी जाति नहीं जाती थी। पहले उच्चवर्णवाला नीचे वर्णवालेसे विवाह करता था। इसके अतिरिक्त, अशोकके पिताने ब्राह्मणललनासे पाणिग्रहण किया था और उसीके गर्भसे भारतगौरव अशोकने जन्मग्रहण किया था। बङ्गेश्वर विग्रहपालने राजपूत-कन्यासे विवाह किया था। महा-राजा विक्रमादित्यने भीलबाला और बङ्गाल की राजकुमारीसे विवाह किया था। काश्मीर-राजने बङ्गदेश की राजकुमारीसे विवाह किया था। राजा मानसिंहने कुचविहारके राजा लक्ष्मीनारायण की भगिनीसे विवाह किया था। पाठक! उन युगोंमें ही भारतके गौरवके दिन थे, या आजकल गौरव के दिन हैं? इसकी चिन्ता कौन करे?

इसमें सन्देह नहीं है, कि सम्राट् की हिन्दू-मुसल्मानों की सम्मिलनचेष्टा अत्यन्त बलवती होगई थी। उनके समयमें, कितने हिन्दू-मुसल्मान परस्पर विवाहसूत्रमें आबद्ध हुए थे, इसके निर्णय करने का अब उपाय नहीं है। तोभी यह बात प्रमाणित है, कि सम्राट् और कुमारगणके अतिरिक्त सम्राट्के सर्वप्रधान अमात्य और प्रियतम बन्धु अबुलफ़ज़लने हिन्दूललना का पाणिग्रहण किया था। और एक मुसल्मान

मन्सबदारने एक ब्राह्मण-कन्यासे विवाह किया था। इसके अति-रिक्त बहुतसे हिन्दुओंने मुसल्मानोंके साथ अपनी कन्याओंका और बहुतसे मुसल्मानोंने हिन्दूओंके साथ अपनी कन्याओं का विवाह किया था। जहाँगीर की जीवनी में लिखा है, कि मुसल्मानों को अपनी कन्याओं को हिन्दूलोगों को देते देखकर उन्होंने आदेश प्रचार किया था, कि मुसल्मान होकर हिन्दूको कन्या-दान देना अत्यन्त घृणा का विषय है और भविष्यत्‌में यदि कोई मुसल्मान अपनी कन्या हिन्दूको देगा, तो उसको प्राणदण्ड होगा। इस समय भी बिहार, उत्तर-पश्चिम और पञ्जाबमें हिन्दू मुसल्मानोंके साथ एक आसन पर बैठ कर पान खाते और पानी भरा हुआ हुक्का पीते हैं; एकही घरमें रहकर रन्धन और भोजन करते हैं। लाला प्रभृति अनेक हिन्दुओंने कोई-कोई मुसल्मानी रीति ग्रहण कर रक्खी हैं। हिन्दू मुसल्मानोंके मुहर्रमोंमें योगदान करते हैं; प्रसिद्ध मुसल्मान फ़क़ीर की समाधि पर जाकर कितने ही विषयों के लिये प्रार्थना करते हैं। बङ्गाल देशमें भी हिन्दू लोग पाँचपीर, ग़ाज़ी और मुश्किल-आसान प्रभृति की अर्चना करते हैं। कितने ही मुसल्मान काशीके दशाश्वमेध घाट पर, शीतलादेवी के मन्दिरमें मुर्गे चढ़ाते हैं; हिन्दुओं की लक्ष्मी की पूजा करते हैं; हिन्दुओंके होलीके उत्सवमें आनन्दसे योगदान करते हैं। कितने ही मुसल्मानोंने कितनी ही हिन्दुओं की रीति ग्रहण कर रक्खी हैं। बहुत नज़दीक की रिश्तेदारीमें विवाह-सम्बन्ध

करना छोड़ दिया है। पुत्रके होने पर स्त्री और कन्या सम्पत्ति से वञ्चित होते हैं। भारतके कितने ही मुसल्मान राधाकृष्णके प्रेम-गीत बड़े प्रेमसे गाते हैं। जो लोग राधा-कृष्णको विताड़ित करना चाहते हैं, उनको जनसाधारणके ऊपर उनका प्रभाव कैसा है, यह ज्ञात नहीं है, परन्तु भारत का आधा साहित्य विनष्ट करना चाहते हैं।

हमलोग इस बातको नित्य प्रत्यक्ष देखते हैं, कि तरुणीगण अल्प वयसमें ही जननी होकर, यौवनमें ही जराग्रस्त होजाती हैं; यौवन की सीमा अतिक्रम न करने पर भी वृद्धाओं की भाँति शक्तिशालिनी नहीं होती हैं, कार्यक्षम नहीं होती हैं; अल्प वयस में जितने बच्चे जनती हैं, उनमेंसे अधिकांश शैशवकाल में ही मर जाते हैं। जो जीवित रहते हैं, वह सबल नहीं होते हैं, दीर्घायु नहीं होते हैं। यह दुरवस्था क्यों है? बाल्य-कालमें गाँव-गाँवमें जैसे दीर्घकाय और बलवान् व्यक्ति देखे हैं, अब वैसे देखने को नहीं मिलते हैं। उन्हीं बलवानों के वंशधरोंने इस समय बालखिल्य-रूप धारण किये हैं। यह परिवर्त्तन क्यों हुआ है? क्यों मेलेरिया होता है? जिस वंश में कभी मेलेरिया नहीं हुआ, जहाँ कभी मेलेरिया नहीं पहुँचा, वहाँ भी ऐसी दुर्दशा है! वहाँ भी यही खर्वाकार लिलीपुट मूर्त्तियाँ हैं! वस्तुतः बाल्यविवाह ही इसका प्रधान कारण है। यदि सन्देह हो तो जो लोग शरीरविद्यामें जीवन अतिवाहित करते हैं, इस विषय का तत्त्वानुसन्धान करना ही

जिनका जीवनव्रत है, उन लोगोंसे पूछो। किसी नापितसे न पूछना। लम्बी चोंचवाला छोटासा पक्षीविशेष पङ्कज के पास रहने होसे क्या उसका मर्म समझता है? और तुम क्या नहीं समझते हो? कितने यत्नसे, कितने व्ययसे, दूरदेश से आमकी कलम लाकर गृहद्वार पर रोपण की है, प्रतिदिन जल से सींचते हो, यत्नसे रखते हो, खाद डालते हो। गृहिणी कहती हैं,—"इतना यत्न होता है, न जाने आम कब लगेंगे?" पुत्र कहता है,—"बाबा आम कब खायँगे?" यदि उसी शौकके वृक्षमें बौर आता है, तो स्त्रीके मुखमें हँसी नहीं रुकती है, बालक के हृदयमें आनन्द की अवधि नहीं रहती है। परन्तु तुम उस हँसी, उस आनन्दसे विचलित नहीं होते हो। इतना यत्न, इतना परिश्रम सार्थक हुआ है, इस बात को ध्यानमें न लाकर अति निष्ठुरता से उस बौर को तोड़ डालते हो। छोटे पेड़ में फल लगने नहीं देते हो। यह क्यों? हाय, तुम्हारी दृष्टि बाहर ही है, भीतर दृष्टिहीन हो!

तुम कहोगी, बाल्यविवाह में उपकारिता है। परन्तु कर्त्तव्य वही है, जिससे पतित देशके मनुष्य बलवान् और दीर्घायु हों। प्रत्येक मनुष्यके शरीर और शक्ति पर ही जातीय मङ्गल निर्भर है। बाल्यविवाह के दोषों का कीर्त्तन करना, पश्चिमी शिक्षा के विकृत सिद्धान्त का फल नहीं है। अनन्तर अकबर भी इसी सिद्धान्तपर पहुँचे थे। हिन्दू लोग कहते हैं,—"पुत्रार्थे क्रियते भार्या।" सम्राट् भी यही कहते थे,—"जब विवाहका उद्देश्य

पुत्रोत्पादन है, और पुत्रके स्वास्थ्यके ऊपर जातीय शक्ति निर्भर है; तो जिस से पुत्र बलवान् होवे, वही करना परम कर्त्तव्य है। बाल्यविवाहसे उत्पन्न सन्तान क्षीणसे क्षीणतर होती है। बाल्यविवाह की बुराई विवाह हो चुकने पर दम्पति युगल के ऊपर भी लक्षित होती है।" इसीलिये सम्राट् ने यह आदेश प्रचार किया था, कि कोई बालक का विवाह सोलह वर्ष और बालिका का विवाह चौदह वर्षसे पहले न कर सकेगा।

बाल्यविवाहके निवारणके लिये सम्राट्ने आदेश दिया था, कि विवाह से पहले कोतवाल को पुत्र-कन्या को दिखलाकर, विवाह स्थिर करना चाहिये। कोतवाल लोग बालक-बालिकाओं को देखकर, उनकी वयस निर्णय करते थे और उसको लिख लेते थे। उपयुक्त वयस होने पर विवाह की अनुमति देते थे। इससे प्रमाणित होता है, कि बाल्यविवाह की चाल को बन्द करनेके लिये सम्राट् दृढ़प्रतिज्ञ होगये थे। तीन सौ वर्षसे भी अधिक पहले, भारत की स्वाधीनता के समय, यदि बाल्यविवाह के बन्द करने की आवश्यकता हुई थी, तो वर्त्तमान समयमें तो उस की सहस्रगुण वृद्धि हुई है। भारत की वर्त्तमान दुरवस्थामें, प्रति वर्ष सहस्रों युवक यदि विदेश को न जावें तो भारत का निस्तार नहीं है। बाल्यकालमें, स्त्री-पुत्रों के स्नेह-पिञ्जर में हिन्दूके सुकोमल हृदय को आबद्ध करके, उससे ऐसे स्वार्थत्याग की आशा करना विड़म्बनामात्र

है । केवल इतना ही नहीं ; देखते हैं कि शिक्षितगण लाञ्छित और अपमानित होने पर भी आफ़िस की किरानीगीरी को छोड़ नहीं सकते हैं ; विवेक को बलिदान करके, सम्मान-ज्ञान-विहीन होकर, देशके स्वार्थ को विनष्ट करके, चाकरी की रक्षा करते हैं; और साहिब लोग उन असार अपदार्थ मूर्त्तियों को देखकर कितना उपहास करते हैं, क्या इसके मूलमें भी बाल्यविवाहजनित बहुपरिवार ही नहीं है ? यदि वह लोग अपने यौवनमें बहुपरिवारसे घिरे हुए न होते, अर्थके अभाव से व्याकुल न होते ; तो निश्चय ही स्वाधीनता और सम्मान-ज्ञान प्रदर्शन कर सकते, भारत को मङ्गल-कामना से कितने नये-नये पथों पर धावित होते और भारत का मुख भी उज्ज्वल करनेमें समर्थ होते ।

इस देश में, वर्णित समयमें पात्र और पात्री परस्पर एक दूसरे को न देखकर ही विवाह-सूत्रमें आबद्ध हो जाते थे । हिन्दू और मुसल्मान पात्र और पात्री कुछ भी अपना मत प्रकाशित नहीं कर सकते थे । जिससे पात्र और पात्री एक दूसरे को देखकर और मुग्ध होकर विवाह-सूत्रमें आबद्ध हों, इसके लिये सम्राट् ने यह आदेश प्रचार किया था, कि प्रत्येक विवाह में जिस प्रकार जनक और जननी को अनुमति आवश्यक है, उसी प्रकार पात्र और पात्री की सम्मति बिना भी विवाह सम्पन्न न हो सकेगा ।

सम्राट्ने पुरुषोंके स्वास्थ्यके प्रति लक्ष्य करके आज्ञा

प्रचार की थी, कि वृद्धा स्त्री युवक पति ग्रहण नहीं कर सकेगी। मुसल्मान-समाजमें यह प्रथा प्रचलित थी।

उस समय हिन्दू और मुसल्मान बहुतसी स्त्रियाँ रखते थे। उस युगमें बहुतसी स्त्रियों का पाणिग्रहण करना भारतमें निन्दनीय नहीं समझा जाता था। सम्राट्ने राजनीतिके अनुरोधसे बहुतसी भार्याएँ ग्रहण की थीं, कुमार सलीमके भी बहुतसे विवाह किये थे; परन्तु सर्वसाधारणके लिये इस प्रथा का निषेध कर दिया था। वह सदैव कहा करते थे,—"जो मनुष्य एकसे अधिक रमणी का पाणिग्रहण करता है, वह अपना सर्वनाश अपने हाथों करता है। यदि स्त्री बन्ध्या हो, तो दूसरा विवाह किया जासकता है।"

मुसल्मान निकट की आत्मीयासे विवाह कर लेते हैं, सम्राट्ने हिन्दूरीतिके पक्षपाती होकर आदेश दे दिया था, कि यह प्रथा निन्दनीय है, भविष्यत्में मुसल्मान ऐसे विवाह न कर सकेंगे।

अधिक परिमाणमें दहेज़ देने की प्रथा को भी सम्राट्ने अति गर्हित बतलाया था। इस समय अनेक महात्मा इस दहेज़के परिमाण को कम करने की चेष्टा कर रहे हैं। बाज़ारमें अच्छे मालके खरीदनेवाले बहुत हों, परन्तु अच्छे मालका परिमाण बहुत कम हो; ऐसे मौक़े पर ख़रीदार ही खींचा-खींची करके माल का मूल्य बढ़ाकर उसको ले लेंगे। वर्त्तमान अवस्थामें राढ़ीय और बारेन्द्रमें जो श्रेणी-विभाग

है उसको रहित करके, जबतक विवाह-क्षेत्र प्रशस्त न किया जायगा, पात्रों की संख्या बढ़ाई न जायगी, तबतक विवाहके व्ययमें कमी होने की सम्भावना नहीं।

जो लोग आजीवन नगर की प्राचीरके भीतर बैठे हुए केवल ज्ञानान्वेषणमें जीवन अतिवाहित करते रहते हैं, दूरके गाँवोंमें कैसे-कैसे दृश्य अभिनीत हो रहे हैं उनको नहीं देखते हैं, उनकी ख़बर नहीं रखते हैं, केवल वही लोग विधवा-विवाहके विरोधी हो सकते हैं। जिनके आँखें हैं, वह देख सकते हैं; जिनके हृदय वर्त्तमान है, वह समझ सकते हैं; जो देश की अवस्थासे अवगत हैं, वही हमारे साथ समस्वरसे कहेंगे, कि हिन्दू-समाजमें विधवाओंके तुल्य अभागिनी और दुःखिनी कोई नहीं है। इस देश में ऐसे भी दिन थे, जब विधवाओंके सारे आत्मीय उनके पेट भरने का भार अपने ऊपर ले लेते थे; उनको महासम्मानसे अपने घरोंमें रखते थे। इस समय वह सुख का अतीत-समय-स्रोत विषादके वर्त्तमान समय-सागरमें निपतित होगया है। इस समय जीवन-संग्राम की कितनी वृद्धि होगई है! परोपकारिता की सुप्रवृत्ति केवल रसना में ही परिसमाप्त हो जाती है! इस समय कोई आत्मीय विधवाके भरणपोषणमें सम्मत नहीं होता; होने पर भी, विधवाके दुःख की अवधि नहीं रहती है! हतभागिनी विधवा प्रभातसे आधीरात तक दासी की भाँति परिश्रम करती है, सामान्य शिथिलता करने पर ही दासी की

भाँति तिरस्कृत होती है, दासी की भाँति उससे व्यवहार किया जाता है। आदर की भगिनी, विधवा होने पर, यदि सहोदर का आश्रय लेती है; तो भ्रातृवधूके हाथसे कितनी लाञ्छना नहीं सहती है! निर्दय देवर और जेठ और उनसे भी अधिक उनकी स्त्रियों द्वारा विधवाएँ कितनी लाञ्छित नहीं होती है! इन सबके अतिरिक्त, उद्दाम इन्द्रिय-शासन कैसा कठिन व्यापार है! देशमें कितनी भ्रूण-हत्यायें होती हैं! यह सत्य है, कि विधवाओंमें आदर्शसती, आदर्श ब्रह्मचारिणी भी बहुत दिखलाई देती हैं। परन्तु हाय, पतिताओं की संख्या उनसे कहीं बढ़-कर है! क्या कभी किसीने अनुसन्धान किया है, कि बङ्गाल की अपेक्षा बिहारमें हिन्दू-वेश्यायें क्यों कम हैं? बिहारमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और महाजन इत्यादिके अतिरिक्त और सब जातियोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है, क्या यही कारण नहीं है?

कुछ भी हो, हिन्दू-विधवाओंके दुःख पर आज शिक्षित हिन्दू-समाजके आँसू न गिराने पर भी तीन सौ वर्षसे अधिक पहले, अशिक्षित यवन-भूपतिने आँसू बहाये थे। महात्मा अबुलफ़ज़लने लिखा है,—"सम्राट् सदैव परिताप करके कहा करते थे,—"हाय, जिस समाजमें विधवा-विवाह की व्यवस्था नहीं है, उस समाजमें विधवाओंके दुःखों की सीमा भी नहीं है।" बीसवीं शताब्दी का चक्षुहीन, हृदयविहीन शिक्षितसमाज विधवा-विवाह की अपकारिता

कीर्त्तन करता है, और सोलहवीं शताब्दीके अशिक्षित, अनन्तर सम्राट् अकबरने विधवा-विवाह को हिन्दू-समाजमें प्रचलित करनेके लिये, विधवा-विवाह को प्रशस्त कहकर घोषणा की थी और उसके प्रचलित करने की चेष्टा की थी। वस्तुत: एकमात्र बंगदेशमें ही, हिन्दू-समाजमें, विधवा-विवाह प्रचलित नहीं है। भारतके अन्यान्य अंशोंमें ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्योंके अतिरिक्त और सबही हिन्दू-सम्प्रदायोंमें विधवा-विवाह प्रचलित है! अब भी पञ्जाब, उड़ीसा और नैपालके ब्राह्मणोंमें विधवा-विवाह होता है।

आज यदि हतभाग्य भारत में सतीदाह प्रचलित होता, तो हम देखते कि कितने ही शिक्षित ऊँचे-ऊँचे मञ्चों पर खड़े होकर उसकी उपकारिता का कीर्त्तन करते हैं; उस लोमहर्षण प्रथा का समर्थन अपनी वाङ्मिता द्वारा करते हैं, और कितने ही लोग तालियाँ बजा-बजा कर उस युक्ति का समर्थन और उस वक्ता की प्रशंसा करते हैं। सहृदय अँगरेज़ों के गुणसे आज वह भयङ्कर प्रथा क़िस्से-कहानियोंमें रह गई है। किन्तु उन से बहुत पहले, १५८३ ई० में, सम्राट् अकबर का लोकहितकर आदेश सर्वत्र प्रचारित हुआ था, कि कोई व्यक्ति बलपूर्वक किसी विधवा को सहमृता नहीं कर सकेगा।

सम्राट् केवल व्यवस्था करके ही परितुष्ट नहीं होगये थे। उन्होंने साम्राज्यके समग्र कोतवालों को आदेश दे दिया था, कि कोई विधवा को बलपूर्वक दग्ध न करे। सतीदाह-निवारण उनके

कर्त्तव्य-कार्यमें परिगणित होगया था। अबुलफ़ज़लने लिखा है, कि सम्राट्ने सतीदाह-निवारणके लिये नगर-नगर, परगने-परगने में कर्मचारी नियुक्त कर दिये थे। अम्बरराज जयमल के मरने पर, उनकी विधवा जोधपूर-राजबालाने सहमृता होना अस्वीकार किया। जयमलके पुत्रने, लोकापवाद और कलङ्क के भय से, माता को बलपूर्वक जला देने का सङ्कल्प किया। सम्राट् यह संवाद सुनकर बहुत दुःखित हुए। एक बार सोचा, कि दूत भेजकर इस गर्हित कार्य को निवारण करें। फिर सोचा, कि पराक्रमशाली राजपूत जब मेरे आदेश को अवज्ञा करके इस दुष्कार्यके करनेके लिये उद्यत हो गये हैं, तब निश्चय ही दूतके अनुरोध को उपेक्षा करके निरपराधिनी रमणी को जला देंगे। उनका संकल्प मुहूर्त्त-भरमें स्थिर हो गया, अश्व सज्जित हो गया। सम्राट् कतिपय शरीर-रक्षकोंको लेकर तेज़ीसे चल पड़े। जिस समय वह घटनास्थल पर पहुँचे, उनका हृदय व्याकुल हो उठा। उन्होंने देखा, कि बहुसङ्ख्यक राजपूत इकट्ठे हो रहे हैं, उनके बीच में भीषण चिता बनी हुई है। ईन्धनके ढेरके ढेर उसके ऊपर लगे हुए हैं, वह धू धू करके जल रही है और विधवा उसी चितासे बँधी हुई है। सम्राट् को कोई पहचानता नहीं था, और ऐसा विश्वास भी किसी को नहीं था, कि वह ऐसे समय पर यहाँ आजायँगे; इसी कारण सतीदाहमें बाधा देते समय राजपूत उनके ऊपर बल प्रयोग करने लगे और

उनके कार्य्यमें बाधा देने को अग्रसर हुए। किन्तु सम्राट् भीत होनेवाले पात्र नहीं थे, वह विधवाके जलाने का दृढ़तासे निषेध करने लगे। अम्बर का अन्य राजा जगन्नाथ सम्राट् को पहचानता था। उसने तत्क्षणात् आगे बढ़कर सम्राट् को सम्मान प्रदर्शन किया। उस समय सतीदाहके अध्यक्षगण जान सके, कि सम्राट् स्वयं सतीदाहके निवारण के लिये आये हैं। वह लोग सम्राट्के पास आकर अनुष्ठित कार्यके लिये अनुताप करने लगे। सतीदाहका निवारण हो गया, हतभागिनीके प्राण राक्षसोंके हाथ से छुट गये। परन्तु सम्राट्ने अपराध क्षमा नहीं किया, केवल तिरस्कार अथवा अर्थदण्ड इस गर्हित कार्य्य का उपयुक्त दण्ड उन्होंने नहीं समझा। उन्होंने सतीदाहके अध्यक्षों को कारारुद्ध किया। यद्यपि वह लोग अम्बरराज्य सरीखे विस्तृत देशके अधीश्वर थे और सम्राट्के साथ विवाह-सूत्रमें आबद्ध थे; परन्तु इन बातोंसे सम्राट् उनको कारारुद्ध करनेमें तनिक भी कुण्ठित नहीं हुए। ऐसा सहृदय सम्राट् कहाँ प्राप्त हो सकता है?

बीकानेरके राजा रायसिंह की कन्याके साथ कालिञ्जर के राजा रामचन्द्र बघेलाके पुत्र का विवाह हुआ था। उसकी मृत्यु होनेपर सम्राट्ने उसकी स्त्री को सतीदाहसे बचाया था। राजपूतगण अत्यन्त क्षमताशाली थे, तथापि सम्राट् सतीदाह-निवारण करके उनके विरागभाजन होनेसे तनिक भी संकुचित नहीं हुए। जो कुछ कर्त्तव्य समझा, उसके अनुष्ठानसे विरत

नहीं हुए। हिन्दू लोग बलिदानके लिये बहुजीव-हत्या करतेथे। जीवहत्या को अति अन्याय कार्य बतलाकर सम्राट्ने हिन्दुओं को उससे रोका।

हिन्दू लोग भूमिष्ठ होते ही गायके दूधसे भूख-प्यास निवारण करते हैं; बड़े होने पर उसके दूध, क्षीर, मलाई, घी, मट्ठा, और दही इत्यादिसे परिपुष्ट होते हैं; गोबरसे दुर्गन्ध निवारण करते हैं, भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाते और ईन्धन का काम लेते हैं। गायके बछड़ोंसे कृषिका काम लेते हैं। गोबर, गोमूत्र और पुराने घीसे कितनी ही कठिन पीड़ाओंसे परित्राण पाते हैं। मृत्यु-शय्यापर उसी गायके दूध से फिर शक्ति संग्रह करते हैं। और कौन पशु मनुष्य-समाजके लिये इससे बढ़कर उपकारी है? इसीलिये हिन्दू लोग गो-जाति का आदर करते हैं। मुसल्मान गोहत्या करते हैं, जिससे हिन्दू-मुसल्मानोंमें सौहार्द स्थापित नहीं हो सकता है। इसलिये सम्राट् गोहत्या निवारण करनेके लिये अग्रसर हुए। सर्वत्र आदेश प्रचार कर दिया, कि मुसल्मान गोहत्या और गोमांस-भक्षण नहीं कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त घोड़ा, ऊँट, भैंस, बकरीभी मनुष्य समाजके लिये उपकारी हैं,यह कहकर उनके मांस-भक्षण का भी निषेध कर दिया। इन सब जीवों की हत्या निवारण करने के लिये राज्यके कोतवालों को आदेश दे दिया।

इनके अतिरिक्त, रविवार और वर्षके किसी-किसी निर्दिष्ट दिन, और सब जीवों की हत्या करने का भी मुसल्मानों को

निषेध किया गया। अब भी कोई-कोई मुसल्मान रविवार को जीवहत्या नहीं करते हैं।

मुसल्मानोंमें सुन्नत का करना इसलाम-धर्म का सर्वप्रधान नियम है। इसके शैशव-कालमें करने से बालक को बहुत क्लेश होता है। सम्राट्‌ने कहा,—"जो शिशु शैशवावस्था के कारण धर्मानुष्ठानसे विमुक्त हैं, उनके ऊपर ऐसी गुरुतर और क्लेशकर धर्मानुष्ठान की व्यवस्था अत्यन्त गर्हित है।" सम्राट्‌ने आदेश प्रचार किया, कि बालक जबतक १२ वर्ष का न हो जाय, तबतक इसका अनुष्ठान न होना चाहिये और यदि इस वयस में भी वह इस प्रथा का प्रतिवाद करे, तो कोई ज़बरदस्ती इसका अनुष्ठान न कर सकेगा।

मुसल्मानोंमें दाढ़ी रखने की प्रथा अवश्य प्रतिपालनीय है। हिन्दू लोग दाढ़ीके विरोधी हैं। सम्राट्‌ने आदेश प्रचार कर दिया, कि जिस प्रकार केवल दाढ़ीही रखनेसे कोई मुसल्मान नहीं हो जाता, उसी प्रकार दाढ़ीके त्याग करनेसे भी कोई मुसल्मान धर्म-च्युत नहीं होगा। बदाऊनी ने लिखा है कि बहुतसे मुसल्मानोंने दाढ़ी मुँड़वा डालीथी। सम्राट् हिन्दुओं के समान बिना दाढ़ीके मुखको पसन्द करते थे। एल्फ़िन-स्टन साहबने लिखा है, कि यदि मुसल्मान दाढ़ी न मुँड़वाते, तो सम्राट् शायदही उनको दरबार में आने देते।

मुसल्मान लोग उपासनाके समय रेशमी वस्त्र और अल-

ङ्गार इत्यादि नहीं पहनते थे। सम्राट्ने आदेश प्रचार कर दिया, कि उनके पहननेसे कोई क्षति नहीं है।

इसलाम-धर्मके अनुसार सुरापान निषिद्ध है। सम्राट्ने कहा,—"यदि चिकित्सक व्यवस्था करे, तो अल्प परिमाणमें पीने में दोष नहीं है। उससे रुग्न शरीर बलिष्ठ हो सकता है।" उन्होंने फतेहपुर-सीकरीमें शराब की एक दूकान खुलवा कर नियम कर दिया था, कि केवल औषधिके लिये नियमित मूल्य पर शराब बेची जायगी। ख़रीदनेवाले का नाम, उसके पिता का नाम इत्यादि बेचनेवालेको लिख लेना होगा। बदाऊनीने लिखा है,—"ख़रीदनेवाले मिथ्या नाम बतलाकर स्वेच्छामत शराब ख़रीदते थे और इस तरह सुरापान को प्रश्रय प्राप्त होता था। लोग कहतेथे, कि उसमें सुअर का मांस डाला जाता है, ईश्वर जाने सत्य है कि मिथ्या। सम्राट्के उतनी सतर्कता रखने पर भी, सुराके कारण नित्य कलह और विवाद उपस्थित होता था और यद्यपि नित्य ही बहुतसे मनुष्य तिरस्कृत होते थे, परन्तु उससे कुछ भी फलोदय नहीं होता था।" ऐसी सुरासे सब को सावधान रहना चाहिये!

अकबरने हिन्दू-मुसल्मानोंके मङ्गलके लिये, उनके सामाजिक नियमोंमें परिवर्त्तन करने की चेष्टा की थी। आज हिन्दू और मुसल्मान घोर दुःखमें पड़े होने पर भी, अकबर के अनुसरणमें उदासीन हैं। हाय! जगत्में जातिमात्र के ही लक्ष्य है, आशा है, केवल भारतवासियोंके नहीं है!

इक्कीसवाँ अध्याय।

अस्ताचल।

Akbar clothes our wonderful world in new colours and is an ornament to God's noble creation.

—**Abul Fazal.**

हम अब इस महापुरुष की जीवन-महानदी को अतिवाहित करके दुःख के सागर-संगम पर आपहुँचे हैं।

जो सब नदियाँ भारतके मङ्गल-साधन के लिये नाना देश-देशान्तरों से धावित होकर, उस महानदी के साथ सम्मिलित होगई थीं, वह प्राय सभी सूख गयी हैं। शेख़ मुबारक, अबुलफ़ज़ल, बीरबल और फ़ैज़ी भारत में नया युग प्रवर्त्तित करने की लालसा से सम्राट् की सहायता करते थे, अब वह सब परलोक में हैं। राजा टोडरमल राज्य की सुशृङ्खला सम्पादनमें अब नियुक्त नहीं हैं। राजा भगवानदास हिन्दू-मुसल्मान सैनिकोंको गौरव-पथ पर चलाने से प्रतिनिवृत्त

हो चुके हैं। सम्राट् के बन्धुओं में से अधिकांश इस समय प्रभातकी नक्षत्रराजिकी भाँति एक-एक करके अदृश्य होगये हैं। उन्होंने मुसल्मानों की उन्नति के लिये कितना यत्न, कितना परिश्रम किया है; उनके हितके लिये, उनको हिन्दुओंके साथ सम्मिलित करनेमें कितना कष्ट उठाया है; किन्तु मुसल्मान उनको नास्तिक और पाषण्डी कहकर उनकी निन्दा करते हैं। जिस पुत्र को वे प्राणों से भी अधिक चाहते हैं, वही कृतघ्न होकर, प्रिय सुहृद्की हत्या करके, विद्रोही होगया है। विशाल भारतवर्षकी विभिन्न जातियाँ स्वार्थको भूलकर, कलहको परि-त्याग करके, महासङ्कल्प साधन करनेके लिये एकतामें ग्रथित होंगी; सौहार्द में आबद्ध होंगी; युक्तिके अनुसार चलेंगी;—ये सब आशायें भी मानो सम्राट् के हृदय को परित्याग कर रही हैं। उनका स्वास्थ्य भङ्ग हो गया है। अफ़ीम के व्यवहार से कालके स्रोतमें जीर्ण नौका किसी तरह तैर रही है।

सम्राट् ने स्थिर कर लिया है, कि प्रिय सुहृद्हन्ता कुपुत्र को प्रिय राज्य अर्पण नहीं करेंगे। परन्तु किसके हाथ में यह सुविशाल साम्राज्य समर्पण करेंगे? उन्होंने जो सुन्दर वृक्षा-वली रोपण की है, उसका यत्न कौन करेगा? कौन उसको पुष्पित करने का प्रयास करेगा? दूसरा पुत्र दानियाल शराबी और दुश्चरित्र है। यह देखकर सम्राट् सलीम के पुत्र खुसरो की ओर दृष्टि करने लगे। सब ही उसको किस प्रकार सहेंगे? मुसल्मान लोग समझने लगे, कि सलीम के

सम्राट् होने पर भारतमें फिर मुसल्मान-धर्म प्रतिष्ठित होगा। सम्राट्-महिषी सलीमा बेगमभी शायद उसी आशासे परिचालित होने लगीं। वह इलाहाबाद जाकर सपत्नी-पुत्र सलीम से मिलीं और अनेक हितोपदेश प्रदान किये, सम्राट् के पास उपस्थित होकर क्षमाप्रार्थी होने का अनुरोध किया। सलीमने देखा, कि एक दिन मैं विद्रोही होगया था, तथापि मुसल्मान प्रकाश्यभाव से मुझसे मिलने के साहसी नहीं हुए थे। विशेष करके यदि सम्राट् मेरे विरुद्ध युद्ध-घोषणा करदेंगे, तो मेरी विपद्की सीमा न रहेगी। सलीमने शायद यही सब सोच-विचारकर विमाताका अनुवर्त्ती होना निश्चय किया। जिसने एक दिन मातामहोके उपस्थित होनेपर उनसे साक्षात् नहीं किया था, उनका सम्मान तक नहीं किया था, आज वही विमाता के कहने से, विमाता के साथ उन्हीं मातामहोके पास आगरे आया। सम्राट्-जननीने बहुत चेष्टा करके पिता-पुत्रका सम्मिलन साधन करा दिया। सम्राट् ने पुत्रका अपराध क्षमा कर दिया। सलीमने सम्राट्को बहुतसा उपहार प्रदान किया। सम्राट्ने भी उसको सर्वोत्कृष्ट हीरे और सर्वोत्कृष्ट हाथी दिये। सलीमने फिर इलाहाबाद जाना चाहा। सम्राट्ने कहा,—"जभी तुम्हारी इच्छा हो, तभी फिर पिताके पास आजाना।" हायरे अपत्यस्नेह! मातृस्नेह, पितृस्नेह, बन्धुस्नेह—सभी स्नेहोंके ऊपर तुम्हारा एकाधिपत्य है!

सम्राट्ने पुत्रोंकी सुशिक्षाके लिये बहुत कुछ चेष्टा की थी,

किन्तु फलोदय कुछ नहीं हुआ ! सलीमकी दुर्नीति वर्णित हो चुकी है। मुराद अत्यधिक सुरापानसे प्राणत्याग कर चुका था। दानियाल इस समय ऐसा सुरापायी और दुश्चरित्र होगया था कि, उसके जीवनसे लोग हताश होगये थे। सम्राट्ने उसको अपने पास बुलानेकी बहुत चेष्टा की, कितनेही हितोपदेश प्रेरण किये, किन्तु सबही व्यर्थ हुए। वह आगरे नहीं आया, पिताके पास उपस्थित नहीं हुआ, जहाँ इच्छा होती वहीं रहता था। शेषमें सम्राट्ने जब कोई उपाय न देखा; तो उन्होंने यह आदेश प्रचार किया, कि जो कोई दानियालको शराब देगा उसको प्राणदण्ड होगा। बहुतसे लोग उसको शराब देनेसे विरत होगये। परन्तु दानियालकी प्रवृत्तिका परिवर्त्तन हुए बिना दण्डभय क्या काम दे सकता था ? दानियालने बहुत अनुनय-विनय द्वारा, बहुतसा पुरस्कार प्रदान करके, एक भृत्य को सुरा लानेपर राज़ी किया। वह कभी तो अपनी पगड़ीमें सुरापात्र छिपाकर और कभी दानियालकी एक प्रिय बन्दूक़की नालीमें सुरा भरकर लाने लगा। कुमारको उस बन्दूक़से बड़ा प्रेम था, वह उसीसे शिकार खेला करते थे। उन्होंने उसका नाम "मृत्यु" रक्खा था। उसके ऊपर उन्होंने खुदा रक्खा था, "तुमको लेकर शिकार खेलनेसे मुझे कितना सुख होता है ! जो तुम्हारे कार्यका फल पाता है, वही यमपुर जाता है।" कुमारने जब बन्दूक़के ऊपर यह कविता अङ्कित की थी, तब उनको स्वप्नमें भी यह भावना नहीं हुई थी, कि उनके द्वारा

ही इस कविताकी सार्थकता प्रमाणित होगी। उस उपायसे बिना किसीके देखे हुए शराब आने लगी और कुमार गिलास पर गिलास अविराम पीने लगे। शेषमें शरीर अवसन्न होगया, मदिराके भारसे जीर्ण नौका जलमग्न हो गई।

अस्वस्थ सम्राट् की पीड़ा इस संवादसे और भी बढ़ गई। पुत्र-शोकसे उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। उस समय सलीमके अतिरिक्त और पुत्र नहीं रहा था। सलीम भी सुरा-पायी और दुश्चरित्र था। उसने समझ लिया, कि भारतके सिंहासन पर बैठनेमें अब कोई बाधा नहीं है, विलम्ब भी नहीं है; इससे वह इलाहाबाद जाकर आनन्द से अधीर होकर, चिन्ता-भय-विरहित होकर सुरा और सुन्दरीकी सेवामें निमग्न हो गया। अत्यधिक मदिरा और अफ़ीमके सेवनमें प्रवृत्त होगया। उसका घर रात-दिन बेला, गुलाबसे परिपूर्ण तथा सौगन्ध और सौन्दर्य्यसे आमोदित रहने लगा। वह विह्वला रमणीलल्लास-गण से परिवेष्टित, आत्मविक्रीत, और आत्मविस्मृत रहने लगा। वह सामान्य अपराध के लिये नौकरोंको मारने लगा और यथेच्छाचारसे चारों दिशाओंको आतङ्कित करने लगा। सम्राट् यह सब सुनकर मर्माहत हुए। इलाहाबाद जाकर पुत्र को सत्पथ पर लाने का सङ्कल्प किया। सम्राट् ने पीड़ित शरीर को लेकर जलपथ से इलाहाबाद की यात्रा की। कुछ दिन चलने पर संवाद मिला, कि उनकी स्नेहमयी जननी मृत्यु-शय्या पर पड़ी हैं, चिकित्सकगण निराश हो गये हैं।

सम्राट् यह संवाद सुनते ही बड़े दुःखित चित्तसे आगरेको लौटे। जब वह करुणामयी जननीके पास पहुँचे, तो देखा कि उनकी बोली बन्द होगयी है। सम्राट् जननीके शोकसे अधीर होकर रोने लगे। पीछे अपने कमरेमें जाकर उनके लिये ईश्वरकी करुणाभिक्षा करके प्रार्थना करने लगे। इस रत्नप्रसविनीने शीघ्रही प्राण त्याग दिये।

सम्राट् जननीके शोकसे अतिशय कातर हुए, शोक-परिच्छद धारण करली, सब प्रकारके भूषण परित्याग कर दिये एवं हिन्दुओंकी रीति के अनुसार मस्तक इत्यादिका मुण्डन कराया। दरबारके सभी व्यक्तियोंने दाढ़ी मुँड़वाई। जननीकी मृतदेह बड़े समारोहसे दिल्लीमें चली। सम्राट् स्वयं कुछ दूरतक उसको अपने कन्धे पर लेगये। पीछे प्रधान अमात्योंने सम्राट्का अनुकरण करके मृत जननीको सम्मान प्रदर्शन किया। सम्राट्ने दिल्ली नगरमें, पिताके समाधि-मन्दिरमें, पिताके पासही, जननीको समाधि प्रदान की।

सम्राट् जननीकी अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति करते थे। उनका आदेश अवनत मस्तकसे प्रतिपालन करते थे। दीन-दरिद्रोंमें वितरण करने के लिये उनको प्रभूत अर्थ देते थे। सम्राट् अन्यान्य आत्मीय स्वजनोंको भी प्रचुर परिमाणमें धन-दान करते थे। एक बार बदाऊनीने सम्राट्से मक्का जानेकी प्रार्थना की। सम्राट्ने कहा,—"मुझको कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु सबसे पहले अपनी माता से अनुमति लो, यदि वह आज्ञा न

देंगी, तो तुम नहीं जा सकोगे।" इससे सूचित होता है, कि वह सब ही माताओं को कैसी श्रद्धा की दृष्टिसे देखते थे ।

दुःखोंके आक्रमणसे सम्राट्का स्वास्थ्य दिन पर दिन भङ्ग होने लगा। तरङ्गके ऊपर तरङ्गके आक्रमणसे समय-समुद्रका आलोकस्तम्भ कम्पित होने लगा। दिन पर दिन वह विशाल स्तम्भ उन्मूलित होनेकी सूचना देने लगा। यह संवाद पाकर सलीम और उसका पुत्र खुसरो दोनोंही सिंहासन पर बैठनेकी वासनासे आगरे आये। दोनोंही सिंहासनकी लालसासे षड्-यन्त्रमें प्रवृत्त हुए।

क्रमसे सम्राट् उदरामय पीड़ा से पीड़ित हुए। चिकित्सक ने एक सप्ताह तक कोई औषधि नहीं दी। पीछे उन्होंने ऐसी औषधि दी, जिसने उलटा असर किया। उदरामयके बदले ज्वर और मूत्रकृच्छ्र रोगका आविर्भाव हुआ। चिकित्सकने फिर औषधि दी, फिर उदरामय होगया।

सम्राट्की पीड़ित अवस्थामें उनके धात्रीपुत्र और सर्वप्रधान सेनापति ख़ाने-आज़म अज़ीज़-कोका राजकार्य करते थे। वही साम्राज्य के शीर्षस्थानपर थे। वह कुमार खुसरोके श्वशुर थे। राजा मानसिंह उनके मामा थे। वह लोग सलीम के चरित्र से भली भाँति अवगत थे। वह यह भी जानते थे, कि सम्राट् सलीम से अप्रसन्न हैं। इन सब कारणों से उन्होंने खुसरो को ही दिल्लीके सिंहासन पर बैठानेका सङ्कल्प किया। अज़ीज़-

कोका ने ज्योंही सभामें यह प्रस्ताव किया, त्योंही प्रधान मुसल्मान कर्मचारियोंने उसका प्रतिवाद किया। सलीम हिन्दू-विद्वेष प्रदर्शन और अकबर की उदारनीतिकी प्रतिकूलता करके, मुसल्मानोंकी प्रशंसा आकर्षण करने में समर्थ होचुका था एवं अबुलफ़ज़ल की हत्या करके मुसल्मानों की प्रशंसा, श्रद्धा और भक्ति प्राप्त कर चुका था। वह लोग खूब समझ चुके थे, कि यदि सलीम सम्राट् होगा तो मुसल्मानोंका प्राधान्य फिर से स्थापित हो जायगा और अकबरके किये सारे परिवर्त्तनोंपर पानी फिर जायगा। इसलिये उन्होंने एक वाक्यसे सलीमका पक्ष अवलम्बन किया। अज़ीज़-कोका और राजा मानसिंहने वायुकी गतिको विपरीत देखकर, सङ्कल्प-नौकाका पाल उतार लिया। आत्मद्रोह को सर्वथा विगर्हित समझकर अभिलाषका परित्याग कर दिया।

सम्राट् मृत्यु-शय्यापर पड़े हैं, यह सुनकर समुदय मुसल्मान अमात्य सलीमके वास-भवनमें पहुँचे, उसको सम्राट् कहकर अभिवादन किया और उसको सिंहासन-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें आमोद-उत्सव करने लगे। सलीमको ज्ञात होगया था, कि राजा मानसिंह और अज़ीज़-कोका उसकी प्रतिकूलता करते हैं। जब अज़ीज़-कोका सलीमके पास गया, तो सलीमने उसको बड़े आदरसे ग्रहण किया। परन्तु मानसिंह सलीमके पास नहीं गये। सलीम ने एक अमात्य भेजकर राजा मानसिंह को बुलाया। राजा के पहुँचने पर उनका प्रभूत सम्मान किया, और उनके

कामोंकी भूयसी प्रशंसा करके उनको अपने पक्षमें कर लिया।

क्रमसे सन् १६०५ ई०की १५ अक्तूबर आई। राजप्रासाद विषादकी छायासे आच्छन्न हो गया है। असंख्य प्रजामण्डली महलोंके बाहर आँखोंमें आँसू भरे खड़ी है। वह लोग सम्राट्की पीड़ाका संवाद पाकर आये हैं। जनसाधारण विशेषकर हिन्दू हाहाकार कर रहे हैं। जिस महावृक्षकी सुशीतल छाया में वह लोग न जाने कितना सुख, कितनी शान्ति उपभोग कर चुके हैं, वही महावृक्ष आज महाबलवती आँधीसे विध्वंस हुआ जाता है। वह क्यों न रोयेंगे? उनकी आँखोंसे अश्रुधारा निर्गत होरही है। दिनमणि उनसे भी अधिक सम्राट्के शोकमें भारतकी भावी दुरवस्थाको स्मरण करके, विषादसे म्रियमाण होकर भूलुण्ठित हो रहे हैं। रक्त सन्ध्या हुई। भारत-भूमि मानों सम्राट्के शोकमें अधीर होकर, कङ्कन-कराघातसे ललाटको रक्तरञ्जित करके, सहस्रों विहगकण्ठोंसे हाहाकार करने लगी। क्रमसे भीषण अँधेरी रात आई। भारतभूमि मानों दुःखसे अवसन्न होकर, निविड़-कृष्णपटसे शरीरको आवृत करके, चुपचाप मृत्यु-शय्यापर लेट गई और आँसुओंको ओसकी भाँति वर्षण करने लगी। सारा आगरा विषादसे आच्छन्न हो गया। सलीम पिताके अमात्योंके साथ पिताके चरणतलमें अन्तिम बार उपस्थित हुआ। पिताकी यह दशा देखकर सलीमके पाषाण-हृदयमें भी करुणाका उदय

हुआ। वह पितृशोकसे अधीर होकर, पिताके चरण पकड़ कर रोने लगा। सम्राट्के आदेशसे एक राजपुरुषने सम्राट्की तलवार, राजकीय परिच्छद और राजमुकुट सलीमको प्रदान किये। सम्राट्ने सब लोगोंसे अपने अपराध क्षमा करनेका अनुरोध करके विदा ग्रहण की। शीघ्रही दीर्घश्वास आरम्भ हो गया। सम्राट्कुलतिलक अकबरने ६२ वर्षकी वयसमें, प्रायः पचास वर्ष राजत्व करके, प्राणत्याग किये। हतभागिनी भारतभूमि फिर अन्धकारसे समाच्छन्न हो गयी।

दूसरे दिन सम्राट्का शरीर सुसज्जित करके सिकन्दरेमें लेजाया जाने लगा। सलीम कुछ दूर तक और अमात्यगण शेष पथ तक लेगये। असंख्य हिन्दू और मुसल्मान जनसाधारण नङ्गे पैरों, खुले शिर, विषण्णहृदयसे हाहाकार करते-करते उस प्रिय सम्राट्के पीछे-पीछे गये। सिकन्दरेके एक रमणीय उद्यानमें महासम्मानसे सम्राट्को समाधि प्रदान की गई, उनके साथ ही स्वदेशहितैषिता और जन्मभूमिकी उन्नति-कामना भी सदैवके लिये प्रोथित हो गई।

इस प्रकार भारतके पुरुषरत्नने हिन्दू-मुसल्मानोंको सम्मिलित करनेकी वासनासे, जन्मभूमिको जगत्में महाशक्तिशालिनी बनानेकी कामनासे, चेष्टा करके प्राणत्याग किये। हम यह नहीं कहते हैं, कि अकबर दोषशून्य थे। मनुष्य कभी देवता हो नहीं सकता। तो भी उनके दोषोंके

साथ गुणोंकी तुलना करनेपर, उनको भारतका एक अति उज्ज्वल रत्न कहकर सम्मान और समादर करनेकी इच्छा होती है! हमने किसीसे सुना है, कि अकबर मनुष्यके चमड़ेसे ढका हुआ पशु था। पृथ्वीपर जितने महापुरुषोंने जन्म ग्रहण किया है, सबही किसी न किसी सम्प्रदायके निन्दा-भाजन हुए हैं। अकबर उन्हीं महापुरुषोंके अन्तर्निविष्ट होकर, उनके भाग्यके फलसे कैसे बचेंगे? हम विगत कई वर्षों तक अकबरकी जीवनीकी आलोचना करके, इस विश्वास पर उपनीत हुए हैं, कि ऐसे अपवाद अलीक हैं। हम प्रमाणों द्वारा उसकी पुष्टि करते हैं।

किसी भी ग्रन्थकी कोई भी बात बिना विचारे ग्रहण कर लेना निरापद नहीं है। बदाउनीने लिखा है,—"बैरमख़ाँने एक प्रकारसे अकबरकी अनुमति लेकर तारदीबेगको मारा था।"फ़रिश्ताने लिखा है,—"बैरमने अकबरसे कहा था, 'आपमें बहुत दया है, आप निश्चयही तारदीबेगको क्षमा कर देते, इसीलिये पहले आपको ख़बर न देकर मैंने उसको मारा है।' अकबर यह सुनकर काँप गये।" अहमद यादगारने लिखा है,—"अकबरने बैरमके आदेशानुसार अस्त्राघात करके हेमूका मस्तक अपवित्र शरीरसे विच्छिन्न कर दिया।" अबुल-फ़ज़ल, फ़ैज़ी-सरहिन्दी और बदाउनीने लिखा है कि, अकबर हेमूके शरीरमें अस्त्राघात करनेको अस्वीकृत हुए और बैरमने उसका शिरच्छेद किया। किसीने लिखा है,—"अक-

बरने एक ईसाई-मतावलम्बिनी सुन्दरीका पाणिग्रहण किया था। उसीके सिखलानेसे वह ईसाई-धर्म्मके पक्षपाती होगये थे।" केनसाहबने लिखा है, कि यह बात मिथ्या है। अकबर के कोई ईसाई-धर्मावलम्बिनी स्त्री नहीं थी। फ़रिश्ताने लिखा है,—"राजपूत-डाकुओंके एक दलने अर्थ-लोभसे अबुलफ़ज़लको मारा था।" किसी-किसी लेखकने केवल विद्वेष-बुद्धिवशतः मिथ्या लिखा है,—"सलीमके परामर्शसे उन लोगोंने अबुलफ़ज़लको हत्या की थी।" हमने दिखला दिया है, कि फ़रिश्ताकी यह उक्ति मिथ्या है। हत्या करनेवालोंने अबुलफ़ज़लकी कोई वस्तु स्पर्श नहीं की थी, पक्षान्तरमें सलीमने अपनी जीवनीमें लिखा है, कि बीरसिंहने उसके ही आदेशसे अबुलफ़ज़लको निहत करके शिर इलाहाबाद भेजा था। इस प्रकार कहाँतक लिखा जावे? निज़ामुद्दीन अहमदकृत तबक़ाते अकबरी और तवारीख़ मासूमी नामक ग्रन्थकी एक हस्तलिपिमें जो नहीं है, दूसरी हस्तलिपिमें वह है। सर्वोपरि, इलियट साहबने मुसल्मान-इतिहासकी उपक्रमणिकामें लिखा है,—"कुछ वर्ष पहले आगरेमें मुग़ल-सम्राट्के सम्बन्धमें एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। ग्रन्थकारने जिन पुस्तकोंसे विवरण संग्रह किया था, उनके नाम भी उसने अपनी पुस्तकमें लिखे थे। मैंने उन पुस्तकोंके विषयमें लेखकसे प्रश्न किया था। उसने उत्तर दिया कि,—'उल्लिखित पुस्तकोंमेंसे कई एक मेरे पास थीं, वह मैंने एक और व्यक्तिको दे दी है, कइयोंकी ज़रूरत होने

पर लाया, किन्तु फिर देदी गईं और कई एक जाती भी रही हैं।" जिन लोगोंको उन्होंने वह पुस्तकें दी थीं उनके नाम भी उन्होंने बतलाये, मैंने उनलोगोंसे पूछा। उनलोगोंने इस घटना को एकदम अस्वीकार किया और कहा, कि उन्होंने उन पुस्त-कोंके नाम भी नहीं सुने हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य पुस्तकों से जो विषय ग्रन्थकारने उद्धृत किये थे, वह सब विषय मूल ग्रन्थमें पहले नहीं थे।" इस प्रकार एक महापुरुषका चरित्र कलङ्क-कालिमा से रञ्जित हो जावे, तो क्या आश्चर्य्य है?

हमने इस पुस्तकमें पुनःपुनः प्रदर्शित किया है, कि अक-बर बाल्यकालसेही दयालु और सबही धर्मोंमें समदर्शी थे। बदाऊनी अकबरकी भूयसी निन्दा करनेपर भी यह लिखने को बाध्य हुआ है,—"यह नियम था, कि कोई किसीको धर्ममत के लिये उत्पीड़न न कर सकता था। जिसकी इच्छा जिस धर्मके ग्रहण करने या छोड़नेकी होती, वह वैसा ही कर सकता था। सबही अपनी-अपनी इच्छानुसार मसजिद, मन्दिर अथवा अग्निमन्दिर बनवा सकते थे।" अबुलफ़ज़लने इस युक्तिका पुनःपुनः समर्थन किया है। मुसल्मान-ऐतिहासिकोंने लिखा है,—"एक मुसल्मान कर्मचारीने एक हिन्दू देवालय तोड़ डाला था, जिसके लिये सम्राट् उसपर बहुत क्रुद्ध हुए थे।" उन्होंने ही लिखा है,—"पहले मुसल्मान लोग तलवार द्वारा धर्म-विस्तार करते थे, यह कहकर अकबर सदैव उनकी

निन्दा करते और कहते थे, यह अत्यन्त निष्ठुर काम है।" ब्लाकमैन साहबने लिखा है, कि अकबर पहलेहीसे सब धर्मों में समदर्शी थे। एलफ़िन्सटन साहबने लिखा है,—"अकबर राजत्वके प्रारम्भसे ही सब धर्मसम्प्रदायोंके ऊपर समदर्शिता प्रदर्शन करते थे, सबके ऊपर तुल्यभाव प्रकाश करते थे। ऐसी अवस्थामें टाड साहबका कथन,—"अकबरने शिव-मन्दिरमें क़ुरानके पाठ की व्यवस्था की थी।" और ह्वीलर साहब का दोषारोपण,—"अकबरने अनेक मसजिदें तुड़वा डालीं और बहुतसी मसजिदोंमें अस्तबल बनवाये" कहाँतक सत्य हो सकता है, पाठक इसको स्वयं ही स्थिर कर सकते हैं।

बदाऊनीने लिखा है,—"सम्राट्की पाकस्थलीमें यन्त्रणा होती थी। चिकित्सक इसका कारण निर्णय कर नहीं सके, तब निन्दक लोगोंने सलीमको निन्दा करके विष-प्रयोगकी ख़बर उड़ा दी।" उन्होंने एक और स्थलपर लिखा है,— "सम्राट् सलीमके ऊपर विष-प्रयोगका सन्देह करते थे।" ह्वीलरने लिखा है,—"इस सिद्धान्तको झूठा करना असम्भव है, कि सलीमके कहनेसे चिकित्सकोंने अकबरको विषकी गोली दी थी।" पक्षान्तरमें टाड साहबने लिखा है कि, "अकबरने मानसिंहकी क्षमतासे ईर्षान्वित होकर, उनकी हत्या करनेके लिये उनके भोजनमें विष मिलवा दिया था; किन्तु भूलसे वह स्वयं ही खा गये और मृत्युके मुखमें पतित हुए।" किसकी बात विश्वासयोग्य है? काउण्ट आव्नोयरने लिखा

है,—"टाडने अकबरकी मृत्यु का जो कारण लिखा है, वह प्रतिवाद करने योग्य नहीं है।"

इन्हीं टाड साहबने लिखा है,—"सम्राट् .खुशरोज़को बहुतसी सम्भ्रान्त राजपूत-रमणियोंका सतीत्व नष्ट करते थे।" उन्होंने लिखा है,—".खुशरोज़के उत्सवके समय अन्तःपुर-संलग्न स्थलमें एक मेला लगाया जाता था और वहाँ एक-मात्र स्त्रियाँ ही प्रवेश कर सकती थीं। वणिकोंकी स्त्रियाँ प्रत्येक देशकी वाणिज्य-वस्तु प्रदर्शन करती थीं, सम्राट्की अन्तःपुरचारिणियाँ उनको क्रय करती थीं। अबुलफ़ज़ल कहते हैं—"सम्राट् वहाँ छद्मवेशसे जाते थे, सब प्रकारकी द्रव्य-सामग्रीके मूल्यसे अवगत होते थे, और साम्राज्यकी अवस्थाके सम्बन्धमें और कर्म्मचारियोंके चरित्रके विषयमें लोग क्या कहते हैं सो सुनते थे।" अबुलफ़ज़लके खुशरोज़ के वर्णनके पाठ करनेसे प्रतीत होता है, कि टाडने उसमेंसे ही उपरोक्त अंश ग्रहण किया है। किन्तु सम्राट्के छद्मवेशमें रमणीमण्डलमें जानेकी उक्ति मूल ग्रन्थमें कहीं पर नहीं है। टाडने और भी लिखा है, कि सम्राट्ने इस मेलेमें पृथ्वीराजकी स्त्रीका सतीत्व नाश करनेकी निष्फल चेष्टा की थी, परन्तु पृथ्वीराजके ज्येष्ठ भ्राता रायसिंहकी स्त्रीके सतीत्व-नाश करनेमें वह समर्थ हुए थे। परन्तु हमारा विश्वास है, कि ये सब उक्तियाँ अप्रकृत हैं। टाडके मतसे पृथ्वीराज सम्राट्के बन्धु और

पार्श्वचर थे। रायसिंह बीकानेरके महाशक्तिशाली नरपति, सम्राट्के बन्धु, प्रधान सेनापति एवं सलीमके श्वशुर थे। ऐसी घटना सत्य होनेसे वह निश्चय ही प्रतिहिंसा चरितार्थ करते।

खुशरोज़ साधारण उत्सवका दिन था। अन्तःपुरबद्धा रमणीगण कुछ देख नहीं सकती थीं, किसी आमोद-उत्सवमें योगदान कर नहीं सकती थीं। बन्धुओंकी स्त्रियाँ, राज्यके प्रधान पुरुषोंकी रमणियाँ, सम्राट्की स्त्रियों, लड़कियों और पुत्र-बधुओंके साथ एवं सम्भ्रान्त हिन्दू ललनायें उच्च वंशकी मुसल्मान-ललनाओंसे मिलकर आमोद-उत्सव करके परस्पर सौहार्द स्थापित कर सकती थीं, हिन्दू-मुसल्मानमय भारत का मङ्गल-साधन हो सकता था ; बस इसीलिये दूरदर्शी सम्राट् खुशरोज़के समय, कुछ कालके लिये, अन्तःपुरसे लगे हुए स्थलमें, केवल रमणियोंके लिये, मेला लगवाते थे। बहुतसी रमणियाँ पहरेपर रहती थीं। वे एकमात्र स्त्रियोंको ही भीतर जाने देती थीं। सम्राट्की जननी, धात्रीगण, बहुत सी स्त्रियाँ, बहुतसी कन्यायें, बहुतसी पुत्रबधुएँ और बहुतसी आत्मीया रमणीगण इस मेलेमें आती थीं, उनकी अगणित दासियाँ वहाँ उपस्थित रहती थीं। राज्यके मुसल्मान प्रधान पुरुषोंकी स्त्रियों और कन्याओंके दलके दल आते थे। लिखा है, राजपूत-ललनायें बहुतसी दासियोंके साथ इस मेलेमें आती थीं। यहाँ पर रमणियाँ ही बेचती थीं और रमणियाँ ही खरीद करती

थीं। रमणियाँ यहाँ बहुत अर्थ व्यय करती थीं। बहुतसी रमणियाँ यहाँ इकट्ठी होकर, परस्पर कथोपकथन करके, पुत्र-कन्याओंके विवाह स्थिर करती थीं। जहाँ सम्राट्की बहुतसी पुत्रवधू और लड़कियाँ इकट्ठी होकर आमोद करती थीं, बन्धुओंकी स्त्रियाँ इकट्ठी होती थीं, उस स्थान पर सम्राट्समान व्यक्ति छद्मवेशसे प्रवेश करता था! क्या यह विश्वासयोग्य है? और यदि वह एक बार भी वहाँ छद्मवेशसे जाते और एक बार भी किसी रमणीसे दुर्व्यवहार करते, तो क्या हिन्दू-मुसल्मान सम्भ्रान्त पुरुष प्राणाधिक स्त्री और कन्याओंको प्रति-वर्ष वहाँ भेजते? और ऐसा होनेसे क्या वह मेला प्रतिवर्ष समभावसे अनुष्ठित और बिना किसी दुर्घटनाके परिसमाप्त होता? अन्तःपुरचारिणियोंके लिये, ऐसा मेला उस समयके अनुदार हिन्दू-मुसल्मान कब सह सकते थे? अब भी तो देख-नेमें आता है, कि बहुतसे कूपमण्डूक हिन्दू-ललनाओंके राज-पथपर निकलने, शिक्षित होने और जूता पहननेपर बहुत कुछ हँसी उड़ाते हैं। मुसल्मान और अनुदार बदाऊनीने परिताप करके लिखा है,—"सम्राट्ने इसलाम-धर्मको नष्ट करनेके लिये असूर्य्यम्पश्या मुसल्मान-ललनाओंको इस मेलेमें समागत होनेका नियम किया था।" विस्मयका विषय क्या है, यदि और किसीने और किसी भावसे परिचालित होकर और भी अतिरञ्जित उक्तिका प्रचार किया हो? विचित्र क्या है, यदि किसी अनुदार हिन्दूने हिन्दू-रमणियोंको मुसल्मानोंके

मेलेसे दूर रखनेके लिये झूठका आश्रय लेकर, अथवा अकबर के किसी विद्वेषीने राजपूतों को सम्राट् के विरुद्ध उत्तेजित और प्रवर्त्तित करनेके लिये दुरभिसन्धिसे ऐसा अलीक अपवाद प्रचार किया हो। बदाऊनीने सम्राट्को बहुत निन्दा की है, यदि वह मेले के सम्बन्धमें और कुछ बुराई करनेकी सुविधा पाता, तो अवश्यही उसे लिपिबद्ध करता।

बदाऊनीने लिखा है—"हिन्दू-योगियोंने सम्राट्को अत्यल्प परिमाणमें स्त्री-सम्भोग करनेके लिये उपदेश दिया था। इसीसे वह बहुत थोड़ी देर अन्तःपुरमें रहते थे।" अबुलफ़ज़लने लिखा है, "सम्राट् कहते थे—'मैंने इस समय जो ज्ञानलाभ किया है, यदि वह मुझको पहले मिलता, तो मैं अपने साम्राज्यसे स्त्री-निर्व्वाचन न करता। क्योंकि मेरे साम्राज्यके सबही मनुष्य मेरी सन्तानके सदृश हैं।" सम्राट्ने देशकी दुर्नीति दूर करनेकी ग़रज़से, वेश्याओंके लिये एक पृथक् स्थान निर्दिष्ट कर दिया था। वह नगरके हर किसी स्थानमें नहीं रह सकती थीं। जहाँ वह रहतीं थीं, उसका नाम सम्राट्ने शैतानपुर रक्खा था। वहाँ एक आफ़िस बना दिया था। जो मनुष्य वहाँ जाते-आते थे अथवा अभिसारिकाओंको अपने घर लाते थे, उनके नाम-धाम इस आफ़िसके कर्मचारी लिख लिया करते थे। सम्राट्ने एकबार प्रधान-प्रधान अभिसारिकाओंको बुलाकर पूछा,—"सबसे पहले तुमलोगोंके

सतीत्वको किसने नष्ट किया था ? इसमें बहुतसे प्रसिद्ध, विश्वास-भाजन, उच्चवंशीय महापुरुषोंके नाम प्रकाशित हुए। सम्राट्‌ने उन सबको दण्डित किया, अनेकोंको बहुत दिनतक जेलमें रखा। सम्राट् महायोगियोंकी भाँति कहा करते थे,—"यदि मुझको इस सुविस्तृत साम्राज्यके शासन करनेके लिये कोई उपयुक्त मनुष्य मिल जाता, तो मैं यह भार उसके कन्धोंपर डालकर विदा होजाता।" वह सदैव कहा करते थे, "ईश्वरसे मेरी सदैव यही प्रार्थना है, कि जब मेरी चिन्ता और मेरे कार्य उसको प्रीतिप्रद न होवें, तभी यह जीवन भी शेष हो जावे ; जीवित रहकर उसकी अप्रसन्नताको मैं बढ़ाना नहीं चाहता।" उस समयके हिन्दू और मुसल्मान सम्राट्‌को ऋषिवत् समझते थे। उनके आशीर्वादसे कठिन पीड़ा आरोग्य होती है, पुत्रकन्या-लाभ होता है, अभीष्ट-सिद्धि होती है, ऐसा लोगोंका विश्वास था। इसलिये दलकेदल प्रतिदिन उनके पास आकर आशीर्वाद लेते थे। आज कितनी शताब्दियाँ बीत गई हैं,सम्राट् समय-स्रोतमें अदृश्य होगये हैं,तथापि आज भी कितनेही हिन्दू-मुसल्मान उनकी समाधिके पास खड़े होकर, अभीष्ट-लाभके लिये, कातर हृदयसे प्रार्थना करते हैं। ये सब क्या पशुके लक्षण हैं ?

फ़रिश्ताने लिखा है,—"अकबर अनेक सद्‌गुणोंसे विभूषित थे। उन्होंने शिक्षा-विस्तारमें सहायता की थी। वह इतिहास-पाठमें परम आनन्द लाभ करते थे। उनमें दया-दाक्षिण्य

अधिक था। संक्षेप यह, कि उनकी गुणावली ऐसे चरमोत्-कर्ष पर पहुँच गई थी, कि वह दोषोंमें गिनी जाने लगी थी। उन्होंने ऐसे काम बहुत किये थे, जो महान् नरपतिको करने उचित नहीं थे, परन्तु ऐसा काम उन्होंने एक भी नहीं किया था, जो सज्जनोचित नहीं था।" टाड साहबने इसी विषयमें लिखा है,—"मेवाड़के कविने भी अकबरकी बहुत प्रशंसा की है और फ़रिश्ताने उन वाक्योंका समर्थन किया है। कविने कहा है,—'एकमात्र अकबरही पृथ्वीपर प्रतापके साथ तुलनीय है।" इससे बढ़कर अकबरकी और प्रशंसा क्या हो सकती है? उन्होंने मेवाड़, चित्तौड़ और प्रतापका अनिष्ट साधन किया है, और प्रतापने उनकी प्रतिकूलता करके मेवाड़के उपास्य देवताओंमें स्थान पाया है। आज भी हिन्दू लोग उनकी वीरगाथा सहस्र रसना और सहस्र भावसे कीर्त्तन करके दुःख में शान्तिलाभ करते हैं। उसी मेवाड़-सूर्यके साथ मेवाड़-कविने अकबरकी तुलना की है! इससेही अकबर-चरित्र का सुस्पष्ट परिचय मिलता है। उनके परम शत्रुका कवि यदि पशु कह सकता, तो कभी उनकी अपने देवतासे तुलना न करता। प्रतापके उपयुक्त वंशधर मेवाड़के महाराज राजसिंह*

* महाराणा राजसिंह औरंगज़ेब के जमाने में हुए हैं। रूपनगर की राजकन्या चञ्चलकुमारी के कारण उनका युद्ध औरंगज़ेब से हुआ था। उन्होंने अपने वीरत्व और युद्धकला-कौशल से औरंगज़ेब को दिन में तारे दिखलाये और चञ्चलकुमारी को दिल्ली न जाने दिया।—अगर आप ये सब जानना चाहते हैं, तो हमसे "राजसिंह" नामक उपन्यास मँगाइये। दाम १॥) डाक महसूल।)

ने लिखा है,—"सम्राट् अकबरने न्यायानुसार साम्राज्य-शासन किया है, सभीके धनप्राणकी रक्षा की है, ईसाई, मुसल्मान, हिन्दू इत्यादि प्रत्येक जातिको सुखस्वच्छन्दसे संस्थापन किया है, सबहीके साथ समभावसे स्नेह किया है। इसीलिये उनके प्रजापुञ्जने कृतज्ञहृदयसे 'जगत्गुरु' उनके नामके साथ संयुक्त किया है।" पिशाच क्या 'जगत्गुरु'की पदवी पा सकता है? अकबर यदि एक स्त्रीका भी सतीत्व नष्ट करता, तो क्या महाराणा राजसिंह अकबर की 'जगत्गुरु'की पदवीका इस भाँति समर्थन करते?

जिन टाड साहबने अकबरकी कितनीही निन्दा की है, वह भी यह लिखने पर बाध्य हुए हैं,—"अकबरकी उच्च आशा से राजपूतोंके शरीरमें जो घाव उत्पन्न हो गये थे, शेषमें अकबर उनको आरोग्य करनेमें समर्थ हुआ और लाखों मनुष्योंसे ऐसी प्रशंसा प्राप्त की, जैसी उसकी जातिके किसीने भी प्राप्त नहीं की। उसने अपनी गुणावलीकी सहायतासे राजपूतोंको वशमें कर लिया था, उनको लौह शृङ्खल सोनेकी कर दी थी।" सम्राट् अकबर यदि राजपूत-ललनाओंका सतीत्व नष्ट करते, तो क्या वह घाव आरोग्य कर सकते? गुणों द्वारा राजपूतोंको वश करनेमें समर्थ होते? क्या इतनी प्रशंसा प्राप्त करते?

ह्वीलर साहब अकबरकी भूयसी निन्दा करने पर भी, यह लिखे बिना न रह सके,—"अकबर यदि निर्दय और रक्त-

लोलुप होते, तो वह हत्याकाण्ड और आतङ्क विस्तार करके विद्रोह दमन कर सकते थे। परन्तु ऐसा होनेसे इतिहास उनको अपनी छातीपर लेकर समुज्ज्वल नहीं रह सकता था, वह भी अपनी पश्चाद्गामिनी वंशावलीके परिचालनके निमित्त तथा समग्र जगत्के शिक्षादानके लिये, अपने पीछे उत्कृष्ट राजनीतिक मत छोड़ देनेमें समर्थ न होते। एलफ्रेड जिस प्रकार इंग्लैण्डके आदर्श नरपति थे, अकबर भी उसी तरह भारतवासियोंके आदर्श सम्राट् थे।" ब्लाकमैन साहब ने लिखा है,—"प्रजा मुग़ल-सम्राटोंमें एकमात्र अकबरकोही आदर्श पिता कहती और समझती थी।" मेलेसन साहबका मत फिरसे लिखने योग्य है,—"मनुष्य-जातिके दुःखदुर्दशाके समय, उसको सुख-शान्तिके पथपर पुनः-पुनः प्रवर्तित करनेके लिये, ईश्वर समय-समय पर करुणा करके जिन अति प्रतिभान्वित मनीषीगणको जगत्में भेजा करते हैं, अकबर उनमेंसेही एक थे।"

अब प्रश्न यही है, कि जो मनुष्य कपट-प्रबन्ध करके अथवा बलपूर्वक सतीका सतीत्व नष्ट करता है, क्या उसको लोग आदर्श सम्राट्, आदर्श पिता, ईश्वर-प्रेरित व्यक्ति, धार्मिक और जगत्गुरु कह और समझ सकते हैं? यदि राजपूत-ललनागण सतीत्वरक्षाके लिये ज्वलन्त चितामें प्रवेश न करतीं, यदि वह छुरीके व्यवहारमें अनभ्यस्त होतीं, यदि राजपूतोंमें प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति न होती, यदि जहर-व्रत केवल औपन्यासिकके मस्तिष्क

से प्रसूत हुआ होता, तो टाड साहबके निन्दावाद पर विश्वास कर सकते थे। और यदि अकबरसे ऐसा गर्हित कार्य्य हुआ होता, तो सतीत्व और वीरत्वका लीलाक्षेत्र राजस्थान बहुत पहलेही प्रज्वलित होकर उनको दग्ध कर देता, उनके स्नेहमें कभी भी आबद्ध न होता, उनके लिये आनन्दसे आत्मोत्सर्ग प्रदान न करता।

अकबरकी सबनेही बहुत प्रशंसा की है। मुहम्मदअमीनने लिखा है,—"अकबरने समुदय साम्राज्यपर न्याय और दृढ़तासे सुशासन करके, भारतकी विभिन्न जातियोंमें सम्पूर्णरूपसे शान्ति स्थापन की थी।"

अँगरेज़ोंने ईस्ट इण्डियन रेलवेके टाइमटेबिलमें लिखा है,—"महान् अकबर प्राच्य प्रदेशका नेपोलियन था।" वस्तुतः दोनों महापुरुषोंमें कैसा सुन्दर सादृश्य है!

अमेरिकाके एक अँगरेज़ने लिखा है,—"जितने पुरुषोंने राजदण्ड धारण किया है, उनमें अकबर एक सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति था।"

भारत-रत्न रमेशचन्द्रदत्तने लिखा है,—"पृथ्वीने अकबरके समान महाप्राज्ञ और महदन्तःकरणवाले सम्राट्के कदाचित् ही दर्शन किये हों।"

एलफ़िन्सटन साहबने लिखा है,—"अकबर अपनी शासन-नीतिके लिये सर्वोत्कृष्ट नरपतियोंमें गणना किये जाने योग्य है। इसका शासन-काल मनुष्य-समाजके सुखका निदान था।"

लेनपूल साहबने लिखा है,—"सम्राट् अकबरने बहुजाति और बहुस्वार्थमय साम्राज्यपर इस प्रकार शासन किया था, कि वह प्राच्य जगत्‌के सबही नरपतियोंको अतिक्रम कर गये थे। यहाँतक कि यूरोपके सर्वप्रधान और सर्वोत्कृष्ट नरपतियों के साथ भी उनकी तुलना की जासकती है।"

टाड साहबने लिखाहै,—"अबुलफ़ज़लके ग्रन्थसे निःसन्देह प्रमाणित होता है, कि अकबर प्रतिभाशाली और सहृदय व्यक्ति थे। हम उनकी फ्रांसराज चतुर्थ हेनरी, जर्मनी और स्पेनके अधिपति चार्लस पञ्चम, अथवा गौरवान्वित ब्रिटन-ईश्वरी एलिज़ाबेथसे तुलना कर सकते हैं। अकबर अपने समसामयिक यूरोपके राजाओंसे तुलनामें किसी भाँति कम नहीं थे।"

अति प्राचीन समयसे वर्त्तमान समय पर्यन्त जिन प्रसिद्ध व्यक्तियोंने भूमण्डलपर जन्मग्रहण किया है, उनकी जीवनियोंसे पूर्ण Geographical Treasury नामक ग्रन्थमें लिखा है,—"अकबर न्याय, दया, साहस और विद्यानुरागके लिये ऐसा चरित्र छोड़ गये हैं, कि पृथ्वीके किसी देश, किसी धर्मका कोई सम्राट् कदाचित्‌ही उनको अतिक्रम करनेमें समर्थ होगा।"

स्मिथ साहबने लिखा है,—"अकबर और उनके अमात्य अबुलफ़ज़लको महती इँग्लैण्डेश्वरी एलिज़ाबेथ प्रभृति यूरोप के उस समयके सम्राटों और सचिवगणोंसे तुलना करने पर विस्मित होना पड़ता है, कि अकबर और अबुलफ़ज़लने

सत्यही ईसाई-धर्म की विशुद्ध नीति समर्थन और अनुसरण की थी। अकबर-चरित की जितनी ही आलोचना की जाती है, उनका गौरव उतना ही उज्ज्वलतर भावसे प्रकाशित होता है। कविवर वर्ड्सवर्थ लिखित यह यशोगाथा एकमात्र अकबर के ही उपयुक्त है—"अँधेरे आकाश में तुमने क्षणप्रभा वितरण की है, तथापि समय के अनन्त आकाशमें उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति तुम स्थिर, उज्ज्वल और सगौरव प्रज्वलित हो रहे हो।"

महात्मा अबुलफ़ज़ल ने सत्य ही लिखा है,—"सम्राट्ने इस विस्मयकर पृथ्वी को नये वर्ण से सुसज्जित किया है। वह महान् ईश्वर की सुन्दर सृष्टि के आभरण हैं।" भारत में ऐसे स्वदेशप्रेमी का क्या फिर कभी आविर्भाव होगा? क्या भारत फिर कभी ऐसे महापुरुष द्वारा परिचालित होकर उन्नतिके पथ पर धावित होगा?

बाईसवाँ अध्याय ।

यवनिका पतन ।

Aurungzebe demonstrated to conviction that highest order of talent, either for government or war, though aided by unlimited resources, will not suffice for the maintenance of power, unsupported by the affections of the governed. —**Tod.**

सन्ध्याके समय जिन नौकाओंने नदी-तीर पर इकट्ठी होकर, हृदयस्थित दीपावली और नदी-जलमें प्रतिविम्बित असंख्य आलोक-लहरीयों से नदी की शोभा सम्पादन कर रक्खी थी, वह इस समय अन्तर्हित होगई हैं, वह दीपावली बुझ गई है, वह शोभा अदृश्य होगई है। इस समय उस नदी की रेतीली भूमि पर केवल भूखे कौवे कलरव कर रहे हैं।

कुमार सलीम 'सम्राट् जहाँगीर' नाम ग्रहण करके, अवल-

फ़ज़लके रुधिररञ्जित कलङ्क-किरीट को शिरपर रखकर सिंहासन पर बैठा है। इस समय सिंहासन-लोलुप पुत्र ख़ुसरो जेलमें है और उसके ७०० अनुचरोंको शूली मिल चुकी है। एक रूपवती ललनाके स्वामी को मारकर उससे विवाह कर लिया है। इस समयसे यही बेगम नूरजहाँ साम्राज्यकी प्रकृत अधीश्वरी होगई। सम्राट् अकबरने भारत की उन्नति की कामनासे जो उपाय अवलम्बन किये थे, अब वह सब छोड़ दिये गये; हिन्दू-मुसल्मानोंके सम्मिलन की चेष्टा भारतसे सदैवके लिये विदा होगई। अकबरके समयमें जो साम्राज्य हिन्दू-मुसल्मानोंका सम्मिलित साम्राज्य था, जहाँगीरने इस समय उसको एकमात्र मुग़ल-साम्राज्यमें परिणत कर दिया। वह हिन्दुओंसे घृणा करने लगा, शरीरमें हिन्दूरक्त प्रवाहित होनेके कारण लज्जा बोध करने लगा। उसका किसी धर्म पर विश्वास नहीं था, परन्तु मुसल्मानों को आकृष्ट करने की इच्छासे उसने इसलाम-धर्मको पुन: भारतमें प्रतिष्ठित किया, मुसल्मानों का प्राधान्य स्थापित किया, मुसल्मानों को प्राणदण्ड का भय दिखलाकर हिन्दुओं को कन्यादान करने का निषेध किया, पठानों को भारतसे विताड़ित करने का सङ्कल्प कर लिया, परन्तु साहस न होनेके कारण अग्रसर न हो सका। वह अत्यधिक सुरापानमें दिनरात अतिवाहित करने लगा। उसने अत्याचार और उत्पीड़नसे चारों दिशाओं को आतङ्कित कर दिया। अकबरकी शासन-शृङ्खला

विशृङ्खलामें परिणत हो गई। प्रधान पुरुष रिशवतें लेकर और प्रजापीड़न करके अर्थ-सञ्चय करने लगे। केवल अकबरके शासन-गुणसे ही मुग़ल-साम्राज्य अभी तक ध्वंस होनेसे बचा हुआ था। उसका पुत्र शाहजहाँ सिंहासन-लोलुप होकर विद्रोही होगया। जहाँगीर सेनापतिके हाथमें वन्दी हुआ; पीछे स्वाधीन होने पर भी बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहा। बाईस वर्ष राज्य करके १६२७ ई० में मर गया।

शाहजहाँने बहुतसे स्वजनों को निहत करके सिंहासनारोहण किया और अत्यधिक इन्द्रिय-सेवामें रत होगया। राजपूत कविने सत्य ही लिखा है,—"वह रमणी का दास था।" उसके अत्याचारसे देश जर्ज्जरित होगया। सन् १६२९-३० ई० में, दक्षिणमें भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। उसने लाहौर का गिर्जा विध्वंस करा दिया और आगरेके गिर्जे का कुछ अंश तुड़वा दिया। फ़रिश्ताने लिखा है,—"वह हिन्दुओं के देवालय और मूर्त्तियों का चूर्ण करने लगा। हिन्दू उसमें बाधा देने पर निष्ठुर रूपसे मारे गये।" उसने भारतमें इसलाम-धर्म फिरसे प्रतिष्ठित किया। फ़ारस देशके राजदूतने सम्राट्के सामने ही कहा,—"मुग़ल-साम्राज्य का पतन आरम्भ होगया है।" ह्वीलर साहबने लिखा है कि जहाँगीर और शाहजहाँके समान उत्पीड़क और निर्लज्ज सम्राटोंने कदाचित् ही किसी सिंहासन को कलङ्कित किया हो। किन्तु उनके ताजमहल, मोती मसजिद और दीवान-

ख़ास प्रभृति दिल्ली और आगरेके अतुलनीय प्रासादोंने उनको चिरस्मरणीय कर रक्खा है।

शाहजहाँके चार पुत्र दारा, शुजा, औरङ्गजेब और मुराद थे। औरङ्गज़ेब प्रवञ्चक, निष्ठुर और हिन्दू-विद्वेषी था। पिताके वर्त्तमान रहते पुत्र सिंहासनके लिये लालायित हुए। औरङ्गज़ेब मुराद को सिंहासन प्रदान करके स्वयं फ़क़ीर हो जानेके आश्वासन-माधुर्य्यमें प्रलुब्ध करके और जाल में फँसाकर, दाराको पराजित और शुजाको विताड़ित करके, मुराद को शराब की बेहोशीमें लात मारकर और बन्दी करके, दारा और मुरादके तीन पुत्रों की हत्या करके एवं पिताको कारारुद्ध करके सम्राट् हुआ (१६६८ ई०)। पीछे मुराद का सुविचार करके उसको प्राणदण्ड दिया। विधर्मी होने का दोषारोपण करके दाराका शिरच्छेदन किया। पीछे भ्रातृशोकसे अधीर होकर रोने लगा। इसके पीछे दारा के शिर को एक मनोहर आधार पर रखकर पिताके पास भेजा। शाहजहाँने ज्योंही उसको खोला, त्योंही चीत्कार करके पुत्रशोकसे मूर्च्छित होगया। शाहजहाँने ३० वर्ष राजत्व करके और ७ वर्ष हतभाग्य बन्दी का जीवन वहन करके १६६६ ई० में प्राणत्याग किये।

औरङ्गज़ेबने हिन्दुओंके ऊपर लोमहर्षण अत्याचार आरम्भ किया। हिन्दुओं की मूर्तियों को खण्ड-खण्ड करना आरम्भ किया, असंख्य हिन्दू-देवालयों को ध्वंस करके उनके स्थानोंपर

मसजिदें बनवाईं और तलवारके बलसे हिन्दुओं को मुसल्मान करनेमें प्रवृत्त हुआ। बर्नियर साहबने लिखा है,—"हिन्दू ग्रहणके समय औरङ्गज़ेब को एक लाख रुपया न देने तक यमुना-जलमें स्नान नहीं कर सकते थे। उसने हिन्दुओंके ऊपर जज़िया कर लगाया। वह लोग उस करसे छुटकारा पाने की आशासे, उसके पास आवेदन करने गये। उसने उन लोगों को हाथी और घोड़ोंके पैरोंके नीचे कुचलवाकर मरवा डाला; भारत में मुसल्मान-धर्म प्रतिष्ठित किया। हिन्दुओंको राजकार्यसे विताडित करके, उनकी जगह एक-मात्र मुसल्मान ही मुसल्मान भरती करने का हुक्म दिया। हिन्दू-मुसल्मानोंमें हिंसानल पूर्णमात्रामें प्रज्वलित किया।

बर्नियर साहब ने उस समय की भारतकी दुरवस्था को देखकर लिखा है,—"सम्राट् अत्यन्त स्वेच्छाचारी हैं। उनके वाक्य और कार्य का प्रतिवाद करने की क्षमता किसीमें नहीं है। राजपुरुष निम्न श्रेणीवालों पर अत्यन्त अत्याचार और उत्पीड़न करते हैं। यदि कोई परिश्रम करके अर्थ सञ्चय करता है, तो राजपुरुष उसको बलपूर्वक छीन लेते हैं। जनसाधारण दासरूपमें परिणत होगये हैं। वाणिज्यमें विघ्न होते हैं और सर्वसाधारण दीनहीन भावसे कालातिपात करते हैं। राजपुरुषों के भयके मारे कोई मनुष्य अर्थ उपार्जन करके भी सुख नहीं भोग सकता है। धन को ज़मीनमें गाड़कर रखते हैं। अत्याचारके कारण किसान और श्रमजीवी मनुष्य जीवनोपायसे

वञ्चित होगये हैं। जब तक बल प्रयोग न किया जाय, किसान ज़मीन जोतना नहीं चाहते। नहरों की कोई मरम्मत नहीं कराता है। लोगोंके रहनेके घर भग्नावस्थामें पड़े हुए हैं; कदाचित् ही कोई उनकी मरम्मत कराता है या नया घर बनवाता है। क़ाज़ी लोग विचार विक्रय कर रहे हैं। देश दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त होगया है। सम्राट् समुदय सम्भ्रान्त कर्मचारियोंका एकमात्र उत्तराधिकारी है। उनके मरते ही उनकी सारी सम्पत्ति सम्राट्के पेटमें जाती है। मृत कर्मचारी की सन्तान एक प्रकारसे भीख माँगने को बाध्य होती है। यही लोमहर्षण प्रथा शाहजहाँके समयमें भी प्रचलित थी। समग्र देश गम्भीर अन्धकारसे समाच्छन्न हो रहा है।"

औरङ्ग़ज़ेबके अविचार और अत्याचार का प्रतिवाद करके मेवाड़के महाराणा राजसिंहने जो पत्र लिखा था, उससे भी उस समय की देशकी अवस्था ज्ञात होती है। उन्होंने लिखा था,—"आपके समयमें देश अबाधित भावसे लुटता और तबाह होता है, प्रजा पैरों तले कुचली जाती है, राजपथ जनशून्य होगये हैं। प्रत्येक प्रदेश दीन दशा को पहुँच गया है। साम्राज्य का भी दिन-दिन ह्रास होता जाता है। जब सम्राट् को अर्थ का अभाव हुआ है, तब सम्भ्रान्तगणकी दुरवस्था की सीमा नहीं रही है। सैन्यगण वीतश्रद्ध होगये हैं, असन्तोष फैला हुआ है। वणिक असन्तुष्ट हो रहे हैं, हिन्दू लोग रोटीके टुकड़े तक को मुहताज हैं। जनसाधारण

ऐसी दुर्दशामें पड़े हैं, कि दिनरातमें किसी प्रकार एक बार मात्र भोजन कर पाते हैं, क्रोधित और हताश हो-होकर शिर पीटते हैं। जो सम्राट् ऐसी दुरवस्थापन्न प्रजासे अत्यधिक कर वसूल करनेके लिये अपनी समुदय शक्ति लगाता है, उसका साम्राज्य क्या कभी स्थायी हो सकता है? यदि आपको किसी ईश्वर-प्रेरित ग्रन्थ पर विश्वास हो, तो पढ़िये। उसके पढ़नेसे जान सकोगे, कि ईश्वर समग्र मानव-जाति का ही ईश्वर है, वह एकमात्र मुसल्मानों का ही नहीं है। उसीने हिन्दू-मुसल्मानों की सृष्टि की है, वह सब को समभावसे देखता है। मसजिद में उसीके नामसे प्रार्थना होती है, देवालयमें शंख-घण्टे उसीकी पूजाके लिये बजाये जाते हैं। आप हिन्दुओंसे जज़िया कर वसूल करना चाहते हैं, यह न्याय-विगर्हित और राजनीति-विरुद्ध है। इससे देश दरिद्र हो जायगा, हिन्दुओंके अधिकारोंमें हस्तक्षेप होगा। आप यदि अपने धर्मके लिये यह कर स्थापन करनेमें दृढ़प्रतिज्ञ हुए हैं, तो उसको सबसे पहले राजा रामसिंह और मुझसे वसूल कीजिये। यदि आप ऐसा न करें, तो चींटी और मक्खियों पर अत्याचार करना भद्र पुरुष का कर्त्तव्य नहीं है। यह बड़े विस्मय का विषय है, कि आपके अमात्योंने आपको साधुता और सम्मानके पथ पर चलने की शिक्षा बिल्कुल ही नहीं दी!"

दाम्भिक राजा सदुपदेशसे क्रोधान्ध हो जाते हैं। पदतल-

स्थित भीरु और कापुरुष प्रजा कभी उनका अनिष्ट साधन नहीं कर सकती है, इसी विश्वाससे वह लोग स्वेच्छाचारी हो जाते हैं। वह लोग अहङ्कारसे अधीर होकर यह भूल जाते हैं, कि एक छोटी सी आग की चिनगारी भी सर्वनाश कर सकती है। औरङ्ग़ज़ेबके अत्याचारसे भारत की हिन्दू-शक्ति प्रज्वलित होउठी और चारों ओरसे लोलजिह्वा विस्तार करके सुविस्तृत और सुसमृद्ध मुग़ल-साम्राज्य को भस्मीभूत करनेके लिये उद्यत होगई।

राजस्थान औरङ्ग़ज़ेबके विरुद्ध खड़ा होगया। वह भी उसके फलवान् और मूल्यवान् वृक्षों का छेदन करने लगा, गाँव पर गाँव लूटने और जलाने लगा, बालक-बालिकाओं और अबलाओं को बन्दी करने लगा; तथापि राजपूत पराक्रम दिन पर दिन भीषणसे भीषणतर होने लगा। दूसरी ओर दक्षिण में महाराज शिवाजी आविर्भूत होकर महाराष्ट्रीय शक्ति को सञ्जीवित और मुग़ल-साम्राज्य को चूर्ण करने लगे। शेषमें, उनके मरने पर औरङ्ग़ज़ेब साहस का अवलम्बन करके स्वयं रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ। परन्तु उसकी क्या शक्ति थी, जो प्रज्वलित हिन्दू शक्ति को नष्ट कर सकता? महा महाराष्ट्रीय प्रतापसे मुग़ल-विपुलवाहिनी केवल पराजित, विनष्ट और विताड़ित होने लगी। शेषमें, औरङ्ग़ज़ेब बड़े कष्टसे आत्मरक्षा करके, बची हुई सेना सहित भागकर, अहमदनगर पहुँचा। अब उसकी समझमें आया, कि उसकी अदूरदर्शी नीतिने मुग़ल-साम्राज्यका सर्वनाश

साधन किया है। इसीसे उसने अपने पुत्रों को लिखा,—"मैंने अनेक पापकार्य किये हैं, नहीं मालूम मुझे क्या दण्ड मिलेगा! मैं इस साम्राज्य की रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुआ हूँ। मैंने अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ ही नष्ट किया है। मैं और मेरी सेना पारेकी भाँति अस्थिर और भीतविह्वल है। अब जो होना है सो होगा, मैंने तो नौका पानीमें डालदी है। विदा! विदा!" सम्राट्कुलकलङ्क औरङ्गज़ेबने ४९ वर्ष राज्य करके, ८९ वर्ष की वयस में सन् १७०७ ई० में, इस स्थान पर प्राणत्याग किये।

सम्राट् अकबरने जिस नीति का अवलम्बन करके भारतवर्ष को उन्नत किया था, महाशक्तिशाली विशाल साम्राज्यमें परिणत किया था, उनके वंशधरोंमेंसे किसीने भी उस नीतिका अनुसरण नहीं किया। उन्होंने युक्ति को विदा करके, लक्ष्य को खोकर, पक्षपातसे अन्धे होकर, भारत को अधोगतिके पथ पर परिचालन किया। अकबर की सारी चेष्टायें, सारा परिश्रम व्यर्थ किया। मैलेसन साहबने लिखा है,—"अकबरने जिस नीति का अनुसरण करके मुग़ल-साम्राज्य स्थापन किया था, यदि वह नीति परित्यक्त न होती, तो मुग़ल-साम्राज्य का पतन न होता।" लेनपूल साहब और टाडने लिखाहै,—"औरङ्गज़ेब की मृत्युसे बहुत पहले ही मुग़ल-साम्राज्य इतना कम्पित होने लग गया था, कि पतनप्रायही होगया था।"

औरङ्गज़ेबके पीछे जिनलोगोंने "सम्राट्" उपाधि ग्रहण

को, वह लोग मुसल्मान अमात्योंके हाथ के खिलौने होगये । उनलोगोंका अस्तित्व, लीला और विलास सभी अमात्यगणकी स्वार्थपरता पर निर्भर रहने लगा। ये राजकर्मचारी स्वार्थ साधन के लिये आत्मद्रोह में निमग्न होगये और फ़ारस-राज नादिर-शाहको भारत-आक्रमणके लिये आह्वान किया। तदनुसार १७३९ ई० में, उसने आकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया, लाख डेढ़ लाख अधिवासियोंकी स्त्री-पुरुष के अभेद से हत्या की। पीछे सुप्रसिद्ध तख़्त-ताऊस प्रभृति करोड़ों रुपये के द्रव्यादि स्वदेश को ले गया। इसके पीछे नादिरशाह का सेनापति अहमदशाह दुर्रानी अफ़ग़ानिस्तानका अधिपति हो कर पुनः-पुनः भारतवर्षपर आक्रमण करने लगा। सन् १७५६ ई० में, तीसरी बार आक्रमण करके दिल्ली और मथुराको लूट कर, असंख्य भारतवासियों को निहत और वन्दी करके स्वदेश को लौट गया। एक ओर तो इन आक्रमणों से मुसल्मान-शक्ति कम्पित होने लगी; दूसरी ओर १७५७ ई० में अँगरेज़ों ने मीरज़ाफर की सहायता और विश्वासघातकता से सिरा-जुद्दौला को पलासी के युद्ध से विताड़ित करके, बङ्ग, बिहार और उड़ीसा से मुसल्मान-शक्ति को निकाल बाहर किया। अब भारतमें अयोध्या और हैदराबाद, यही दो उल्लेख-योग्य मुसल्मानी राज्य रह गये। १७६० ई० में, मैसूरके हिन्दू-राज्य के मुसल्मानों के हाथ में पड़ने पर भी भारत की हिन्दू-शक्ति प्रतिद्वन्दी-बिहीन रही, समग्र भारत में हिन्दूप्रताप विस्तृत

होगया, हिन्दू-पराक्रमसे मुसल्मान गौरव भारतसे सदैवके लिये विदा होगया।

हायरे वह हिन्दूप्रताप! तुम फिर कब आओगे? बर्नियर साहब ने औरङ्गज़ेब के समय में लिखा है,—"भारत में अब भी सौसे अधिक ऐसे हिन्दू-नरपति राज्य करते हैं, जो सम्राट् को कर प्रदान नहीं करते हैं। इनमेंसे १५।१६ राजा अत्यन्त ऐश्वर्यशाली और अत्यन्त क्षमताशाली हैं। उनमें मेवाड़ के महाराणा विशेष भावसे उल्लेख-योग्य है। यदि उनके साथ जयपुर के राजा जयसिंह और जोधपुर के राजा यशोवन्तसिंह मिल जाते, तो केवलमात्र यही तीन राज्य मुग़ल-साम्राज्य की प्रतिद्वन्द्विता करनेमें समर्थ होते, और उसको विपन्न कर सकते। उनमेंसे प्रत्येक मुग़लों की अपेक्षा उत्कृष्ट२० हज़ार अश्व-सेना रणक्षेत्र में ला सकते हैं। राजा जयसिंह की भाँति कार्यदक्ष पुरुष मुग़ल-साम्राज्य में दूसरा नहीं है। इसके अतिरिक्त सौ हिन्दुओं के बीच में केवल एक मुसल्मान है।" टाडने लिखा है, औरङ्गज़ेब के समय में राजस्थान का प्रत्येक राजा साहस और चरित्र में असाधारण था। इसके सिवा, पञ्जाबमें पुरुषसिंह गुरु गोविन्दसिंह ने आविर्भूत होकर, हिन्दू-मुसल्मानों को सम्मिलित करके, ऐसी पराक्रमशाली और दुद्धर्ष जाति सङ्गठन की, कि जो आज भी हिन्दूकुश की तुषारमय चोटीपर और सहारा की उत्तप्त मरुभूमिमें एक समान वीरत्व प्रदर्शन करके जगत् को विस्मय उत्पादन करती है, अन्धेरी

रातमें भी गौरवकी ज्योति विकीर्ण करती है । मध्यस्थलमें, भरतपुरके जाट नामक हिन्दू शक्ति सङ्गठन करने लगे, अपने प्रतापसे चारों दिशायें कम्पित करने लगे ।

औरङ्ग़ज़ेब के पीछे हिन्दू-शक्ति ने बढ़कर अपनी शिखा गगन तक ऊँची की । औरङ्ग़ज़ेब मर गया है, अब उसका सामना कौन करे ? कौन उसके निवारण को अग्रसर होवे ? मध्यस्थल से राजपूत और जाटों ने, दक्षिण से महाराष्ट्रों ने, पश्चिम से सिक्खों ने मुग़ल-साम्राज्य पर अधिकार कर लिया । इनके अतिरिक्त, नैपाल हिन्दू-शक्ति में अनुप्राणित होगया; कूचबिहार, टिपरा और मनीपुर हिन्दू-प्रताप विस्तार करने लगे । बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में हिन्दू ज़मीन्दारों ने शक्ति संग्रह कर ली । समुदय भारतवर्ष हिन्दू-गौरव से उद्भासित होगया । सबने समझ लिया, कि हिन्दुओंके दुःख के दिन गये । किन्तु हाय ! स्वार्थपरता से हिन्दुओंका सर्वनाश होगया । सिक्ख पञ्जाबको स्वाधीन करके ग्राम और नगर लूटने एवं असंख्य निरपराध स्त्री-पुरुषों को निहत करने लगे । वे अलग-अलग दलोंमें विभक्त होकर, रणजीतसिंहके समय तक आत्मकलह में रत रहे । समुदय राजस्थान फिरसे स्वाधीन होने पर भी, पिछले दुःख-दुर्दिनको स्मरण करके अन्य हिन्दू-शक्तिमें सम्मिलित नहीं हुआ, समुदय राजस्थान एक प्रबल हिन्दू राज्य स्थापन करनेके लिये भी अग्रसर नहीं हुआ । जाट लोग महाशक्तिशाली होकर चारों ओर लूटमार करने लगे । और

महाराष्ट्रों का तो कहना ही क्या था ? औरङ्गज़ेबकी मृत्युके पीछे वह लोग भारतमें प्रतिद्वन्द्वीविहीन होगये । उनकी शक्ति, उनका प्रताप भारत में परिव्याप्त होगया । परन्तु हाय ! उन्नतिके साथ वे लोग आत्मद्रोह में निमग्न हो गये । पेशवाओंने पूनामें, भोंसला ने नागपुरमें, सिन्धिया ने ग्वालियरमें, हुलकर ने इन्दौरमें, एवं गायकवाड़ ने बड़ौदा में पृथक-पृथक राजस्थापन किये, इस प्रकार महाराष्ट्रीय शक्ति का ह्रास किया; तथापि महाराष्ट्र भारतमें ऐसे शक्तिशाली रहे, कि क्षमता से अधीर होकर, भारतके सम्राट् होने का सङ्कल्प करके, कुछ जाट और कुछ राजपूत-सेना लेकर दिल्ली पर अधिकार कर लिया । उस समय अहङ्कार से अन्धे होकर जाटराज से कलहमें प्रवृत्त होगये । जाटोंने गर्वित महाराष्ट्रों को छोड़कर स्वदेश को प्रस्थान किया । महाराष्ट्रों ने भारत की समुदय हिन्दू-शक्ति सम्मिलित करने की कुछ भी चेष्टा नहीं की, एक चतुर्थांश हिन्दुओंके साथ एकता करनेकी भी चेष्टा नहीं की । पश्चात्तरमें, अयोध्याके नवाब और रुहेलखण्ड प्रभृति स्थानों के मुसल्मान अफ़ग़ान-राज अहमदशाह दुर्रानी से मिलकर महाराष्ट्रोंके विनाशके लिये अग्रसर हुए । कुरुक्षेत्रके भीषण मैदानमें भीषण युद्ध हुआ । हुलकर की विश्वासघातकता से महाराष्ट्र लोग पराजित हुए । उनकी दो लाख सेना निहत हुई (१७६०ई०) ।

तथापि हिन्दुओं को ज्ञानोदय नहीं हुआ, सम्मिलन की उपकारिता किसी की समझ में न आई, महाराष्ट्रों को

शिक्षा नहीं मिली। वह केवलमात्र स्वार्थपरता द्वारा परिचालित होकर राजस्थान, पञ्जाब, बङ्गाल, उड़ीसा—सारे भारत में लूटमार करके निरपराध हिन्दुओं को निहत करने लगे और उस लूट के माल के विभाग करने के लिये आत्मकलह करने लगे। यदि वह स्वदेशहितैषिता द्वारा परिचालित होते, भारत की हिन्दू-शक्ति के सम्मिलित करने के प्रयासी होते, तो हिमालय से रामेश्वर पर्यन्त एक महाबली हिन्दू-साम्राज्य स्थापन कर सकते, हिन्दू-गौरव से फिर पृथ्वी को उद्भासित करने में समर्थ होते। परन्तु भारत का भाग्य ऐसा कहाँ? इसी से महाराष्ट्र और राजपूत, सिक्ख और जाट लोगोंने भारत के रङ्गालय से मुसल्मानों को विताड़ित करके, भारत की राजशक्ति करायत्त करके, स्वार्थपरता का मूषल हाथमें लेकर, यदुवंशियों का अभिनय आरम्भ किया, आत्महत्या में प्रवृत्त हुए, साहस और पराक्रम द्वारा सब प्रकार से भारतको विदग्ध करने लगे। भारतकी विभिन्न जातियाँ, परस्पर की दुर्व्यवहार-परम्परा से, परस्पर सर्वनाशकी कामना करने लगीं। राजलक्ष्मी हिन्दुओं की शक्ति और समयका अपव्यवहार करते देखकर, उनके ऊपर वीतश्रद्ध होकर, और यह देखकर कि इन्होंने पूर्व्व में इतने दुःख पाकर भी शिक्षा ग्रहण नहीं की है, अँगरेज़ वणिकों के पास चली गई।

*　　*　　*　　*

*　　*　　*　　*

सहृदय अँगरेज़-जातिने फिर भारत को उन्नति के पथपर स्थापित किया। भारत की विभिन्न जातियोंने आत्मकलह परित्याग कर दियाँ। बहुतसी असभ्य जातियाँ सभ्य होने लगीं। वैदेशिक भीषण आक्रमणों का निवारण होगया। सहस्रों मील वनभूमि कर्षित होकर शस्यसम्पद् प्रदान करने लगी, नील और चा की विस्तृत खेती होने लगी। कलकत्ता, बम्बई, और मद्रास जैसे महानगरों ने मस्तक ऊँचा किया। कितने ही बन्दरगाह बन गये, कितनी ही खानोंका आविष्कार हुआ, कल-कारख़ाने स्थापित हुए, लोगोंके धनप्राण बहुत कुछ निरापद हुए। नगर-नगर में चिकित्सालय, विचारालय, विद्यालय प्रतिष्ठित होगये। व्यवस्था प्रणीत हुई। देशी साहित्यने नया जीवन लाभ किया। संवादपत्रोंका प्रचार हुआ। धर्म और समाज-संस्कार आरम्भ हुआ। स्वाधीन चिन्ता सञ्जीवित हुई। रेलपथ, राजपथ, तार, डाकख़ाने, ष्टीमर, नहरें और सबसे बढ़कर पाश्चात्यज्ञान देशके प्रभूत उपकार-साधनमें प्रवृत्त हुआ। ये सब भारत के सम्मिलन में सहायता करने लगे। भारत में नवयुग प्रवर्त्तित होगया। नव्यभारत की सृष्टि हुई। * * * * * *

* * * *

* * * *

स्वजातिको समय पर सावधान करने की वासना से टाड साहब ने लिखा है,—"मुग़लों के पतन के कारणों

की आलोचना करने से अति मूल्यवान् राजनैतिक शिक्षा मिल सकती है। वह शिक्षा नैतिक बल के अदृश्य होनेपर भी बहु-काल-स्थायी है, उसके प्रभाव बिना, केवल पाशव बलके ऊपर निर्भर रहनेसे विपद्के आनेकी सम्भावना सदैव रहती है। औरङ्गज़ेबने जब राजपूतों पर अश्रद्धा प्रकाशित की थी, उस समय वह अपनीही शक्तिकी दीवारकी जड़ काटता था। जब उसने सर्वसाधारणके मतकी अवज्ञा की थी, उस समय, उसकी मृत्युके बहुत पहले, अकबर-निर्मित सुविशाल साम्राज्य-सौध की जड़ हिलगई थी। इससे यह बात सुस्पष्टरूपसे प्रतिपन्न होती है, कि जो राज्य प्रजापुञ्जकी प्रीतिद्वारा समर्थित नहीं है, उस राज्यको सर्वोच्च श्रेणीकी शासन-प्रतिभा, सर्वोच्च श्रेणी की सैनिक-बुद्धि एवं अपरिसीम अर्थ और सैन्यबल कभी भी रक्षित करनेमें समर्थ नहीं होसकता है।"

वस्तुतः इस कारणसे ही पठान-साम्राज्यका पतन हुआ, मुग़लोंकी लीला शेष हुई, समुदय हिन्दू-साम्राज्यका अवसान हुआ। छोटे-छोटे बनिये लोग जिस प्रकार दिनभर परिश्रम करके सन्ध्याको लाभ-हानिका हिसाब लगाते हैं, उसी प्रकार हम भी इस पुस्तककी जीवन-सन्ध्यामें एक बार इसकी आलोचना करें, कि क्यों हिन्दुओंका पतन हुआ और क्यों वे पतित अवस्थामें ही पड़े हुए हैं।

देशकी शक्ति के मूल अभिज्ञात लोग हैं या जनसाधारण? अभिज्ञात-सम्प्रदाय बहुत थोड़ा है, और अन्य श्रेणी

महासमुद्र की वीचिमाला की तरह असंख्य है। यही श्रेणीक्त श्रेणी मन करते ही पर्वत-प्रतिम अर्थ संग्रह कर सकती है, विप्लव का प्रयोजन होने पर सबसे पहले शिर उठा सकती है, सङ्कल्प कर लेने पर असाध्य साधन कर सकती है। उसको एक शिरके अतिरिक्त और किसी क्षतिकी सम्भावना नहीं होती है, इसीसे उसमें साहस अपरिसीम होता है, आत्मोत्सर्ग-प्रदानमें सदैव तत्पर रहती है। पचान्तरमें, सम्भ्रान्तगणको शिरके अतिरिक्त सुख-ऐश्वर्य्य और मान-सम्भ्रम सबहीके नष्ट होनेकी आशंका रहती है; इसी कारण वह लोग विपद्की सम्भावना होनेपर, सत्कार्यमें भी अग्रसर होनेके अनभिलाषी और सहायता करनेमें भी पराङ्मुख रहा करते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे असंख्य जनसाधारणके ऊपर जातीय शक्ति निर्भर रहती है। वस्तुत: अभिज्ञातजन शरीरकी वर्ण-शोभा और जन-साधारण उसकी अस्थिमज्जा हैं। भारतके ऐसे हितकर, ऐसे अति प्रयोजनीय, ऐसे अगणित जनसाधारणोंकी उपेक्षा चिर-दिनसे होती है। राज्यशासनके विषयमें उनको कुछ भी क्षमता नहीं। जिस देशका राज्यशासन जनसाधारण पर निर्भर रहता है, उस देशके मङ्गल-साधनका भार बहुत से व्यक्तियों पर रहता है। कुछ अंश स्वार्थसाधनमें उद्यत होने पर भी, देश का अनिष्ट साधन करने में समर्थ नहीं हो सकता। परन्तु जहाँ राज्यशासन-भार एकमात्र राजा और कतिपय अभि-ज्ञात लोगों के ऊपर रहता है, उस देशका मङ्गल केवल थोड़े

से मनुष्योंकी शुभ इच्छापर निर्भर रहता है। उनके स्वार्थ साधन पर उद्यत होनेसे ही समग्र देशका सर्व्वनाश हो जाता है। प्राचीन भारतमें परोपकारी, निःस्वार्थी महर्षि लोग समाजके शीर्ष स्थानपर रहकर, राम और युधिष्ठिरके समान राजाओंको मङ्गल-पथपर परिचालन करते थे ; इसी कारण जनसाधारणके राजनीतिक विषयोंमें हस्तक्षेप न करने पर भी भारतवर्ष मङ्गल-पथपर अग्रसर होता था। बौद्धयुगमें भारतवासी ऐसे अनुदार और स्वार्थपर नहीं थे, जनसाधारण ऐसे लाञ्छित, उपेक्षित और अज्ञानान्धकारमें नहीं थे, अभिज्ञातलोग भी ऐसे स्वार्थपर नहीं थे, इसलिये उस समयमें भी भारतवर्ष गौरवान्वित हो सका था। उसके पीछे भारतवर्षने सम्पूर्णरूपसे परिवर्त्तित मूर्त्ति धारण करली। राजा और कतिपय अभिज्ञात लोग एकमात्र स्वार्थके प्रति दृष्टि रखकर राज्यशासन करते थे। इसीलिये मुसल्मानोंके अत्याचार और अङ्गरेज़ोंके आक्रमणके समय भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंके हिन्दू-नरपति, विपद्के गुरुत्वको समझकर और सम्मिलित होकर, एक पराक्रमशाली हिन्दू-राज्य गठन नहीं कर सके। ऐसा करनेसे प्रत्येक राज्यको बहुत अधिक परिमाणमें क्षति स्वीकार करनी पड़ती, स्वार्थत्याग करना होता, क्योंकि त्याग-स्वीकारके बिना सम्मिलन सम्भवपर नहीं। उस त्याग-स्वीकारके लिये कोई भी हिन्दू राजा प्रस्तुत नहीं था। पक्षान्तरमें, सभी अपना-अपना प्राधान्य प्रतिष्ठित करनेमें, स्वार्थसाधन

करनेमें, एक दूसरेसे समय-असमय समभावसे संग्राम करते थे।

स्वार्थपरताके दोषसे हिन्दू नृपतिगण सम्मिलित होकर एक प्रबल हिन्दू राज्य स्थापन करनेमें समर्थ नहीं हुए, परन्तु वह लोग विपद्-समयमें एक दूसरेकी सहायताको भी क्यों नहीं धावित हुए? जिस कारणसे वर्त्तमान समयमें एक शिक्षित पुरुष के अपमानित होनेपर, अन्य शिक्षित व्यक्ति उसके पास खड़े होनेपर भी सहायताको आगे नहीं बढ़ते हैं, उसी कारणसे एक हिन्दू राज्यके आक्रान्त होनेपर, अन्य हिन्दू राजा उसको सहायता प्रदान नहीं करता था। एकमात्र स्वार्थपरता ही इस विषम उदासीनताकी मूल है। हिन्दू-नृपतिगणको सम्मान और ऐश्वर्य्य किसीका भी अभाव नहीं था। उनके पास अधिक था, इसीसे अधिक क्षतिका भय था। इसीलिये मुसल्मानों या अङ्गरेज़ों द्वारा एक हिन्दू-राजाके आक्रान्त होने पर, उसका पार्श्ववर्त्ती हिन्दू-राजा सोचता था,—"आक्रमणकारीके विरुद्ध युद्ध करनेसे मेरे सुख-सम्मानकी वृद्धि नहीं होगी, एवं वर्त्तमान सुख-सम्मान सभी नष्ट हो सकता है, तो फिर मैं दूसरेके लिये क्यों ऐसे कार्य्यमें लिप्त होऊँ।" वरं उसने आक्रमणकारीको बलवान् समझकर, आशु लाभके लोभसे, उसी पक्षमें योगदान करके प्रतिवेशीका सर्वनाश किया है।

हिन्दू-नृपतिगणके अपने आप कर्त्तव्य-पथपर न चलनेपर

भी, उनको जनसाधारण क्यों मङ्गलपथपर नहीं चलाते थे ? जन-साधारण हिन्दू यदि पहलेसे राज्यशासनमें अभ्यस्त होते, राजनैतिक शिक्षा उनको प्राप्त हुई होती, सर्व्वोपरि सम्मिलित हो सकते, तो अपने राजाको परिचालन करनेमें समर्थ हो सकते। परन्तु वह सम्मिलित क्यों नहीं हुए ? सम्मिलित हो-कर अमेरिकाकी भाँति गौरवपथपर धावित क्यों नहीं हुए ? यदि एक रूस निकाल दिया जाय, तो अकेला भारतवर्ष समग्र यूरोपके बराबर है। जिस कारणसे वर्त्तमान समयमें अति उदार, अति शिक्षित अङ्गरेज़, फ्रेञ्च, जर्मन लोग सम्मिलित नहीं हो सकते हैं, उसी कारणसे अतीत भारतके विभिन्न प्रदेशवासी भी सम्मिलित नहीं हो सके। विभिन्न राज्य, विभिन्न भाषा, विभिन्न जाति, विभिन्न धर्म, और विभिन्न रीति-नीति सम्मिलनमें बाधक हैं। विशेष करके अनुदार भारतमें प्रत्येक प्रदेशवासी भिन्न भाषा, भिन्न जाति, भिन्न धर्म और भिन्न रीति-नीतिके मनुष्यको निकृष्ट समझते थे, उनको घृणाकी नज़रसे देखते थे। आज भी बङ्गाली लोग बिहार और उड़ीसावालोंको कैसी दृष्टिसे देखते हैं! उस समय भारतके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाना-आना सहज और निरापद नहीं था, एक प्रदेशके बहुतसे व्यक्ति दूसरे प्रदेशमें निरन्तर नहीं जाते थे, और जाते थे तो बहुत दिन ठहरते नहीं थे। इसी कारणसे भारतके विभिन्न प्रदेशवासी सम्मिलित नहीं हो सके, एकतामें आबद्ध होनेमें समर्थ नहीं हुए।

एक-एक प्रदेशके हिन्दू लोग परस्पर क्यों सम्मिलित नहीं हुए? इस समय भी हाट-बाज़ारमें, ग्राम अथवा नगरमें, यदि एक हिन्दू किसी मुसल्मानपर हमला करे तो वहाँके सबही मुसल्मान स्वजातिका पक्षावलम्बन करेंगे; परन्तु यदि बहुत से मुसल्मानों द्वारा एक हिन्दू आक्रान्त हो, तो और हिन्दू उसका पक्षावलम्बन नहीं करेंगे। क्यों? जाति-भेदका चिरस्थायी नियम सम्मिलन-सौहार्दकी प्रतिकूलता करता है। ब्राह्मण समझता है,—"मैं श्रेष्ठ हूँ, कायस्थ निकृष्ट है।" ऐसी अवस्थामें दोनोंके बीच अकृत्रिम सौहार्द कैसे संस्थापित हो सकता है? क्यों कायस्थ आज अपना द्विजत्व प्रतिपन्न करनेके लिये व्याकुल हैं? वैद्य क्यों उपवीत ग्रहण करते हैं? योगी ब्राह्मण बनते हैं, कायस्थ और वैद्यमें कौन बड़ा है, इस के लिये बड़ा आन्दोलन हो रहा है। कोई किसीसे छोटा होने को प्रस्तुत नहीं है। सामाजिक नियमों द्वारा किसी जातिको सदैवके लिये छोटा रखनेसे केवल हिंसा-विद्वेष उत्पन्न होगा। समानताके बिना सद्भाव और सख्यता संस्थापित नहीं हो सकती। वर्णित समयमें, अभिज्ञात लोगों द्वारा जनसाधारणकी उपेक्षा होती थी, वे लाञ्छित, घृणित और निकृष्ट समझे जाते थे, सम्भ्रान्तगणके सेवक समझे जाकर गृहीत होते थे। तभी तो जब डाकू लोगोंने हिन्दूके घर पर आक्रमण किया, तब सेवक लोग इधर-उधर छिप गये। वह लोग समझ लेते हैं, कि गृहस्वामीका यथासर्वस्व लुट

जानेपर भी उनको कुछ क्षति न होगी और यदि हम लोग डाकुओंका सामना करेंगे, तो आहत और लाञ्छित होंगे। जब मुसल्मानोंने और उनके पीछे अङ्गरेज़ोंने भारतवर्षपर आक्रमण किया था, तब हिन्दू जनसाधारण सोचते थे,—"हमारे पास क्या है—हमारा क्या जायगा?" इन्हीं कारणोंसे स्वदेशके आक्रान्त होनेपर, हिन्दू-जनसाधारण एकतासे नहीं उठते, प्राणके आवेगसे अस्त्र लेकर रणक्षेत्रकी ओर नहीं दौड़ते। वर्त्तमान समयमें ट्रान्सवालमें राजा और सेनापतिके न होनेपर भी, समुदय जनसाधारणने सौहार्द्दसे सम्मिलित होकर, हृदयके आवेगसे दलोंमें विभक्त होकर, प्रत्येकके पास जो कुछ था उसको व्यय करके, प्रतिपक्षीको प्रतिकूलता की और प्रत्येकने स्वतःप्रवृत्त होकर स्वाधीनताके लिये संग्राम किया। सामाजिक नियमके दोषसे ऐसा दृश्य भारतमें होना असम्भव था। भारतकी सेनाने रणक्षेत्रमें स्वाभाविक असीम वीरत्व प्रदर्शन किया है, परन्तु ज्योंही राजा निहत अथवा अदृश्य हुआ है, त्योंही उन्होंने प्रस्थान किया है, उसी समय उन्होंने अपने कर्त्तव्यकर्मका अवसान हुआ समझ लिया है। क्यों? वह लोग स्वदेशरक्षाके लिये नहीं, राजाके भय अथवा अर्थ-लोभसे युद्ध-क्षेत्रमें गये थे। कोई-कोई कह सकता है, कि ट्रान्सवालमें भी तो जातिभेद है, बढ़ई और जौहरी हैं, धनी और दरिद्र हैं। ऐसा श्रेणी-विभाग जगत्में सदैव ही रहेगा। यह विभाग रक्तमूलक

नहीं है, इससे चिरस्थायी नहीं है। गुणके लिये जो तारतम्य है वह चिरस्थायी है, किन्तु हिंसा-विद्वेषका उत्पन्न करनेवाला नहीं है। फिर समाजमें किसी-किसी अवस्थामें ऐसा अस्थायी श्रेणिविभाग भी आवश्यकीय है। आज यदि एक हजार ग्रेजुएट ब्राह्मण एक द्वीपमें नया उपनिवेश स्थापन करें, तो उनको भी सर्वप्रकारके अभाव-मोचनार्थ, भाँति-भाँतिके द्रव्य प्रस्तुत कराने के लिये श्रेणी-विभाग करना होगा, अभाव-मोचनार्थ श्रेणियों में विभक्त होना ही होगा। भारतकी जातिभेद-प्रथाकी पहले इसी प्रकार सृष्टि हुई थी। शेषमें वह रक्त संश्रष्ट होकर, छोटे-बड़ेके चिरस्थायी नियममें आबद्ध होकर, चिरस्थायी जातिभेदमें परिणत होकर और चिरस्थायी हिंसा-विद्वेष और अनिष्टका घर होगई। समाजशरीरके हाथ-पैर आदि सभी एक दूसरेसे पृथक् हो गये, परिणाममें सबही नष्ट हो गये।

जातिभेदने भारतका महा अनिष्ट साधन किया है। जो जनसाधारण सम्भ्रान्तगणके पैरोंमें पड़े रहते थे, पुरुषानुक्रम से उनकी सेवा करनेके अभ्यस्त होगये थे, बिना विरोधके असंख्य अहितकर सामाजिक नियमोंके सामने मस्तक अवनत करनेको बाध्य होते थे, उनके हृदयमें स्वाधीन चिन्ता, स्वाधीन भाव, किस प्रकार उदय हो सकते थे? विदेशियोंके आक्रमणके समय वह लोग किस प्रकार स्वाधीनताके लिये संग्राम करनेमें स्वतः प्रवृत्त हो सकते

थे? किस प्रकार वह सम्मान-ज्ञानसे परिचालित हो सकते थे?

अस्थिमज्जाके लिये जिस प्रकार अच्छे भोजनकी आवश्यकता है, उसी तरह जनसाधारणके लिये ज्ञानका प्रयोजन है। ज्ञानहीन जनसाधारण चक्षुहीन सैनिक हैं। संभ्रान्तगण सर्वप्रयत्नोंसे जनसाधारणको अज्ञानके अन्धकारमें रखते थे, वह समझते थे, कि वह ज्ञानान्वित होकर उनकी सेवा करनेमें कुण्ठित होंगे, उनकी बराबरी करना चाहेंगे। इसका परिणाम यह हुआ, कि हिन्दू-जनसाधारण विपद्के समय कर्त्तव्य-निर्णयमें समर्थ नहीं होते। शरीर शिरमें पीड़ा होनेसे समझ लेता है, कि शिरच्छेद होनेसे उसकी कुछ क्षति न होगी।

हाय, हिन्दुओंको किसी वस्तुका अभाव नहीं था। सर्वोच्च श्रेणीकी शासन-प्रतिभा, सर्व्वोच्चश्रेणीकी सैनिकबुद्धि एवं अपरिसीम अर्थ और सैन्यबल सबही था। नहीं थी, केवल निःस्वार्थ-परता। इसीलिये हिन्दू-राज्य समुदय हिन्दू जनसाधारणकी प्रीतिपर प्रतिष्ठित नहीं हो सके। यदि ऐसा होता, यदि हिन्दू-जनसाधारण अपने हिन्दू राज्यको अपने सुखसम्मानका निलय समझकर ग्रहण कर सकते, तो वह आप ही सर्व्वस्वान्त होकर स्वाधीनतारक्षाके लिये संग्राम करते। फलतः एक स्वार्थपरता से ही हिन्दूजातिका अधःपतन हुआ है, इसमें विन्दुमात्र संशय नहीं है। उसी स्वार्थपरतासे क्या अब हिन्दुओंने रक्षा पाई है?

जिधर ही देखते हैं उधर ही निराशा दिखाई देती है, चारों ओर केवल स्वार्थपरता होका अभिनय हो रहा है ! हिन्दूगण यदि स्वार्थपरताको छोड़ सकते, आत्मोन्नति-साधनके लिये सर्व प्रकारका त्याग स्वीकार करते, तो फिर गौरवान्वित हो सकते थे। राजा सर टी० माधवरावने कहा है,—"जितना ही जीता हूँ, जितना ही देखता हूँ, जितनाही विचार करता हूँ, उतना ही सुस्पष्ट अनुभव करता हूँ, कि राजनीतिक दुःखकी अपेक्षा स्वकृत, स्वगृहीत, स्वउद्भावित—सुतरां प्रतिकार-योग्य—अधिक दुःखोंसे पराभूत हिन्दू-जातिके समान और और कोई जाति धरणीतल पर विद्यमान नहीं है ।"

हिन्दू लोग इसी चीनकी भाँति पूर्व्व-गौरवस्मृतिके फटे हुए तकियेका सहारा लगाये, जीर्णशीर्ण शरीरकी रक्षा करके, आरामके हुक्के में अवसाद-अफ़ीम पीकर, दूरदृष्टिको खोकर, चिन्ताको विदा करके, वर्त्तमान सुखके गुलाबी नशेमें ग़र्क होकर सोच रहे हैं,—अधःपतित जाति जैसी है, वैसी ही बनी रहनेपर भी अग्रसर हो सकती है। वह लोग द्रुतगामी यूरोपरूपी वाष्पीय शकटको देखते हुए, उसके सामने दीन-हीन भावसे पड़े रहकर समझते हैं, कि वही दौड़ रहे हैं, और यूरोपियन शकट खड़ा हुआ है! उनकी समझमें यह नहीं आता है, कि वह बहुत दूरसे और बहुत नीचेसे चला आकर उनके ऊपर आ गिरा है। यह भी नहीं देखना चाहते, कि वह किस उपायका अवलम्बन करके इतनी शीघ्रतासे चलकर आगया,

वह यह भी नहीं समझ सके हैं, कि जापान यूरोप के उद्दाम परिवर्त्तन-अश्व पर आरोहण करके, युक्ति की रश्मि द्वारा उसको संयत करके, आधी शताब्दीके भीतरही उन्नति-मार्ग के शीर्ष देश पर आरोहण करके आज यूरोपसे स्पर्द्धा कर रहा है। दैत्यदानव का आविर्भाव हुआ है, तपस्वी के सुन्दर शान्तिमय तपोवन से हाहाकार उठ रहा है। ऋषि विश्वामित्र वीरवर राम के लिये व्याकुल हो रहे हैं। इस समय धर्म और स्वदेशहितैषिता, पाश्चात्य ज्ञान और प्राच्य सभ्यता, परिवर्त्तन और युक्तिका सौहार्द्द-सम्मिलन और स्वार्थपरता के विसर्जन के अतिरिक्त आत्मोन्नति का उपाय नहीं है, आशा भी भी नहीं है। इस समय उर्द्ध्वबाहु, उलङ्ग, उदासीन होनेसे किसी प्रकार का मङ्गल-साधन होने की सम्भावना नहीं है। अनुकूल समय-स्रोत में किश्ती तैर रही है, बैठे मत रहो, लक्ष्यस्थल पर ले जाने की चेष्टा करो, आत्मचेष्टा द्वारा आत्मोन्नति साधन करो। न करने से भी किश्ती चलेगी, किन्तु लक्ष्यस्थल तक न पहुँचेगी; यदि पहुँचेगी भी, तो बहुत समय लग जायगा। कौन जानता है, कि इस बीच में भारतके ग्रीष्मकालीन निर्मल आकाश में बादल न छा जायँगे, आँधी न आवेगी, नूतन विपद् न आवेगी, भारत का आशा-भरोसा फिर अतल जलमें निमग्न न हो जायगा ?

——+

तेईसवाँ अध्याय।

समाधि-मन्दिर।

No man can rightly fulfil his duties as a patriot, who fails in the higher duty he owes to humanity. —Mazzini.

आज सन १८८८ की दसवीं अक्टोबर है। हमलोग महात्मा अकबर के पवित्र समाधिमन्दिर के दर्शन की लालसा से आगरे से निकले। आगरे से सिकन्दरा ५ मील उत्तर-पश्चिम है। जो राजपथ आगरे से सिकन्दरा, मथुरा, वृन्दावन और दिल्ली होकर लाहोर चला गया है, उसी पथ पर हमलोग चलने लगे; क्रमसे आगरे की प्राचीर का ध्वंसावशेष 'दिल्ली दरवाज़ा" पीछे छूट गया। पथ का दूरत्व निर्णय करने के लिये, सम्राट्गण ने राजपथ के किनारे जो स्तम्भ निर्माण कराये थे, उनमेंसे एक-एक विस्मय

उत्पादन करने लगा। हमलोग जितना ही आगे बढ़ते थे, उतना ही दोनों पार्श्व स्थित बहुविध गलित और पतनोन्मुख समाधि-मन्दिर हमारे नेत्रों को आकर्षित करते थे।

क्रमसे हमलोग सम्राट् अकबरके समाधि-उद्यानके द्वार पर पहुँचे। सबसे पहले तोरण मिला, जो लाल पत्थर का बना हुआ है। वह सत्तर फीटसे अधिक ऊँचा है और श्वेत, कृष्ण, पीत इत्यादि विविध भाँति की कारीगरीके फूलोंसे अलङ्कृत है। हमने उसके भीतर घुसकर देखा, कि वह एक अति सुन्दर सुप्रशस्त हाल है। काउण्ट आव् नोयरने सत्य ही लिखा है,—"यह इतना ऊँचा और ऐसा सुन्दर है, कि इसे एक राज-प्रासाद भी कहनेमें भ्रम होता है।" उस हालके चारों ओर क्षुद्र कक्ष है और ऊपर जानेके लिये सीढ़ियाँ हैं। प्रहरीगण यहीं पर रहते हैं। इस अत्युच्च गृहके शीर्ष देश के चारों कोनों पर, चार श्वेत पत्थरके बने अभ्रभेदी चूड़ा एक दिन सगौरव खड़े थे। इस समय गौरव भी नहीं हैं, उनका वह उच्च मस्तक भी नहीं है। इस समय वह भग्न होगये हैं। फिर से उनको निर्माण कराना, किसीने अपना कर्त्तव्य नहीं समझा है। उस गृहके ऊपरसे पहले नौबत शोक-सङ्गीत गान करके दर्शकके हृदय को आकुल करती थी। महासति काउण्ट आव् नोयर १८६८ ई० में इस समाधिके दर्शन को आये थे। उस समय भी नौबत मृत महात्मा की समाधिके ऊपर सम्मान वर्षण करती थी। किन्तु हाय, इस समय वह—मालूम नहीं

चिरकालके लिये या कुछ दिनोंके लिये—नीरव होरही है। इस समय चमगीदड़ यहाँ निर्भय होकर राज्य कर रहे हैं।

इस मनोहर गृह को अतिक्रम करके, प्राचीर-परिवेष्टित एक वृहत् उद्यानमें हमलोग पहुँचे। यमुनाजल नहरद्वारा बहुत दूरसे उस उद्यानमें आता है। वहाँ आम प्रभृति फल और विविध भाँति की पुष्प-वृक्षावली फल और फूल, छाया और सौन्दर्यसे पर्यटकको मुग्ध करती है। इस समय वह उद्यान यत्नपूर्वक रक्षित नहीं है, उसकी शोभा और सम्पद भी अन्तर्हित होगई है। प्राचीर स्थान-स्थान पर गिर पड़ी है, पश्चिमी तोरण अवरुद्ध एवं उत्तर-पूर्वका तोरण भूलुण्ठित होरहा है। सब ही अति दीनहीन वेष धारण करके, भारत में राज्य का परिणाम प्रचार कर रहे हैं।

हमलोग वर्णित दक्षिण तोरण-गृहको पीछे छोड़कर, उत्तर की ओर को अग्रसर होने लगे। इस गृहसे आरम्भ होकर, एक अति विस्तृत राजपथ समाधि-मन्दिरके द्वारदेश तक जाकर समाप्त हुआ है। वह पथ दोनों ओरके उद्यानसे बहुत ऊँचा और विस्तृत पत्थरके टुकड़ोंसे आच्छादित है। इस पथके दोनों ओर विविध पुष्पश्रेणी, धूलि-धूसरित, अयत्नलालित, शाखा-भारावनत ऐसी मालूम होती है, मानों शोकके कारण संस्कारविहीन हो रही है। बीच-बीचमें घने पत्तोंको भेद कर नीले और पीले फूल निकल रहे हैं और मानों यह कह रहे हैं, कि शोक-सन्तापसे भी मङ्गल प्रसूत होता है। इस

पथ का अर्द्धांश तय करने पर, प्रायः उनके बीचमें पत्थर के बने हुए एक जलाशयके सामने पहुँचे। किसी समयमें वह यमुनाजलसे पूर्ण रहता था, और उसमेंके नीरव फ़व्वारे अतीव उत्साहसे सुशीतल जल ऊपर फेंकते थे। अवशिष्ट पथ तय करने पर ऐसा ही एक और जलाशय और फ़व्वारा मिला। उसके बाद ही समाधिमन्दिर आरम्भ हुआ है। उसकी शोभा का वर्णन हम किस प्रकार करें?

प्रायः ४०० फ़ीट चौकोर प्रस्तर-वेदीके बीचसे, ३०० फ़ीट से अधिक चौकोर, पाँच मंज़िल का मन्दिर क्रमशः सूक्ष्मभाव से दोलमञ्च—झूलने—के आकारमें, सौ फ़ीट की ऊँचाई पर मस्तक उठाये खड़ा है। इसकी प्रत्येक तहके चारों कोनों और प्रति पार्श्वदेशके मध्यस्थलसे मनोहर मन्दिर निकला है। उसकी कोई कच्चा सफ़ेद पत्थर द्वारा, कोई लाल पत्थर द्वारा, कोई विविध वर्णके पत्थरों द्वारा बनी हुई वर्णनातीत सौन्दर्य प्रकाश कर रही हैं। उन सबहीके शीर्षदेश पर सुनहरे शिखर अलंकृत हैं। ऐसे मन्दिर और प्रासाद ठौर-ठौर पर खड़े हैं। मालूम होता है, भूतलसे यह पर्वत-समान प्रासाद प्रतियोगिता करके एकके ऊपर एक चढ़े हुए हैं और सारे मन्दिर प्रतिद्वन्द्विता करके, उनके कन्धोंपर चढ़कर, आकाशभेदी स्वर्ण-किरीटों को ऊपर को उठा रहे हैं, सब मिल-जुलकर सूर्य्यर-श्मियों को प्रतिफलित करके, वर्णनातीत स्वर्गीय शोभा विस्तार कर रहे हैं।

यह मन्दिर लाल पत्थरोंसे बना हुआ है, केवल सबसे ऊपर की मंज़िल श्वेत पत्थर की बनी हुई है। इसमें बहुतसी कक्षायें हैं, सभी की छतें बिना शहतीर या बीमोंके बनी हुई हैं और सबमें ही बहुतसी सीढ़ियाँ हैं। विविध प्रकार की स्तम्भश्रेणी गृह-शोभा की वृद्धि कर रही है। मन्दिरके शीर्ष-देशमें श्वेत पत्थर की सम्राट् की कृत्रिम समाधि बनी हुई है। सबसे नीचेवाली तह यानी भूगर्भमें सम्राट् सोरहे हैं। हमलोग उनकी दर्शन-कामनासे पहले स्वर्ण-कक्षामें पहुँचे। उसका भीतरी भाग स्वर्ण और हरे, नीले और लाल वर्ण-वैचित्र्यके लता, पता, वृक्ष और फलोंसे अति मनोहर रूपसे सुशोभित है। उसकी प्राचीरमें, नीली ज़मीन पर, स्वर्णाक्षरों में क़ुरानके श्लोक लिखे हुए हैं। उस गृह की अनुपम शोभा इस समय लुप्तप्राय है। जाट और महाराष्ट्रोंने आगरा अधिकार करने पर, अति सौभाग्यके दिनोंमें, इस गृह में अपना भोजन बनाया था; इससे गम्भीर धुएँके कारण उसकी शोभा मारी गई है। वर्त्तमान भारतेश्वर जब इस समाधिमन्दिरके दर्शनों को आये थे, उस समय उनको पूर्व-शोभा दिखलानेके लिये—मालूम नहीं, इस हतभाग्य देश की पिछली शोभा का अनुसन्धान करने का क्या प्रयोजन है—इस कक्षाके कुछ अंश का संस्कार किया गया था। अर्थाभाव के कारण समुदय* कक्षाका संस्कार नहीं हुआ। इससे यह भी सूचित होताहै, कि हिन्दूलोग क्षमता पाने पर उसका

कैसा अपव्यवहार करते हैं, यह दिखलानेके लिये ही वह सौन्दर्य का निकेतन ऐसे निन्दनीय भावसे छोड़ दिया गया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस अतुलनीय गृहसे, क्रमसे नीचे जानेवाली राह द्वारा, हमलोग अँधेरे भूगर्भमें उतरने लगे। कुछ प्रहरी कुछ दीपक लिये हुए आगे-आगे चलने लगे। क्रमसे हमलोग नङ्गे पैरों, धीरे-धीरे पैर रखते हुए, शोक-सन्तप्त हृदयसे, चुपचाप सम्राट् की समाधि-कक्षामें पहुँचे। वह उस विशाल प्रासादके मध्यस्थलमें, भूगर्भ में है। वहाँ सम्राट्का शरीर रक्खा हुआ है। उसके ऊपर श्वेत पत्थर की मनोहर वेदिका विराजमान है। उस पर लिखा हुआ है,—"अकबर।" एक ज़रदोज़ीके काम की श्यामल चद्दरसे समाधि ढकी हुई थी। प्रहरीगणने कहा,—"हिन्दू और मुसल्मान सम्राट् को ऋषिवत् मानते हैं। वह लोग यहाँ आकर अभीष्टलाभके लिये कामना करते हैं, अभिलाष पूर्ण होने पर इस प्रकारके सुन्दर वस्त्रसे समाधि को आवृत कर जाते हैं। यहाँ पर प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला होता है, बहुतसे लोग जमा होते हैं, सम्राट्के पास कितने ही मनुष्य आकर कितने ही विषयों की प्रार्थना करते हैं।" फ़िञ्च साहबने सम्राट् की मृत्यु के तीसरे वर्ष इस समाधिके दर्शन करके लिखा है,—"हिन्दू और मुसल्मान अकबरको ऋषिके समान समझते हैं और उनकी समाधि की पूजा करते हैं।" भारतके भूतपूर्व बड़े लाट लार्ड नार्थब्रूक साहबने एक मनोहर

वस्त्रसे इस समाधिको आवृत करके, मृत महात्माके प्रति सम्मान प्रदर्शन किया था।

पराजित हाथने उस महापुरुष की पवित्र समाधि पर सामान्य पुष्पगुच्छ और क्षुद्र कुसुम-मालाओं की अञ्जलि अर्पण की, आँखोंने भी उस अन्धकारमें चुपचाप अर्घ्य प्रदान किया, कठिन हृदय भी विगलित होगया, आप ही हृदयसे प्रार्थना निर्गत हुई,—"महात्मन्, भारत-सन्तान तुम्हारी उदारता, तुम्हारी निःस्वार्थपरता लाभ करे, तुम्हारी तरह युक्ति का अनुसरण करे, तुम्हारी भाँति लक्ष्य स्थिर करके कार्य परिचालन करे, तुम्हारी सम्मिलन-चेष्टा की उपकारिता को समझकर शक्तिशाली होवे।" वहाँ कुछ देर ससम्भ्रम खड़े रहकर, समाधि की प्रदक्षिणा करके, अति अनिच्छापूर्वक, अतृप्त हृदयसे महापुरुषके पवित्र संसर्गसे अपसृत हुए।

पहले इस गृहमें सम्राट्के वर्म्म, परिच्छद और प्रिय पुस्तकादि रक्खे रहते थे, परन्तु जाटोंने उनको आत्म-सात् कर लिया। इस समाधिभवन की अन्यान्य कक्षाओंमें और भी कतिपय मुग़ल-रमणियों की समाधियाँ बनी हुई हैं।

इस समाधि-मन्दिरमें बौद्ध और मुसल्मान मन्दिर की शोभा सम्मिलित भावसे विराज रही है। सम्राट्ने उसकी कल्पना और कार्य आरम्भ किया, जहाँगीरने उसे समाप्त किया था। तीन हज़ार व्यक्तियोंने बीस वर्ष तक काम करके इस मन्दिर को निर्माण किया था। उस समयके १५ लाख रुपये

खर्च हुए थे। टेलर साहबने इस समाधि-मन्दिर और इसके शीर्षदेशके बहुदूरस्थित पूर्णचन्द्र-सदृश 'ताज' की शोभा देखकर लिखा है,—"मैंने मुग़ल-सम्राटों का वह समुदय विभव पहले देखा था; परन्तु अब जो कुछ देखा, उससे इतना मुग्ध हुआ, ऐसा बोध होने लगा, मानो मैं एक मनोहर स्वप्न देख रहा था।" काउण्ट आव् नोयरने लिखा है,—"सम्राट् की समाधिने मुझको ऐसा विचलित किया, कि और किसी व्यक्ति की समाधि ने मुझको वैसा विचलित नहीं किया। यह समाधि-मन्दिर इतना मनोहर है, मालूम होता है मानों मैं प्राचीन कहानियों में वर्णित परियोंके निवास-दुर्गके सामने खड़ा हूँ। यह समाधि-दर्शन स्वप्नदर्शनसा बोध होने लगा। मैं जब वहाँसे लौटकर आगरे आया, उस समय सङ्कल्प किया कि,—"अकबर को और उस युग को, जिसमें उसने जन्मग्रहण किया था, आदरसे हृदयमें पोषण करूँगा।" मेजर जनरल स्लीमेन साहबने लिखा है,—"अकबरने जिस देशमें और जिस समयमें जन्म-ग्रहण किया था, उसकी विवेचना करनेसे मनमें होता है कि, कवियोंमें जिस प्रकार शेक्सपियर हैं, सम्राटोंमें अकबर भी उसी प्रकार—अतुलनीय हैं। अकबरने जिस पृथ्वी को अलङ्कृत किया है, उसका एक सामान्य अधि-वासी होकर, मैंने उसकी समाधिपर इतना सम्मान प्रदर्शन किया, कि मैं पृथ्वीके जितने सम्राटोंके इतिहाससे अवगत हूँ, उनमेंसे किसीके प्रति इतना सम्मान प्रदर्शन नहीं करता।"

हमलोग अब अकबरके उद्यान को परित्याग करके अन्धकारमें चलने लगे और सोचने लगे, कि भारतमें क्या फिर कभी अकबर आविर्भूत होंगे और अन्धकार को दूर करेंगे।

हे माता, तुम आओ; अकबर का आरम्भ किया हुआ कार्य आजकल अनायास ही अँगरेज़ी शासनमें सम्पन्न हो रहा है; एकबार हँसती हुई, पहलेके भेषमें आओ। मालूम हुआ, किसीने क्षीण विषाद-स्वरमें कहा,—"मेरी शक्तिके मूल जनसाधारण को उन्नत, शिक्षित, और जाग्रत करो, उन को सेवा करो, नहीं तो मेरी सेवा नहीं होगी। स्वार्थ-पर जाति मेरी सेवा कर नहीं सकती। जातीय उन्नति अनायास ही साधित नहीं होती, आत्मचेष्टा—आत्मोत्सर्ग बिना सम्पादित नहीं होती।"